RNI. No. : GUJHIN/2017/70792 **UGC - CARE Listed** **ISSN : 2582-0907**

समन्वय पश्चिम

पश्चिम भारत की साहित्य एवं संस्कृति केंद्रित पत्रिका

खंड-6, अंक-2, चैत्र-ज्येष्ठ, 2079/अप्रैल-जून, 2022

संरक्षक
प्रो. सुरेन्द्र दुबे
उपाध्यक्ष, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

परामर्श मंडल
डॉ. रंजना अरगडे
पूर्व प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गुजरात विश्वविद्यालय,
अहमदाबाद-380 009 (गुजरात)

डॉ. दयाशंकर
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभविद्यानगर,
आणंद-388 120 (गुजरात)

डॉ. आलोक गुप्त
पूर्व प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय,
गांधीनगर-382 030 (गुजरात)

डॉ. प्रमोद शर्मा
पूर्व प्रोफेसर, हिंदी विभाग
राष्ट्रीय संत तुकडोजी महाराज विश्वविद्यालय,
नागपुर-440 033 (महाराष्ट्र)

डॉ. जसवंतभाई डी. पंड्या
डीन, कला संकाय
गुजरात विद्यापीठ,
अहमदाबाद-380 014. (गुजरात)

कला एवं परिकल्पना
डॉ. विजय एम. ढोरे

प्रधान संपादक
प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी
निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

संपादक
डॉ. सुनील कुमार
क्षेत्रीय निदेशक, के.हि.सं. अहमदाबाद केंद्र

उप-संपादक
डॉ. मनोज पांडेय
सहायक प्रोफेसर, रा.सं.तु.म.वि.वि., नागपुर

संपादक मंडल
डॉ. उषा उपाध्याय
पूर्व प्रोफेसर, गुजराती विभाग
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद-14 (गुजरात)

डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
मुम्बई विश्वविद्यालय, मुम्बई-98 (महाराष्ट्र)

डॉ. सदानंद काशीनाथ भोसले
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय,
पुणे-411 007 (महाराष्ट्र)

डॉ. राम गोपाल सिंह
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद-380 014 (गुजरात)

डॉ. भूषण भावे
एसोसिएट प्रोफेसर, कोंकणी विभाग
पी.ई.एल.आर.एस.एन. आर्ट्स एंड साईंस कॉलेज,
फार्मागुडी पोंडा, गोवा-403 401

केंद्रीय हिंदी संस्थान
अहमदाबाद केंद्र
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)

पश्चिम भारत की भाषा, संस्कृति, शिक्षा, साहित्य एवं समाज आधारित रचनाओं (मौलिक, अनूदित एवं तुलनात्मक) की हिंदी में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका–**समन्वय पश्चिम**

खंड-6, अंक-2, चैत्र-ज्येष्ठ, 2079/अप्रैल–जून, 2022

© सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

प्रकाशक : क्षेत्रीय निदेशक, केंद्रीय हिंदी संस्थान, अहमदाबाद केंद्र

संपादकीय कार्यालय : क्षेत्रीय निदेशक,
केंद्रीय हिंदी संस्थान, अहमदाबाद केंद्र
शास्त्री स्टेडियम, बाल भवन, बापूनगर,
अहमदाबाद-380 024 (गुजरात)
मोबाइल : 9774393498
ई–मेल : khs.ahmedabad@gmail.com

सदस्यता शुल्क : व्यक्तिगत : प्रति अंक रु. 40.00 वार्षिक रु. 150.00
संस्थागत वार्षिक शुल्क रु. 250.00
(डाक व्यय प्रति अंक रु. 35.00 तथा
वार्षिक रु. 100.00 अतिरिक्त होगा)
विदेशों में प्रति अंक $ 10.00 वार्षिक $ 40.00

मुद्रक : पाटीदार ऑफसेट, अहमदाबाद

टाइपिंग/कंपोजिंग : भानु ग्राफिक्स

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से केंद्रीय हिंदी संस्थान का सहमत होना आवश्यक नहीं है । प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए स्वामी/प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है ।

स्वामित्व : सचिव, केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल, आगरा

अनुक्रम

भाषा, साहित्य, संस्कृति और समाज

	आमुख	प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी	04
	संपादकीय	डॉ. सुनील कुमार	06
	आलेख		
1.	शिक्षा विद् – लोकमान्य तिलक	प्रो. विजय महादेव गाडे	08
2.	डॉ. भीमराव वाघचौरे के उपन्यासों में अभिव्यक्त कृषक जीवन	डॉ. सुनील डहाळे	15
3.	हिंदी–मराठी उपन्यासों में बदलता ग्रामीण जीवन	डॉ. सचिन गपाट	22
4.	रामधारी सिंह 'दिनकर' का राष्ट्र–बोध और उनकी कविता	डॉ. अभिषेक शर्मा	28
5.	गोवा के साहित्य में रविन्द्र केलकर का योगदान	डॉ. मनीष शर्मा	33
6.	भारतीय भक्ति साहित्य और नरसी मेहता	डॉ. जोगेन्द्र सिंह मीणा	40
7.	सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में स्वतंत्रता संघर्ष की अनुगूँज	योगेन्द्र सिंह एवं प्रो. नवीनचंद्र लोहनी	47
8.	गांधीयुगीन गुजराती कविता में राष्ट्रीय भावना एवं सुंदरम् का काव्य	डॉ. भावना ठक्कर	55
9.	महात्मा गांधी और हिंदी कवियों की कविताएँ	डॉ. आशा रानी	62
10.	द्विवेदी युग : देशभक्ति का अर्थ	डॉ. पूनम	71
11.	रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर	राजेशकुमार राजन	77
12.	नवजागरण कालीन हिंदी साहित्य में बालकृष्ण भट्ट की देन	डॉ. पूर्णिमा आर.	82
13.	छायावादी काव्य : स्वतंत्रता पुकारती	डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर	92
14.	दक्खिनी हिंदी साहित्य के विभिन्न आयाम	डॉ. प्रवीणकुमार चौगुले	98
15.	गुजराती साहित्य के भारतेंदु – कवि नर्मद	डॉ. उर्मिला पोरवाल	103
16.	संत ज्ञानेश्वर : तत्त्वज्ञान और चिंतन	डॉ. भरत भीमराव जाधव	109
17.	अखंड धूसर के भाषिक पैरोकार : काका कालेलकर	डॉ. पियूष द्विवेदी	115
18.	साठोत्तरी हिंदी काव्य परंपरा में महाराष्ट्र के कवियों का योगदान	डॉ. दिनेशकुमार गुप्ता	123
19.	गुजरात की समकालीन हिंदी ग़ज़ल	डॉ. ऋषिपाल धीमान	129
20.	स्वतंत्रता संघर्ष एवं साहित्य	रोहित जैन	141
21.	लेखक सूची		150

आमुख

पत्रिका के प्रस्तुत अंक में स्वतंत्रता आंदोलन में हिंदी साहित्य के अवदान को रेखांकित करने वाले आलेख प्रमुखता के साथ आए हैं, साथ ही अन्य सहित्यिक पक्षों पर भी आलेख मिलेंगे । सर्वविदित है कि स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी साहित्य का संबंध अत्यंत घनिष्ठ रहा है । हिंदी के साहित्यकार केवल साहित्य सृजन तक सीमित नहीं थे बल्कि सामाजिक सरोकार से जुड कर स्वतंत्रता आंदोलन में पूरी तरह सक्रिय थे और आंदोलन में अग्रणीय भूमिका का निर्वाह करते हुए आंदोलन को दिशा दे रहे थे । हिंदी के साहित्यकारों की रचनाएँ देशवासियों को स्वतंत्रता संघर्ष के लिए प्रेरित और आंदोलित करने का काम कर रही थीं । स्वतंत्रता संग्राम को जनअंदोलन बनाने में हिंदी कविता के मंच निर्णायक सिद्ध हो रहे थे । जनमानस हिंदी की रचानाओं से नई उर्जा ग्रहण कर स्वतंत्रता संघर्ष के लिए आंदोलनरत हो रहा था । हिंदी भाषा-साहित्य और साहित्यकार स्वतंत्रता संग्राम में अपना योगदान तो दे ही रहे थे जन-जागरण के अभियान को नई धार भी दे रहे थे । जन भावनाएँ दिन-प्रतिदिन हिंदी के माध्यम से आजादी के लिए उद्वेलित हो रही थीं और समाज की सक्रियता आंदोलन में निरंतर बढ़ती जा रही थी । स्वाधीनता संघर्ष के इन्ही संदर्भों को प्रस्तुत अंक में स्थान मिला है जिनका प्रस्तुत आलेखों में अवलोकन किया जा सकता है । इन आलेखों में स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी साहित्य के अवदान को रेखांकित करने का सार्थक प्रयास है ।

विवेचन और विश्लेषण के क्रम में स्वतंत्रता सेनानी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के शिक्षा संबंधी अवदान को प्रो. विजय महादेव गाड़े द्वारा अपने आलेख में चिन्हित किया गया है, तदंतर डॉ. सुनील डहाळे के आलेख में भीमराव वाघचौरे के उपन्यासों में अभिव्यक्त कृषक जीवन से संबंधित समस्याओं का रेखांकन हुआ है । डॉ. सचिन गपाट के आलेख में हिंदी मराठी उपन्यासों में बदलते ग्रामीण जीवन पर चिंतन-मनन देखा जा सकता है । डॉ. अभिषेक शर्मा ने रामधारी सिंह दिनकर की कविताओं में राष्ट्रबोध को आलेख मे विवेच्य बनाया है । डॉ. मनीष शर्मा का आलेख गोवा के साहित्य में रविंद्र केलकर के महत्त्व को रेखांकित करता है । हिंदी साहित्य में भक्ति साहित्य का उल्लेखनीय स्थान है, डॉ. जोगेंद्र सिंह मीणा ने इसी पृष्ठभूमि में नरसिंह मेहता के साहित्य का विवेचन किया है । योगेंद्र सिंह एवं प्रो. नवीनचंद्र लोहनी के आलेख में सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में स्वतंत्रता संघर्ष पर प्रकाश डाला गया है । डॉ. भावना ठक्कर ने अपने आलेख के माध्यम से गांधी युगीन गुजराती कविता में राष्ट्रीय भावना एवं सुंदरम् के काव्य पर अपनी उद्भावनाएँ रखी हैं । डॉ. आशा रानी ने अपने आलेख में महात्मा गांधी अनुप्राणित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, केदारनाथ अग्रवाल, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि के अवदान पर अपना मत व्यक्त किया है । डॉ. पूनम ने अपने आलेख के माध्यम से द्विवेदी युगीन देशभक्ति परक साहित्य पर अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है । राजेश कुमार राजन का आलेख रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में जनवादी राष्ट्रीय चेतना के पक्ष को उद्घाटित करता है । डॉ. पूर्णिमा आर. का आलेख बालकृष्ण भट्ट और नवजागरण कालीन कविता पर आधारित है ।

डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर ने अपने आलेख द्वारा छायावादी काव्य में स्वाधीनता के स्वर को रेखांकित करने का प्रयास किया है। डॉ. प्रवीण कुमार चौगुले ने दक्खिनी हिंदी के साहित्यकारों के जन-उपदेशों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है । डॉ. उर्मिला पोरवाल द्वारा कवि नर्मद के साहित्यिक अवदान को रेखांकित किया गया है । डॉ. भारत भीमराव जाधव द्वारा संत ज्ञानेश्वर के तत्वज्ञान और चिंतन प्रणाली पर अपना मंतव्य प्रस्तुत किया गया है । डॉ. पीयूष द्विवेदी ने काका कालेलकर के भाषिक चिंतन को अपने आलेख के माध्यम से रेखांकित किया है । डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता द्वारा साठोत्तरी हिंदी काव्य परंपरा में महाराष्ट्र के कवियों के अवदान पर प्रकाश डाला गया है । डॉ. ऋषि पाल धीमान ने गुजरात की समकालीन हिंदी ग़ज़ल पर अपना अभिमत रखा है । रोहित जैन ने स्वतंत्रता संघर्ष और साहित्यिक के संदर्भों को उठाया है ।

प्रस्तुत अंक में स्वाधीनता संग्राम के समय हिंदी साहित्य में राष्ट्रबोध के पक्ष पर चिंतन-मनन की धारा का रुचिकर अध्ययन विश्लेषण है । इस तथ्य से सभी अवगत है कि आजादी के आंदोलन में हिंदी साहित्य का संदर्भ गहरे तक जुड़ा हुआ है । स्वतंत्रता के आंदोलन में हिंदी के मंच जनमानस में जनजागृति का बीजारोपण कर रहे थे । प्रत्येक नगर, शहर और प्रांत में हिंदी की काव्यधारा और रचनाकार स्वतंत्रता संघर्ष का बिगुल उनके द्वारा बजाया गया । इन्ही संदर्भों को हम अंक के आलेखों में देख सकते हैं । राष्ट्रीय भाव-बोध के साथ ही हिंदी साहित्य के अन्य पक्षों पर भी अंक के आलेखों में चिंतन-मनन हुआ है । पत्रिका का यह अंक पाठकीय प्रतिक्रिया की अपेक्षा के साथ साहित्य जगत के सम्मुख है ।

प्रो. सुनील बाबुराव कुळकर्णी
निदेशक

संपादकीय

स्वतंत्रता संघर्ष और हिंदी साहित्य का संबंध बहुत प्रगाढ़ रहा है । हिंदी साहित्य का योगदान स्वतंत्रता संघर्ष में अविस्मरणीय रहा है । राष्ट्रव्यापी जनजागृति में हिंदी की बडी भूमिका रही है और समाज को एकता सूत्र में पिरोने का महती दायित्त्व भी हिंदी ने भली भांति निभाया है । समकालीन प्रवृत्तियों को जानने समझने का अवसर भी साहित्य प्रदान करता है इसीलिए साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है । स्वतंत्रता संघर्ष से जुडे प्रसंग अंक के आलेखों में प्रचुरता के साथ हैं और इसके साथ ही साहित्य के अन्य पक्ष तथा विषयों का भी यथा योग्य विवेचन मिलता है ।

प्रस्तुत अंक में प्रो. विजय महादेव गाड़े ने लोकमान्य बालगंगाधर तिलक के शिक्षा संबंधी विचारों को लेकर तिलक द्वारा 'केसरी' में लिखी गई पंक्तियों से स्पष्ट किया है कि ''आज पाठ्यक्रम का इतना मनोवैज्ञानिक दबाव छात्र पर है कि मेधावी छात्र भी उसके दबाव के कारण टूट जाता है ।'' डॉ. सुनील डहाळे ने अपने आलेख में भीमराव वाघचौरे के उपन्यासों के आधार पर कहा है कि ''डॉ. भीमराव वाघचौरे जी के समग्र काथात्मक लेखन के केंद्र में मराठवाड़ा क्षेत्र का भीषण अकाल गरीबी और दरिद्रता की गर्त में संघर्षपूर्ण जीवन जी रहा दीन-हीन किसान ही रहा है ।'' डॉ. सचिन गपाट ने अपने आलेख में हिंदी मराठी उपन्यासों में बदलते ग्रामीण जीवन को लेकर कहा हैं कि ''ग्रामीण जीवन के बदलते रूप को अभिव्यक्त करने के लिए मिश्रा जी ने विविध शैलियों का प्रयोग किया है । बोराडे जी ने सीमित शैलियों का प्रयोग करते हुए निवेदन के लिए साहित्यिक मराठी और संवादों के लिए ग्रामीण बोली का प्रयोग किया है कुल मिलाकर दोनों उपन्यासकारों ने कम अधिक मात्रा में बदलते ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है ।'' डॉ. अभिषेक शर्मा के आलेख में रामधारी सिंह दिनकर की कविताओं में राष्ट्र बोध पर चर्चा हुई है । उनके अनुसार ''दिनकर की राष्ट्रीयता जितनी भावात्मक थी उतनी ही तेजोदीप्त एवं विचारात्मक भी । वे राष्ट्र की अखंडता के प्रबल समर्थक थे ।'' डॉ. मनीष शर्मा की गोवा के साहित्य में रविंद्र केलकर के योगदान पर अवधारणा है कि ''भारत की साहित्यिक विरासत में गोवा का नाम ऊंचा करने में उनके अप्रतिम योगदान के लिए उनका सम्मान हमेशा से ही रहा है और रहेगा ।'' डॉ. जोगेंद्र सिंह मीणा के आलेख में भारतीय भक्ति साहित्य और नरसिंह मेहता पर अभिमत है कि ''नरसी मेहता को कबीरदास की तरह ही विद्रोही और क्रांतिकारी भक्त कवि माना जा सकता है ।'' योगेंद्र सिंह एवं प्रो. नवीन चंद्र लोहनी के आलेख में सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में स्वतंत्रता संघर्ष का विवेचन है । आपके अनुसार ''स्वतंत्रता की मांग कर रहे लोगों में उत्साह पैदा करने का काम उनकी कविताएं करती हैं ।'' डॉ. भावना ठक्कर के आलेख में गांधी युगीन गुजराती कविता में राष्ट्रीय भावना एवं सुंदरम् के काव्य को लेकर कहा गया है कि ''सुंदरम की काव्य यात्रा गांधी युग से लेकर अनुगांधी युग तक विस्तृत है ।'' डॉ. आशा रानी के आलेख में महात्मा गांधी से प्रेरित हिंदी के ख्यातिलब्ध कवियों की कविताओं का विश्लेषण है । डॉ. पूनम ने आलेख में द्विवेदी युग और देशभक्ति का उल्लेख

करते हुए माना कि ''द्विवेदी युग में किसान मजदूर और युवा प्रश्न को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख स्वर के रूप में अभिव्यक्ति मिली ।'' राजेश कुमार राजन ने आलेख में रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता पर कहा कि ''दिनकर की राष्ट्रीय चेतना में जनवाद का स्वर है ।'' डॉ. पूर्णिमा आर ने आलेख में बालकृष्ण भट्ट और नवजागरण कालीन कविता को लेकर माना कि ''बहुमुखी प्रतिभा के धनी बालकृष्ण भट्ट एक स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्तित्व के रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं ।'' डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर की आलेख में अवधारणा हैं कि ''छायावादी रचनाकारों ने स्वाधीनता के अमृत मंत्र को भारत के विशाल जन्म समुदाय तक ले जाकर राष्ट्रीय आंदोलन को जान वाणी बनाया ।'' डॉ. प्रवीण कुमार चौगुले के मतानुसार ''दक्षिणी हिंदी के साहित्यकारों के विचार उनके उपदेश जनता को सही दिशा में मार्गक्रमण हेतु प्रेरित करते हैं ।'' डॉ. उर्मिला पोरवाल के आलेख की अवधारणानुसार ''कवि नर्मद का कृतित्व गुजराती साहित्य के लिए नीव की ईंट है ।'' डॉ. भारत भीमराव जाधव का आलेख में अभिमत है कि ''ज्ञानेश्वर के दर्शन में सुगम महात्म्य भक्ति महात्म्य के साथ-साथ कर्म योग और ज्ञान योग का सुंदर संगम देखा जा सकता है ।'' डॉ. पीयूष द्विवेदी के मतानुसार ''काका साहब जिस विषय पर बोलते या लिखते थे लगता था उस विषय पर उनका सर्वाधिक कर सुरक्षित है ।'' डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता ने आलेख में माना कि ''महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिंदी काव्यधारा के कवियों के काव्य में विषयों की विविधता तथा नवीनता मिलती है ।'' डॉ. ऋषि पाल धीमान के आलेख की अवधारणानुसार ''गुजरात की हिंदी ग़ज़ल परंपरा का निर्वाह करते हुए युगीन यथार्थ के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है ।'' रोहित जैन का आलेख में मानना है कि ''हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखण्डों में सृजित रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है की प्रथम स्वाधीनता आंदोलन का भारतीय हिंदी साहित्य पर गहरा प्रभाव रहा है ।''

निसंदेह स्वाधीनता संघर्ष और हिंदी साहित्य एक दूसरे के पूरक रहे हैं । स्वाधीनता के संघर्ष में हिंदी भाषा और साहित्य की भूमिका बहुत उल्लेखनीय मानी गई है । इन्हीं पक्षों को लेकर अंक के आलेखों में उल्लेख हुआ है । राष्ट्रीय बोध से जुडे विवेचन के साथ आलेखों में साहित्य के अन्य पक्षों पर भी चर्चा दृष्टिगत है । प्रस्तुत अंक पाठकों की सार्थक प्रतिक्रिया की अपेक्षा के साथ अवलोकनार्थ प्रस्तुत है ।

डॉ. सुनील कुमार
संपादक

शिक्षा विद् - लोकमान्य तिलक

प्रो. विजय महादेव गाडे

संकेत शब्द – शिक्षा, शिक्षा की सार्थकता एवं प्रासंगिकता, राष्ट्रीय शिक्षण, विश्वविद्यालय और पाठशाला ।

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक हिन्दुस्तान ही नहीं अपितु दुनिया का एक बहुआयामी और बहुचर्चित व्यक्तित्व रहा है । उनके व्यक्तित्व के अनेक पहलू हैं जैसे प्रखर राष्ट्रभक्त, स्वतंत्रता सेनानी, पत्रकार, भारतीय राष्ट्रवाद के जनक, प्राच्य विद्या अनुसंधाता, वक्ता, प्राध्यापक, शिक्षाविद्, राजनेता, भाषा तज्ञ, संस्कृत महापंडित, गणितज्ञ, धर्म के पुरोधा, कानूनविद् और संपादक आदि । इस आलेख में तिलक के शिक्षा विषयक विचारों का संज्ञान लेने का हमने प्रयास किया है ।

तिलक ने बी.ए. की उपाधि गणित विषय को लेकर प्राप्त की और बाद में आपने एल.एल.बी. की उपाधि भी प्राप्त की । एक वकील बनने की अपेक्षा उन्होंने लोकशिक्षक बनना अधिक पसंद किया और राष्ट्र की वकालत के साथ वे लोकशिक्षक भी बन गए । उनका चतु:सूत्री कार्यक्रम इतिहास में एक सुनहरा स्थान रखता है, जिसमें स्वराज्य, स्वदेशी, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार के साथ राष्ट्रीय शिक्षण भी शामिल था ।

तिलक के समय स्कूल और कॉलेज शासकीय नियंत्रण में थे अत: इन स्कूलों और कॉलेजों में छात्रों को राष्ट्रीय संस्कृति, धर्म, इतिहास, राजकीय स्थिति और देशप्रेम की जानकारी नही मिलती थी । इस संदर्भ में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि तिलक ने अपने सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश भी 1 जनवरी 1880 के दिन 'न्यू इंग्लिश स्कूल' खोलकर किया और 2 जनवरी 1885 के दिन 'फर्ग्युसन कॉलेज' खोल दिया । फर्ग्युसन कॉलेज में गणित और संस्कृत के प्राध्यापक के रूप में वे सन 1890 तक काम करते रहे और कुछ सहयोगी प्राध्यापकों से मतभेद होने के कारण उन्होंने प्राध्यापक पद से त्यागपत्र दिया । इसलिए तिलक के मन में वहीं सवाल उभरता था कि अगर भारतीय छात्रों को अपने देश का इतिहास ज्ञात नहीं है तो उसके मन में देशप्रेम का जज्बा कैसे उभर सकता है ? किसी स्कूल में, कॉलेज में राष्ट्रीय शिक्षण दिया जाता था तो तत्कालीन ब्रिटिश सरकार उस शिक्षा संस्था का अनुदान रोक लेती थी । इसलिए किसी भी शिक्षा संस्था के पास राष्ट्रीय शिक्षण देने के लिए हिम्मत नहीं बची थी । इसलिए अगर शासकीय अनुदान न मिले, कोई बात नहीं लेकिन राष्ट्रीय शिक्षण देना आवश्यक है यह उनकी अवधारणा थी । इसके लिए तिलक ने सर्वप्रथम पहल की और अनेक शिक्षा संस्थानों की उन्होंने मदद की । सन 1906 में तिलक ने महाराष्ट्र शिक्षण प्रसारक मंडल को 20 हजार रूपए दान दिए । तिलक का रूझान धार्मिक शिक्षण पर भी था । शिक्षण का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए यह उनका अभिमत था लेकिन विदेशी भाषाओं से उन्हें कोई परहेज नहीं था ।[1] तिलक की यह शिक्षानीति आगे चलकर ब्रिटीश अंग्रेजी शासन के लिए आँखों की किरकिरी बन गई थी ।

तिलक की शिक्षानीति का जब हम अध्ययन करते हैं तो कई प्रश्न उभरते हैं । शिक्षानीति पर उनके विचार आज भी प्रासंगिक हैं लेकिन उनकी नजर में शिक्षा का अर्थ क्या है यह

देखना महत्वपूर्ण हो जाता है । शिक्षा के संदर्भ में तिलक ने केसरी तथा मराठा अखबारों में जो लेखन किया है उनका आधार लेना आवश्यक बन जाता है । एक स्थान पर उन्होंने लिखा भी है– ''लोगों की और देश की वर्तमान स्थिति देखकर मुझे राजनीति में आना पडा । राजकीय आंदोलनमें अगर मैं शामिल नहीं होता तो मैंने अपना सारा जीवन शिक्षण, अध्यापन और ग्रंथ लेखन के लिए दिया होता । मगर उसका मेरे पास कोई इलाज नहीं है ।''[2]

तिलक के अनुसार– ''केवल लेखन और पढ़ाई पर ज्ञान प्राप्त करना शिक्षा नहीं है और न ही इससे मनुष्य सयाना बन जाता है । शिक्षा यह सयानापन और बुद्धि की क्षमता बढाने का एक साधन मात्र है ।''[3]

भले ही लोकमान्य ने डेक्कन एज्युकेशन संस्था से अपना त्यागपत्र दिया था लेकिन एक सदस्य के रूप में वे इस संस्था से बहुत समय तक जुड़े रहे । स्वदेशी आंदोलन के संदर्भ एक महत्वपूर्ण घटना घटित हुई थी । वीर सावरकर उस समय छात्र थे और उन्होंने विदेशी कपडों की होली जलाई थी इसलिए फर्ग्युसन कॉलेज के तत्कालीन प्रधानाचार्य रँग्लर परांजपे ने सावरकर को छात्रावास से निकाल दिया था और उन्हें आर्थिक दण्ड भी किया था । जब इस बात का तिलक को पता चला तब तिलक ने केसरी में लगातार तीन सम्पादकीय आलेख लिखकर परांजपे की तीव्र आलोचना की और वीर सावरकर की प्रशंसा भी की । आगे चलकर सावरकर बॅरिस्टर बनने के लिए इग्लैंड गए तो उनकी सिफारिश करने के लिए तिलक ने एक पत्र भी दिया था । इस संदर्भ में तिलक ने जो अग्रलेख अर्थात सम्पादकीय लिखा था उनके शीर्षक कुछ इस प्रकार थे– 'प्रिन्सिपल, पशुपाल की शिशुपाल ?', 'ये हमारे गुरू ही नहीं है !', 'सरकारी हमाल खाना' आदि । इनके माध्यम से तिलक ने अपने शिक्षा विषयक चिंतन को प्रस्तुत किया है ।

वह शिक्षक वास्तव में बुद्धिमान है जो आप को अपने ज्ञान प्रकोष्ठ में प्रवेश करने का आदेश नहीं देता बल्कि वो आप को आप के बुद्धि की पराकाष्ठा तक ले जाता है । वही शिक्षा वास्तव में समझदार है जो आप को अपने ज्ञान की दुनिया में ले जाने की अपेक्षा आप के मन की दहलीज की तरफ ले जाएगा । तिलक के अनुसार स्वयं अध्ययन ही महत्वपूर्ण है क्योंकि किसी एक को जब ज्ञान प्राप्त होता है तो वह दूसरे को सिर्फ उसके बारे में बता सकता है लेकिन इस ज्ञान को दूसरा कोई तब प्राप्त कर सकता है जब उसने इसका अध्ययन किया हो ।

समसामयिक परिवेश में विश्वविद्यालयीन परीक्षाओं के संदर्भ में विवाद हुआ है जो अब सर्वोच्च न्यायालय में पहुँचा है । इस कोरोना कालखंड में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इच्छाशक्ति एवं तैयारी दिखाई है किंतु महाराष्ट्र समेत अनेक प्रगत राज्यों ने इस कोरोना कालखंड में परीक्षा लेने के लिए इन्कार किया है । दुनिया में प्रथम सौ विश्वविद्यालयों में एक भी हिन्दुस्तानी विश्वविद्यालय नहीं है यह बात ही हमारी शिक्षा व्यवस्था पर सवालिया निशान उठाती है । वैश्विक स्तर के विश्वविद्यालयों से स्पर्धा करना तो बहुत दूर की बात है लेकिन रोजगार निर्माण करने के लिए हमारे विश्वविद्यालय क्या काम करते हैं ? हमने यहाँ कॉलेज का नाम इसलिए नहीं लिया क्योंकि विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम निर्धारित करता है जिसे पढाने

का काम कॉलेज करते हैं । यह बात अलग है कि पाठ्यक्रम निर्माण करनेवाले भी प्राध्यापक ही होते हैं । लेकिन इस संदर्भ में अधिक कहना उचित नहीं होगा । ऐसी भयानक स्थिति में विश्वविद्यालयों का उत्तरदायित्व अधिक बढता है ऐसा हम मानते हैं । इसलिए पाठ्यक्रम का दर्जा बढाने की जरूरत वर्तमान परिप्रेक्ष्य में और भी बढ गई हैं ।

'सरकारी हमालखाने' इस आलेख को करीब 118 वर्ष हुए हैं लेकिन तिलक ने इस आलेख के द्वारा अत्यंत तीव्र शब्दों में तत्कालीन सरकार की भर्त्सना की है । तिलक लिखते हैं- ''उपलब्ध नौकरियों की तुलना में स्नातकों की तादाद तीन गुना अधिक बढ गई है, इसलिए हमने जिस शिक्षा को ग्रहण किया है, उस शिक्षा का अधूरापन और उपयोगहीनता छात्रों को नजर आने लगी है । प्रचलित राजकारोबार और उनकी नीतियों की ओर छात्र अब ध्यान केंद्रित कर रहे हैं । आज नौकरियों की, स्नातकों की तादाद में भयावह वृद्धि हो रही है लेकिन बेरोजगारी की समस्या वहीं पर खडी है ।''[4] तिलक का यह विवेचन आज भी समसामयिक परिवेश में कितना प्रासंगिक है उसे स्पष्ट करने की जरूरत ही नहीं है । उसी आलेख में तिलक आगे लिखते हैं- ''जिसे सही और सच्ची शिक्षा कहा जाता है वही शिक्षा वर्तमान शिक्षण संस्थानों में हमें नहीं मिलती । हमारे विश्वविद्यालय कनिष्ठ सरकारी नौकरी के लिए तैयार करनेवाले उम्मीदवारों के हमाल खाने हैं । यह बात सरकार भले मुँह से नहीं कहे लेकिन कृति से जरूर दिखा रही है ।''[5]

केसरी में प्रकाशित उनका और एक आलेख 'क्या हम बुद्धिहीन बन गए हैं ?' में तिलक ने पाठ्यक्रम पर अपनी बात रखते हुए लिखा है- ''आज पाठ्यक्रम का इतना मनोवैज्ञानिक दबाव छात्र पर है कि मेधावी छात्र भी उसके दबाब के कारण टूट जाता है ।''[6] हमें लगता है कि आज भी हालात वहीं है और इसमें परिवर्तन की जरूरत है । आज नई शिक्षा नीति का आगाज हुआ है । करीब 36 वर्षों के बाद नई शिक्षानीति सामने आई है लेकिन उस पर कब अमल होगा यह कोई नहीं जानता । इस नीति में क्या सहीं और क्या गलत है इसका विश्लेषण अब शुरू हो चुका है इसलिए स्वयं तिलक ने एक स्थान पर लिखा है- ''पाठ्यक्रम अगर मुश्किल या कठिन करने से छात्रों की बुद्धि और उसका दर्जा नहीं बढेगा अपितु इसका विपरित परिणाम होगा और छात्र मानसिक रूप से विकलांग ही होगा ।''[7] छात्र विकलांग न हो इसका उत्तरदायित्व सरकार का है ।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है स्वयं को जानना अर्थात आत्मज्ञान और आत्मस्वरूप का ज्ञान 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' इस श्रेणी में आता है । किन्तु यहीं ज्ञान हमें सत्य से रू-ब-रू कराता है और सत्य की पहचान कराता है और इस साक्षात्कार के कारण विशाल आनंद की अनुभूति प्राप्त हो जाती है ।

शिक्षा विषयक इन सम्पादकीय लेखों में लिखे हुए विचार केवल आलोचनात्मक नहीं है बल्कि कई बार यह निर्णायक भी सिद्ध होगे । क्योंकि 'परोपदेशे पांडित्य' कहावत सार्थक करने वालों में तिलक का नाम कभी भी नहीं था । खुद उन्होंने डेक्कन एज्युकेशन सोसायटी, न्यू इंग्लिश स्कूल और फर्ग्युसन कॉलेज जैसे अनेक शिक्षा संस्थान खोलकर उन्हें सफलता

से चलाया भी था । अंग्रेज सरकार के खिलाफ अगर सशक्त आंदोलन चलाना है तो उसके लिए केवल स्वदेशी और राष्ट्राभिमान के जागरण के साथ राष्ट्रीय शिक्षण की भी जरूरत है यह उनका अभिमत था । क्योंकि तिलक अच्छी तरह से जानते थे, हिन्दुस्तान में शिक्षा प्रचार-प्रसार करने के पीछे अंग्रेजी सरकार की नियत कभी भी साफ-सुथरी और शुद्ध नहीं थी । इसके पीछे गर्वन्मेंट नौकर बनाने का ही हेतु था इस बात से तिलक अच्छी तरह से परिचित थे । किसी शैक्षणिक आयोग की स्थापना करने के बाद अंग्रेजी सरकार अपना उत्तरदायित्व छोड देता था या उसके प्रति उदासीन रहता था । यही ब्रिटिश सरकारी की अवधारणा भी थी । युरोपीय, अमरिकन शिक्षा प्रणाली प्रयोगात्मक एवं रोजगाराभिमुख थी, उस शिक्षा का हिन्दी शिक्षा प्रणाली में कही नामोनिशां भी नहीं था इस बात को तिलक ने कई स्थानों पर स्पष्ट किया है । जब की शिक्षानीति सरकार तय करती है तब सरकार का हेतु उन्नत और उदात्त होना आवश्यक है जो ब्रिटिश सरकार का कभी नहीं था । अन्यथा उस समय के विश्वविद्यालय और आज के विश्वविद्यालय तथा शिक्षानीति में क्या फर्क नजर आता है ? इसलिए आज भी मन में बार-बार यही सवाल आता है कि अगर आज तिलक होते तो उसी भावना के साथ शिक्षा नीति के संदर्भ में निश्चित ही अपना योगदान देते इसके प्रति कोई आशंका नहीं है । जो मनुष्य अपना जीवन अध्ययन और अध्यापन में बीता देता है उसे ही शिक्षा प्रणाली का गहरा ज्ञान होता है और तिलक इसी श्रेणी के मनुष्य थे ।

सरकारी शिक्षा आदमी की गुलामी को बढाती है इसलिए कोई गुलाम राष्ट्र है तो वहाँ की शिक्षा प्रणाली उसी देश के विद्वान लोगों के हाथ ही होनी चाहिए अन्यथा इस शिक्षा से कुछ भी लाभ नहीं होगा । शिक्षा से देशवासियों की उन्नति और प्रगति होनी आवश्यक है । कोई भी पाठ्यक्रम उस देश की भविष्य की प्रगति की बुनियाद है । इसलिए लोकमान्य तिलक ने लिखा है- ''जिस दिन हमें स्वराज्य मिल जाएगा उस दिन से हम शिक्षा मुफ्त और आवश्यक करेंगे । बाद में बाकी बाते देखी जाएंगी । क्योंकि शिक्षा से छात्र के भावी जीवन में उपयुक्त और मददगार साबित होता है । विगत पीढ़ी का तजुर्बा आनेवाली पीढ़ी को देना इसका नाम शिक्षा है, माध्यम चाहे पुस्तक हो या की अन्य । माध्यम महत्वपूर्ण नहीं है । भारतीय नागरिक होने के नाते हमारे जो हक और अधिकार है उसे समझने के लिए शिक्षा की जरूरत है ।''[8]

शिक्षा प्रणाली शिक्षकों को सम्मान देना सिखाती है । हमने जिससे जो भी कुछ ज्ञान ग्रहण किया है उसके प्रति हमें कृतज्ञता ज्ञापित करनी चाहिए और यही सही विद्यार्थी का धर्म है । जीवन का मुख्य उद्देश्य सत्य की खोज ही है और सत्य की खोज में शिक्षा सहायक सिद्ध हो सकती है । सत्य की खोज आदमी को महान दार्शनिक भी बना सकती है और भटकनेवाला योगी भी । लेकिन सत्य की खोज इतनी आसान नहीं होती । जिन लोगों का सत्य से साक्षात्कार हुआ है उन लोगों के लिए मुक्त होना आसान है । लेकिन मूलत: सत्य प्राप्ति के लिए हमें संस्कारों से ही मुक्ति प्राप्त करनी होगी । मन को मुक्त करते हुए स्वतंत्र प्रज्ञा को जागृत करना यह शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है लेकिन वर्तमान शिक्षा प्रणाली से यह नहीं हो सकता । इसीलिए लोकमान्य तिलक के अनुसार शिक्षा प्रणाली पूर्णत: असफल

हुई है । आज विज्ञान एवं तकनीक प्रगती अपनी चरमसीमा पर पहुँची है लेकिन फिर भी लोग युद्ध करते हैं । आज जानलेवा रेस चल रही है हर कोई उस रेस में शामील हो रहा है लेकिन यह रेस घोडों की नहीं गधों की है और इसलिए 'मुझे गिरा के तुम संभल सको तो चलो' क्योंकि 'यहाँ कोई किसी को रास्ता नहीं देता' इस मुकाम पर हम आ पहुँचे हैं । दुनिया के हर कोने में आज युद्धजन्य स्थिति है इसका अर्थ यहीं है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में कुछ न कुछ खामियाँ जरूर है । और एक सब से बडी बात यह है कि दुनिया के सामने जो भी समस्याएँ हैं वह इन सुशिक्षित लोगों ने ही निर्माण की है, अज्ञानी लोगों ने नहीं । यह सब से बडा खतरा मानव जाति के सामने हैं ।

शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में तिलकने जो विचार रखें हैं वह आज भी प्रासंगिक हैं । आज भी उनमें कोई फर्क नहीं हुआ है । उनके अनुसार वर्तमान शिक्षा प्रणाली मानव नहीं अपितु मशीन बनाती है और यह विद्यार्थी अपना स्वतंत्र विचार नहीं रख पाते क्योंकि उनकी सोचने की क्षमता ही खत्म होती जा रही है । आज शिक्षा का संदर्भ नौकरी से ही जुड़ा हुआ है और इसलिए एक विशिष्ट कौशल प्राप्त करने के लिए शिक्षा ग्रहण करना इतना ही सीमित अर्थ शिक्षा से जुड़ा हुआ है ।

जीवन की एक सुरक्षित चौखट बनाकर, पैसा, पद और प्रतिष्ठा प्राप्त करना और दैहिक उपभोग के साधन जुटाना इनता ही शिक्षा का मर्यादित अर्थ है । यह शिक्षा प्रणाली मानवी मन का न विकास कर पाती है और न ही इससे बुद्धि का विकास होता है । वह केवल गुलामी की आदत का निर्माण कर सकती है । प्रत्येक मनुज में जो मानवता निहित होती है उसके बारे में यह शिक्षा प्रणाली मौन रहती है । किसी भी तांत्रिक या तकनीक कौशल से जीवन सफल नहीं हो सकता इसलिए इस शिक्षा प्रणाली का कोई भी मूल्य नहीं है ।

तकनीक प्रगति मानवी जीवन को पूर्णता की ओर नहीं ले जा पाती और इसलिए मानवी जीवन समृद्ध नहीं हो सकता । जीवन की सार्थकता से आदमी दूर रहता है । उसका आत्मसंघर्ष खत्म नहीं होता और दुःख बढता रहता है । वह आनंद से सैकडो मील दूर रहता है । विज्ञान और तकनीकी प्रगति ने आदमी के हाथ में भयानक हथियार आए हैं । मानवी हृदय प्रेमशून्य अर्थात भावनाओं से दूर जा रहा है । मनुष्य का बुद्धि पक्ष प्रबल हुआ है और भाव पक्ष समाप्त हुआ है । संक्षेप में और एक शिक्षाविद् आचार्य विनोबा भावे के अनुसार अब 'साक्षर' नहीं हम 'राक्षस' बन चुके हैं ।

उपरोक्त विवेचन से यहीं स्पष्ट होता है कि अब आदमी में सद्‌गुणों के बजाय दुर्गणों की वृद्धि हो रही है जो इन्सान को सोचने नहीं दे रही है । मन शांत एवं स्थिर नहीं रह पाता और मन का कोलाहल खत्म नहीं होता ।

परीक्षा, उपाधि, विश्वविद्यालय के नाम से ही संप्रति शिक्षा प्रणाली चल रही है लेकिन इससे आदमी भ्रमित एवं आत्ममुग्ध बन गया है । अपनी बौद्धिक, आर्थिक और अधिकांश अपनी रूचि के मुताबिक आदमी शिक्षा की दिशा तय करता है लेकिन जब सामने जिन्दगी की असली लडाई आती है तब लडने की और एक अच्छे इन्सान के रूप में जीने की क्षमता उसमें नहीं होती ।

हमारे मतानुसार वर्तमान सदी ज्ञान की नहीं अपितु जानकारी की सदी है । इसको ही हम विकास कहते हैं । लेकिन उस मनुष्य के मन में जो कमजोरियाँ होती है वह खत्म नहीं होती और वर्तमान आदमी अपने मन के खिलाफ कोई छोटी-सी बात होती है तब वह आत्मघात करता है । वर्तमान में आत्मघात की समस्या से हर कोई परेशान है । समाज का एक भी वर्ग ऐसा नहीं है जो आत्मघात की इस समस्या से मुक्त हैं । छात्र, किसान, अध्यापक यहाँ तक डॉक्टर भी अब आत्मघात क्यों कर रहे हैं ? इसका उत्तर वर्तमान शिक्षा प्रणाली की असफलता में छिपा हुआ है । आदमी अब आत्मसंवाद करना भूल गया है और संवाद करने के लिए उसके पास कोई और मनुष्य बचा नहीं है ।

तिलक के अनुसार आज सरकार भी यह नहीं चाहती की शिक्षा से परिपूर्ण आदमी का निर्माण हो ।[9] सरकार केवल मानवी यंत्रों का निर्माण चाहती है जिनके पास कोई विशिष्ट कौशल हो और वही बात धर्म की भी है । धार्मिक संगठन एवं शासकीय प्रणाली को सर्वाधिक खतरा इन मनुष्यों से हैं और दोनों मानवीय भावनाओं से परिपूर्ण मनुष्य से डरते रहते हैं । इस कारण धर्म और सरकार शिक्षा प्रणाली पर अपना प्रभुत्व जमाने की कोशिश में प्रयासरत रहते हैं । वर्तमान शिक्षा प्रणाली से कौशल विकसित होते हैं लेकिन सच्चे मनुष्य का निर्माण नहीं होता । इसलिए समाज में अंततः परिवर्तन नहीं होता यह वर्तमान की सबसे बडी त्रासदी है । शिक्षा के इस बाजार में सच्ची शिक्षा प्राप्त नहीं होती यह सबसे बडी युगीन सच्चाई है ।

तिलक के अनुसार यह वर्तमान शिक्षा प्रणाली है और इस भयावह स्थिति में आदमी की संवेदना खत्म न हो इसके लिए हमें प्रयास करने होंगे । यही शिक्षा का मूल उद्देश्य भी है । 1 अगस्त 1920 में तिलक की मृत्यु हुई लेकिन शिक्षा के संदर्भ में तिलक के विचार आज भी प्रासंगिक एवं सार्थक प्रतीत होते हैं ।

निष्कर्ष — उपर्युक्त विवेचन से यहीं स्पष्ट होता है कि लोकमान्य तिलक की शिक्षा विषयक स्पष्ट अवधारणा थीं और शिक्षा के संदर्भ में उन्होंने जो भी विचार अपने लेखन के द्वारा शब्दबद्ध किए हैं आज भी प्रासंगिक एवं सार्थक हैं । लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक आज हमारे बीच में नहीं है लेकिन अपने लेखन के माध्यम से वे आज भी हमारे साथ है । उन्हे विनम्र अभिवादन करते हुए हम अंत में यही कहना चाहते हैं —

''अष्टादशपुराणेशु व्यासस्य वचनद्वयम्
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम ।''[10]

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक उपर्युक्त वचन सार्थक करते हैं ऐसा मानते हुए हम अपनी बात को विराम देते हैं ।

संदर्भ संकेत

1. कठारे अनिल डॉ. — आधुनिक महाराष्ट्राचा इतिहास, विद्या बुक पब्लिशर्स, औरंगपुरा, औरंगाबाद-431001, प्रथम संस्करण 2015 पृ. 327

2. केळकर न. चि. — तिलक सुक्ति संग्रह, केसरी मराठी प्रकाशन, तिलक वाडा, पुणे-411030, संस्करण-1938, पृ. 212
3. वही, पृ. 245
4. वही, पृ. 249
5. वही, पृ. 253
6. वही, पृ. 267
7. वही, पृ. 278
8. मुखी एच. आर. — A Simple History of Modern Indian Political Thought सुरजीत बुक ड़ीपो, नई सड़क, दिल्ली-110006, संस्करण-1970, पृ. 170
9. केळकर न. चि. — तिलक सुक्ति संग्रह, केसरी मराठी प्रकाशन, तिलक वाडा, पुणे-411030, संस्करण-1938, पृ. 312
10. गिरि गोविंददेव स्वामी — श्रीराम कथामृत, धर्मश्री प्रकाशन, मानसर अपार्टमेंट्स, पुणे विद्यापीठ मार्ग, पुणे-411016, तृतीय संस्करण-2011, पृ. 599

डॉ. भीमराव वाघचौरे के उपन्यासों में अभिव्यक्त कृषक जीवन

डॉ. सुनील डहाळे

महाराष्ट्र की समृद्ध सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक परंपरा में मराठवाड़ा क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संत नामदेव, संत एकनाथ, संत जनाबाई, संत बहिणाबाई, निपट निरंजन, जनार्धन स्वामी आदि संतों के पुनीत वास्तव्य के कारण इसे संतभूमि भी कहा जाता है। अजंता, एलोरा के अद्भुत शिल्प और गुफाएँ इस क्षेत्र की वैश्विक पहचान रही है। लेकिन पिछले कुछ दशकों में महाराष्ट्र के मराठवाड़ा क्षेत्र में दिन-ब-दिन कम होती बारिश, घटता जलस्तर, निरंतर पड़ता अकाल, सूखा, बंजर होती जमीनें और उजड़े खेत-खलियान ने यहाँ के किसान को भूखमरी, गरीबी और दरिद्रता की खाई में धकेल दिया है। भीषण अकाल और आर्थिक विपन्नता के कारण यहाँ का किसान विपरित परिस्थितियों से जुझते हुए नरक सा जीवन जीने के लिए मजबूर हो गया है तथा इन असह्य परिस्थितियों के सामने हार कर आत्महत्या कर रहा है। कृषक जीवन की यही त्रासदी डॉ. भीमराव वाघचौरे के उपन्याओं में यथार्थ रूप में चित्रित हुई है। उनके द्वारा लिखित रानखळगी, गराडा, पानघळी, अंगारकूस तथा नवंकाट वन आदि उपन्यास आँचलिक और बृहद् कृषक जीवन की त्रासदी के जिवंत दस्तावेज माने जाते हैं। जैसे हिंदी में प्रेमचंद के बाद आँचलिक उपन्यासकारों में फनीश्वरनाथ रेणु ने अत्यंत सशक्त रूप में कृषक जीवन का यथार्थ चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। उन्होंने बिहार के पूर्णिया जिले के आसपास के समाज जीवन को ही अपने उपन्यास का आधार बनाया है। उसी तरह भीमराव वाघचौरे ने अपने उपन्यासों में महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले के वैजापुर परिक्षेत्र का ग्रामीण जनजीवन, वहाँ की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थिति का अत्यंत सजीव और यथार्थवादी चित्रण किया है। इन उपन्यासों में प्रमुख रूप से प्राकृतिक आपदाओं के साथ-साथ सरकारी अनास्था, प्रशासन, व्यापारी और पूंजीपतियों के द्वारा हो रहे शोषण और प्रताड़ना से त्रस्त किसानो का संघर्षशील जीवन मुखर हुआ है।

डॉ. भीमराव केवल कलम के धनी नहीं है, वे स्वयं एक किसान है। उन्होंने न केवल किसानों की पीड़ा और यातनाओं को देखा है बल्कि स्वयं उसे सहा और अनुभूत भी किया है। इसलिए उनका चित्रण इतना जिवंत बन पड़ा है। उनके पहले उपन्यास रानखळगी में अकाल पीड़ित अप्पा और उसके परिवार की दुरावस्था का चित्रण किया गया है। अतिवृष्टि के कारण फसल के भारी नुकसान की घटना के बाद दामा और उसके परिवार को अनेकानेक संकटों का सामना करना पड़ता है। यहीं से एक खुशहाल परिवार की दुरावस्था की शुरुआत होती है। निरंतर पड़ते अकाल के कारण गाँव के नहर, तालाब तथा कूएँ सब सूखे पड़े हैं। न खेती को पानी है न पिने को। जानवरों को भी चारापानी नसीब नहीं होता। खेती के लिए तो छोड़ो यहाँ मनुष्य को अपनी प्यास मिटाने तक के लिए पानी नहीं मिलता है। घड़े भर पानी के लिए कोसों दूर जाना पड़ता है। बारिश की कमी के कारण फसल भी नष्ट हो जाती है। किसान बारिश के इंतजार में आकाश की ओर आँखे गढ़ाए बैठता है पर काले बादलों से भरे हुए आकाश से पानी की एक बूंद तक नहीं

गिरती । 'आभाळ निसतच भरून येत व्हत ....पुंजक्या-पुंजक्या ढगाळ काळ व्हत पर गडगडत नव्हत... निस्तच आशा दाउन इतळत व्हत'1

फसल की बर्बादी और अकाल की भीषणता में दहकता किसान भूखमरी, दरिद्रता और गरीबी के कारण त्रस्त हो जाता है । दिन रात खेती में कठोर मेहनत करने के बाद भी हाथ में कुछ नहीं आता । इस दृष्टचक्र का भागी उसके बेटे को न बनना पड़े इसलिए अप्पा अपने बेटे दामा को पढ़ाना चाहता है । उसे उम्मीद है कि वह पढ़-लिख कर परिवार के भाग्य को बदल देगा । दामा विपरित परिस्थितियों में भी अपनी शिक्षा पूरी करता है । दामा वैचारिक रूप से प्रौढ़ है । वर्त्तमान शिक्षा व्यवस्था की विसंगति के संदर्भ में वह कहता है कि प्राप्त शिक्षा और वास्तविक जीवन का कोई संबंध नहीं है । "जे जे शिकवीत व्हते, त्या शिकवण्याचा आन आपला कुठंच संबंध न्हायी वाटायचं, त्यांनी शिकवलेलं आपलय । आन म्होरच्या आयुष्यात त्याचा आपल्याला कायी उपेग व्हईल । आस आजीबात वाटत नव्हत ।"[2] यह कैसी विडम्बना है कि हम भूख और दरिद्रता में जी रहे अपने लोगों के जीवन को समझने के बजाय हमे दुनिया भर के इतिहास को पढ़ाया जा रहा है । दामा कहता भी है- "मॉडर्न वर्ल्ड चा खर तर वयताग येत व्हता ...सोताच्या देशाचं उरकंना, आन चाललेत दुसऱ्या देशातल्या क्रांत्या अभ्यासायला ! इथं जनता खायावाचून मरतीय, त्यांचं काय तरी आभ्यासायला नको का ? पर समदे इतिहास राजे-राजवाड्याचे आन गाद्यागिरद्यावर लोळणार्याचे ! गरीब दुबळे मेले तरी राजगाद्या हायेच ..मन चिडत व्हत..."[3] शिक्षा व्यवस्था पर खेतीहर मजदूर के बेटे की यह प्रतिक्रिया अत्यंत गंभीर है । दामा की पढ़ाई से लेकर नौकरी तक का संघर्षपूर्ण सफर दिल दहला देने वाला है ।

दामा का परिवार प्रतिनिधिक रूप में महाराष्ट्र के संघर्षपूर्ण जीवन जीने वाले एक किसान परिवार का प्रतिनिधित्व करता है । डॉ. वाघचौरे ने रानखळगी में अकालग्रस्त किसान परिवार की पीड़ा को जितना यथार्थ रूप में चित्रित किया है उतने ही सशक्त रूप में उन्होंने उपन्यास में विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से प्रमुख पात्रों की मनोदशा को भी विश्लेषित किया है । उपन्यास का विषय सूत्र एक होने पर भी किसान के समग्र अंतर्बाह्य जीवन को चित्रित करने में लेखक सफल रहा है । इस संदर्भ में युवा आलोचक डॉ. महेश खरात कहते हैं कि "इस उपन्यास में केवल दामा का अकाल पीड़ित परिवार कथानक का केंद्र नहीं है बल्कि कथानक को गतिशीलता प्रदान करने के लिए समग्र किसानों के अंतर्बाह्य जीवन को पूरी ताकत से चित्रित करने का लेखक का प्रयास प्रशंसनीय है ।"[4]

उपन्यास में घटित अधिकांश घटनाएँ तथा कथानायक का संघर्षशील जीवन लेखक के व्यक्तिगत जीवन से अधिक साधर्म्य रखता है । ऐसा लगता है कि यह शायद लेखक ही अपनी जीवनानुभूति को उपन्यास के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा है लेकिन इस संदर्भ में उन्होंने स्वयं इस उपन्यास के आरंभ में स्पष्ट किया है कि "यह उपन्यास न जीवनी है न आत्मकथा यह केवल 1972-74 के भीषण अकाल से प्रभावित खेतिहर मजदूर के संघर्ष और अनुभवों का कथन मात्र है ।"[5]

गराडा उपन्यास लगभग इसी विषय सूत्र को आगे ले जाता है । दिन-ब-दिन कम होती बारिश, अकाल, सूखा, बिजली की कमी, फर्जी बीज, रासायनिक खत, कर्ज का बढ़ता

बोझ, सरकारी आधिकारी, पूँजिपति तथा व्यापारियों, आडतियों, बिजली बोर्ड के कर्मचारी, मार्केट कमिटियों के दलाल इनके द्वारा होता शोषण इन प्राकृतिक और मनुष्य निर्मित संकटों और समस्याओं के चक्रव्यूह में फंसे दिन । उपजाऊ खेती को बेचकर अब दूसरे की खेती में मजदूरी करने का संकट किसान पर आ गया है । एक समय था कि इसी जमीन पर उसने अपनी मेहनत से भरपूर फसल उगाई थी ''...हयाच बागाईतात कधीकाळी आप्पांन खंडीनं दाण्यायच्या राशी मोजल्या व्हत्या । हजारा-हजारांन कडन्या-सरमाडाच्या वळाया रचल्या व्हत्या ...पोत्यातनं पिकत व्हतं... नोटायन इकतं व्हतं... आनंद-उल्लासव्हता । कष्टाला बरकत व्हती । आन म्हनं माणसायचीबी चंगळ व्हती...''[6] आज पानी के अभाव में खेती, जानवर और मनुष्य भी बेहाल हो गया है । बदलते प्रकृतिचक्र ने सबकुछ बदलकर रख दिया । ''किशान की पन हल्ली सगळे चळीत्रच बिघडत चालले व्हते, मोसमच पुरते बदलत चालले व्हते । घटका पळाचं, जोडा-नखित्राचं आन पाण्या पावसाचं कायीच खर रहयाल नव्हत... सगळचा सगळ कसं बेटाईम व्हत चालल व्हत...''[7]

गराडा में व्यापारी, बिजली बोर्ड और पंचायत के अधिकारी व बाबू तक किसानो का शोषण करते नज़र आते है । लोड शेडिंग के नाम पर घंटों बिजली को बंद रखकर किसानों का शोषण किया जाता है । प्रशासन की दोगली निति और राजनीतिक अनास्था पर टिपण्णी करते हुए कहता है- ''त्याच्यायाला शहरातल्या लायनी बरुग्रा नै जात कव्हा ? तिथल्या डीप्यावर नै येत कव्हा लोड ! तिथं सम्द कडीचोट ! आन इकड मातर... हाक ना बोंब ...अप्पा म्हणतात समदे शेतकरुग्राचे काळ हेत सायबू ! आन आपुन म्हणतो, हे सरकार आल्यावर असं व्हईन. आन ते गेल्यावर तसं व्हईन आरे सगळे इथून तिथून एकच रे बाबा ! जेहे ते बर हे ।''[8]

किसान अपनी खेती में दिन रात मेहनत कर फसल उगाता है । इस फसल की कीमत तय करते है यह अवसरवादी राजनेता और व्यापारी । खेती से बाजार तक आनाज पहुँचाने में जो कष्ट उसे उठाना पड़ता है उसे वह किसान ही जाने । खेती करना अब दिन-ब-दिन मुश्किल होता जा रहा है इस सन्दर्भ में साहेबराव कहता है ''...च्यायला, सालभराच्या कस्टा-खरचाच हिसूब काढला । तजगातला हयोवं पहिला धंदा आसल की, कायम सोरूपी फक्त तोट्यात चालतो । एकीकडे सरकार आणि दुसरीकडे निसर्ग दोन्हीच्या कचाट्यात फक्त सापडतो शेतकरी ।''[9] खेती में मेहनत करनेवाले किसान से ज्यादा मजदूर ही सुखी है... ''मी तं म्हणतो अप्पा, ह्या सगळ्या पेक्ष्या मजूर बरा ! निव्वळ दिवस भर काम करायचं आन संध्याकाळी पयसा हातात घेऊन चारी पाय मोकळ हिंडायचं... शेतकरुग्राला जर त्यांच्या शेती पेक्ष्या दहापट पयसा बिनखरची मिळत आसल त मग त्यांन उभ्या साल घासीत बसावं ?''[10]

ग्रामीण जीवन में शोषण एवं तद्‌जन्य निर्धनता और बेबसी का अत्यंत यथार्थ अंकन इस उपन्यास में हुआ है । इस संदर्भ में मन्दाकिनी कुलकर्णी कहती है- ''बिजली की किल्लत, निरंतर घटता जल स्तर, मजदूरों की कमी, अनाज को उचित दाम न मिलना, आडतियों की दादागिरी, दुष्ट प्रकृति चक्र इन कारणों से किसान का जीवन बेहाल हो गया है । उसी की मूक वेदना को यह उपन्यास मुखर करता है ।'[11]

पानघळी उपन्यास का प्रमुख पात्र भगा पीड़ित किसान का प्रतिनिधित्व करता है । अपने पिता को दिए वचन के अनुरूप वह और उसकी पत्नी परभा अपने दोनों छोटे भाई और बहन की सब जिम्मेदारी उठाते है । उनके पोषण में किसी भी प्रकार की कमी नहीं होने देते । भगा अल्पभूधारक किसान है । अपने दोनों भाई सुसंस्कारी हो इसलिए खूद मजदूरी करके अनेक कष्ट सहकर उन्हें पढ़ाता है । नौकरी मिलने के बाद भाई इस परिवार को गरीबी की खाई से निकालेंगे इस आशा से भगा अपने भाइयों की नौकरी के लिए अपनी जमीन तक गिरवी रख देता है । लाड प्यार से पली अपनी बहन की शादी भी सधन परिवार में कराता है । यह कठिन समय भी गुजर जाएगा । सुखदायक भविष्य की उम्मीद रखकर वह बिना शिकायत करे कष्टप्रद जीवन जीते रहता है । लेकिन जिन भाइयों के भरोसे वह परिवार की किस्मत बदलने की सोच रहा था । वही भाई अपनी शादी के बाद अपने इस भाई का साथ छोड़ देते हैं ।

खेती के लिए पूर्णतः बारिश पर निर्भर किसान का जीवन बड़ा असहाय होता है । असमय बारिश के चलते फसल बर्बाद हो जाती है । कूएँ का पानी कम हो जाता है । पानी के अभाव में जमीन सूख जाती है । समय पर कहीं मजदूरी के काम भी नहीं मिलते है । इसके कारण किसान अकाल का शिकार हो जाता है । इस पर समर्पक भाष्य करते हुए भीमराव कहते है– ''एक तर पाऊस पडत नव्हता । इकडून तिकडून पडलाच येळावर पाऊस तर पेरण्या वयरनीचं कायीच हातात नव्हत... सम्दच परसोद्यान असल्यानं कायी एक करता योत नव्हत...''[12] भगा अपनी चार बीघा जमीन से कुछ प्राप्त नहीं कर सका । खेती, जमीन, बारिश, गरीबी, भाइयों का अपवर्तन, रिश्तों में आयी दूरियाँ इन सभी संकटों से जुझते हुए अपनी जमीन अपने बेईमान भाइयों के नाम कर अंत में मृत्यु को अपनाता है । भगा की दरिद्रता और उसके मृत्यु की विदारकता पाठकों को आहत कर देती है ।

गाँवों की सामजिक रीतियों, अभिवृतियों एवं मानवी अंतर्संबंधों में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहे हैं । ग्रामीण जीवन का हर पथ इस संक्रमण में फंस रहा है । इसी सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों की विघटन प्रक्रिया का स्वरुप वाघचौरे जी के अंगारकुस और नवंकाटवन इन उपन्यासों में यथार्थ रूप में प्रकट हुआ है । उपन्यासों में लेखक ने कृषक समस्याओं से अधिक बनते बिगड़ते मानवी अंतर्संबंधों को विश्लेषित किया है.

अंगारकुस यथार्थवादी उपन्यास है । इसमें किसानो की समस्या से अधिक अक्का के माध्यम से स्त्री वेदना को अधिक मुखर हुई है । लेकिन उपन्यास की पृष्ठभूमि किसान जीवन से सम्बंधित ही रही है । उपन्यास की शुरुआत में ही इसका संदर्भ आता है कि अकाल की पीड़ा से अप्पा का परिवार भी आहत हुआ है । अकाल के कारन भूक प्यास मिटाने तक के लिए गाँव में कुछ बचा नहीं है, ना खेत में फसल बची है ना हाथ को रोजगार । लोग अपने गाँव, घर तथा खेती को छोड़कर पेट की भूख मिटाने के लिए शहर की ओर जा रहे है । अप्पा भी अपनी छोटी बेटी को लेकर गाँव छोड़ते है । अकाल की भीषणता के संदर्भ में लेखक कहते हैं– ''निसर्गाने पुरता झोपवला, नुसतंच दुष्काळी वारं सुटलं, नाकी–डोळी झोबून माणसांना पुरत बेम्बळ करून सोडलं... दुष्काळाने माणसाचे गळे दाबले, अन्नधान्याचे भाव आभाळाला भिडले । रान शेतातली कामच बंद झाली...''[13]

उपन्यास की अक्का विपरित परिस्थितियों में भी अपनी माँ के पश्चात परिवार की सम्पूर्ण जिम्मेदारी उठाती है । वह सहनशील, समझदार, परिश्रमी और धार्मिक प्रवृत्ति की है । दुर्भाग्य से वह गर्भाशय के कैंसर की शिकार होती है । इस स्तिथि में भी उसे सांसारिक जीवन जीने की प्रचंड अभिलाषा है निस्संतान और दुर्धर रोग से पीड़ित होने के कारण उसे परिवार की उपेक्षा को भी सहना पड़ता है । फिर भी अपने परिवार के प्रति उसे बहुत लगाव है । उसके भाई आण्णा को उसके प्रति विशेष प्रेम और आदर रहा है । उपन्यास में अक्का का जीवन संघर्ष उसके भाई के साथ-साथ सभी को अस्वस्थ कर देता है । इस प्रकार से दुर्धर रोग से पीड़ित संघर्षशील स्त्री की संवेदनशील करुण कथा को अभिव्यक्त करने वाले इस उपन्यास में आँचलिक जीवन, खेती की दरिद्रता, पम्परागत मान्यताएँ, पुरुषसत्ताक व्यवस्था का भी मार्मिक चित्रण हुआ है ।

नवंकाटवन उपन्यास का विषय बिल्कुल लिक से हटकर है । हाल ही में बने नए कानून के तहत स्त्रियों को पिता की पुश्तैनी जायजाद में बराबरी का हक कानूनन मिला है । यह महत्वपूर्ण घटना है । इस घटना से निर्माण होनेवाले संघर्ष क्षण इस उपन्यास में चित्रित किए गए हैं । उपन्यास में परिस्थिति के साथ निर्भिडता से संघर्ष करती हुई स्त्री सुनीता की कथा है । पिता की पुश्तैनी जायजाद में बराबरी का हक मिले इसलिए वह अपने ही भाइयों के साथ संघर्ष करती है । इस कानूनन लड़ाई में वह जीत भी जाती है । पर अंतिमतः उसे अपने भाइयों के ही आश्रय में आना पड़ता है । जायजाद के लिए बहनोई का दावा, उसकी संशयास्पद मृत्यु, कोर्ट कचहरी के चक्कर, स्त्री मन को जानना, समाज के विधवा स्त्री संबंधी विचार, भाई-भाई, भाई-बहन, पिता-पुत्र, आप्तजन के बीच कटुता, परिवार सुख के लिए व्याकूल पुरुष और वैधव्य में स्वछंद हुआ स्त्री रूप ऐसी विविध नाट्यपूर्ण घटनाओं और चरित्रों के लेकर उपन्यास का कथानक रचा गया है जो पाठकों को अंत तक कथा के साथ बांधकर रखने में सफल हुआ है । प्रस्तुत उपन्यास को पढ़कर यह तर्क लगाना स्वाभाविक ही है कि स्त्री को समान न्याय देने के उद्देश्य से यह सुधारनावादी कानून तो लाया गया । पर जायजाद की लालच में आपसी रिश्ते-नातों में जो दरारें आ रही हैं उस पर भी तो सोचना आवश्यक है ना । वास्तविकता तो यह है कि व्यावहारिक स्तर पर इस कानून को लागु कर स्त्रियों को यथार्थ रूप में न्याय दिलाने में यह कानून असमर्थ है । प्रस्तुत उपन्यास इसी को प्रमाणित करता है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ. भीमराव वाघचौरे जी के समग्र कथात्मक लेखन के केंद्र में मराठवाड़ा क्षेत्र के भीषण अकाल, गरीबी और दरिद्रता की गर्त में संघर्षपूर्ण जीवन जी रहा दीन-हीन किसान ही रहा है । उन्होंने अपने लगभग सभी उपन्यासों में प्रकृति की अवकृपा के कारण निरंतर पड़ता अकाल, उजडती, बंजर होती खेत जमीनें, घटता जलस्तर, पानी के अभाव में व्याकुल मनुष्य और पालतू जानवर, पेट की भूख मिटाने के लिए अपनी खेती-बाड़ी को छोड़कर विस्थापित होते किसान और मजदूर, किसानों की समस्याओं के प्रति असंवेदनशील राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था, आडतियों, व्यापारियों द्वारा सर्व स्तरों पर होता किसानों का शोषण आदि समस्याओं का विदारक चित्र प्रस्तुत किया

है । इन समस्याओं के साथ ही उन्होंने किसानों के आतंरिक जीवन के सुख-दु:ख, व्यक्तिगत जीवन की उलझनें, रिश्तें-नातों के बीच की कड़वाहट को भी बड़ी आत्मीयता के साथ उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है । डॉ. भीमराव ने कृषक जीवन के सुख-दु:ख, वेदना, संघर्ष, दरिद्रता, गरीबी को स्वयं अनुभूत किया है, जिससे उनका लेखन इतना सजीव और सहज बन पड़ा है । उनके उपन्यास के शीर्षक, कथावस्तु, कथानुरूप पात्र संयोजन, सहज संवाद, वैजापुर के आँचलिक परिसर की विशिष्ट भाषाशैली, स्थानिक बोली भाषा के मुहावरें और लोकोक्तियों का प्रयोग, निवेदन और फ्लैशबैक शैली इन विशेषताओं के कारण मराठी ग्रामीण उपन्यास लेखन की परम्परा में डॉ. भीमराव के उपन्यास अपनी विशिष्ट पहचान बनाए हुए है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. वाघचौरे भीमराव, रानखळगी, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र.सं. 1988, पृ. 19
2. वही, पृ. 90
3. वही, पृ. 110
4. खरात महेश, प्रतिष्ठान (अंक छह, मई-जून 2006), पृ. 32
5. वाघचौरे भीमराव, रानखळगी, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र.सं. 1988, अर्पण पत्रिका से
6. वाघचौरे भीमराव, गराडा, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र.सं. 2002, पृ. 07
7. वही, पृ. 09
8. वही, पृ. 15
9. वाघचौरे भीमराव, गराडा, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र.सं. 2002, पृ. 30
10. वही, पृ. 105
11. कुलकर्णी मंदाकिनी, मराठी ग्रामीण कादंबरी आस्वाद आणि समीक्षा (संपा), संग्राम टेकले, शौर्य पब्लिकेशन्स, लातूर, प्र.सं 2017, पृ. 231
12. वाघचौरे भीमराव, पानघळी, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र.सं. 2002, पृ. 54
13. वाघचौरे भीमराव, अंगारकूस, साकेत प्रकाशन, औरंगाबाद, प्र.सं. 2007, पृ. 32

हिंदी-मराठी उपन्यासों में बदलता ग्रामीण जीवन

(रामदरश मिश्र तथा रा. रं. बोराडे के विशेष संदर्भ में)

डॉ. सचिन गपाट

ग्रामीण जीवन विस्तृत भारतीय जीवन का बुनियादी आधार रहा है । इससे ही हमारे महादेश को विराट् सभ्यता और संस्कृति का कैनवास प्राप्त हुआ है । ग्रामीण जीवन हमारे भारत देश की आत्मा और अर्थ-व्यवस्था का आधार रहा है । ऐसा महत्त्वत्त्वपूर्ण ग्रामीण जीवन समयानुसार परिवर्तित हो रहा है । उसमें अनेक बदलाव आ रहे हैं । इन बदलावों को चित्रित करने का कार्य भारतीय साहित्य शुरू से ही करता आ रहा है । भारतीय साहित्य में इसी दृष्टिकोण से हिंदी के रामदरश मिश्र तथा मराठी के रा. रं. बोराडे जी का उल्लेखनीय योगदान रहा है । इन्होंने साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से बदलते ग्रामीण जीवन को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है । ऐसी अभिव्यक्ति में इनका उपन्यास साहित्य अनूठा रहा है । इन्होंने उपन्यासों के माध्यम से बदलते ग्रामीण जीवन को प्रमुखता से प्रस्तुत किया है ।

परिवर्तन प्रकृति का नियम है । ''सामाजिक विकास एवं प्रगति के फलस्वरूप मनुष्य परिवर्तन की स्थिति में रहता आया है ।''[1] ग्रामीण जीवन में परिवर्तन के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति की घटना का विशेष महत्त्व रहा है । ''स्वतंत्रता ही वस्तुत: एक बुनियादी मूल्य है जिसने राष्ट्रीय मंच पर विभिन्न सामाजिक आर्थिक जटिलताओं के मध्य पुनर्निर्माण का प्रश्न उत्पन्न कर नई मानसिकता को जन्म दिया है ।''[2] ऐसी मानसिकता ने ग्रामीण जीवन को झकझोर दिया है । परिणामत: भारतीय ग्रामीण जीवन के मूल सामाजिक पक्ष, आर्थिक पक्ष, राजनीतिक पक्ष, धार्मिक पक्ष, शैक्षिक पक्ष एवं सांस्कृतिक पक्ष के ढाँचे में जबरदस्त परिवर्तन हुआ है ।

मिश्र जी ने ऐसे परिवर्तन को स्वतंत्रता पूर्व परिवेश में ही महसूस किया है । 'पानी के प्राचीर' उपन्यास में पाण्डेपुरवा गाँव का मलिंद गुंडों के दमन तथा गाँव के विकास के लिए नीरू को साथ करना चाहता है । गाँव के विकास के लिए वह सोचता है कि- ''गाँव के सारे नवयुवकों को इकट्ठा किया जाए और नवयुवक संघ बनाया जाए । वह नवयुवक संघ पुराने लोगों के अत्याचारों का मुकाबला करे । चोर-चाइयों से गाँव की रक्षा करे और गाँव को अच्छे रास्ते पर लाए ।''[3] परिवर्तन की ऐसी भावना ग्रामीण जीवन में आजादी के पूर्व ही पनप रही थी । इसमें भले ही वे नवयुवक सफल न हुए हो पर आजादी के पूर्व ऐसी कल्पना करना भी बड़ी बात थी ।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद ग्रामीण जीवन में परिवर्तन की प्रक्रिया अधिक तेज हो गई । भारतीय संवैधानिक तत्वों का प्रचार-प्रसार ग्रामीण जीवन में होने लगा । लाठी के बल की अपेक्षा न्याय, समता, और बंधुता का बोलबाला होने लगा । इसके अप्रत्यक्ष दर्शन मिश्र जी के 'जल टूटता हुआ' उपन्यास में होते हैं । बिरजू जेल से बाहर आने के बाद दीनदयाल, दौलत आदि से बदला लेना चाहता है तब सतीश उसे समझाता है- ''गाँव बहुत बदल गया है उसे परखो । सारा काम लाठी से नहीं होता ।''[4] इससे पता चलता है कि स्वतंत्रता के

बाद ग्रामीण जीवन की स्थिति में काफी परिवर्तन हुआ है । 'सूखता हुआ तालाब' में एक मंत्री का वक्तव्य है, "गाँव बड़ी तेजी से विकसित होकर आधुनिक हो रहा है । गाँव-गाँव में ट्यूबवेल लग गए हैं, चारों ओर सड़कें दौड़ रही हैं, जगह-जगह डिस्पेंसरी खुली है, शिक्षा का विस्तार हो रहा है, पंचायतें हैं, चकबंदियाँ हो रही हैं, चरगाह बन रहे हैं, किसानों को नए बीज और खेती के लिए सरकारी ऋण दिए जा रहे हैं ।"[5] मंत्री जी का यह वक्तव्य आंशिक और कुछ हद तक सत्य भी लगता है । मिश्र जी के 'बीस बरस' उपन्यास के दामोदर को लगता है कि "ग्रामीण जीवन की शक्ल सूरत में निश्चय ही बदलाव आया है । खड़ंजा सड़क छोटे-मोटे वाहन सड़क पर नज़र आ रहे थें । गाँव के हाईस्कूल, गाँव के खपरैल मकान धीरे-धीरे पक्के मकान में बदल रहे थें । सरकार के न चाहने के बावजूद लोगों ने बहुत कुछ बदला है, आधुनिक लहर को गाँव में हाँक कर ले आए हैं ।"[6] इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण जीवन के विकास के लिए विविध योजनाओं की घोषणा हो रही है । कुटुंब नियोजन, टंटा मुक्त (तंटामुक्त) गाँव आदि ऐसी विविध योजनाओं का निर्माण ग्रामीण जीवन के लिए हो रहा है । खेती के लिए मशीनों का प्रयोग हो रहा है । अब मोबाईल, डी.टी.एच. और इंटरनेट ने ग्रामीण जीवन में तीव्र गति से प्रवेश किया है । ऐसे परिवर्तित ग्रामीण जीवन के चित्र को बोराडे जी ने 'रिक्त-अतिरिक्त', 'महान गाव' तथा 'कथा एका तंटामुक्त गावाची' आदि उपन्यासों में चित्रित किया है ।

सामाजिक पक्ष : बदलते संदर्भ

ग्रामीण जीवन के विकास और परिवर्तन हेतु विविध योजनाएँ घोषित तो हुई परंतु क्रियान्वयन में समन्वय तथा उच्च मानसिकता का अभाव रहा । सड़कों के नाम पर खड़ंजा सड़कें निर्माण हो गई । भ्रष्टाचार के कारण घरों और स्कूलों के निर्माण में गुणवत्ता का अभाव रहा । डिस्पेंसरी में दवाओं का अभाव, पंचायतों में ग्राम सभाओं का अभाव दिखाई देने लगा । चकबंदियों में धोखा-धड़ी होने लगी । ऐसी परिस्थिति में किसान की दशा और भी खराब हो गई । अकाल तथा अतिवृष्टि ने उसकी कमर ही तोड़ दी । खेती के लिए महँगे बीज खरीदना अनिवार्य हो गया । परिणामतः ग्रामीण जीवन का केंद्र कृषक ऋण के कारण टूटने लगा । ऐसी मानसिकता से वह आत्महत्या की ओर बढ़ने लगा । इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण जीवन का अधपका विकास होने लगा ।

ग्रामीण जीवन के अधपके विकास की तुलना में शहरों का संतुलित विकास तीव्र गति से होने लगा । यातायात के साधनों के कारण ग्रामीण जीवन शहरों के निकट आ गया । परिणामतः शहरों का असर ग्रामीण जीवन को बदजात करने लगा । इससे ग्रामीण सामाजिक जीवन और भी टूटने लगा । ऐसे टूटते सामाजिक जीवन का चित्रण बोराडे जी के 'पाचोळा' उपन्यास में मिलता है । फैशन से प्रभावित सामंती वृत्ति का गरड गाँव में नया दर्जी लाता है । गंगाराम की पत्नी पारबती गंगाराम से कहती है- "गरड ने मशीन लाई है और मशीन वाला भी लाया है ।"[7] इससे गंगाराम जैसे ग्रामीणों का जीवन टूट रहा है । गाँव में मूल्य विघटन की प्रक्रिया भी तेज हो गई है । ग्रामीण जीवन के गाँव के बारे में 'सूखता हुआ तालाब' उपन्यास का रवीन्द्र कहता है कि- "इस गाँव में या तो हिजड़ा ही जी सकता है

या बदमाश ।''[8] ऐसी दशा ग्रामीण सामाजिक जीवन की हो रही है । ग्रामीण जीवन में रिश्ते-नाते में तनाव बढ़ रहा है । संयुक्त परिवार टूटे रहे हैं । परिवार के आपसी संबंधों में दरारे पड़ने लगी हैं । इसे बोराडे जी ने 'सावट' उपन्यास में चित्रित किया है । सावट उपन्यास में पमा का ससुर पमा के भाई दामाजी से कहता है- ''दामाजीराव हमने आपकी बहन का स्वीकार किया है । हमारी भानजी स्वीकारने में आप टाल-मटोल न करें, इतना आपको हमारा कहना है ।''[9] पमा के ससुर द्वारा दिए गए ऐसे दबाव को शिक्षा प्राप्ति की इच्छा के कारण दामाजी नहीं स्वीकारता । इससे पमा का सांसारिक जीवन टूट जाता है । दामाजी के पारिवारिक जीवन में बिखराव आ जाता है । इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण जीवन में ''खून का रिश्ता पानी हो रहा है ।''[10] ऐसी दशा में कुछ अच्छे बदलाव ग्रामीण सामाजिक जीवन में आ रहे हैं । विधवा विवाह, अंतर्जातीय विवाह, पुनर्विवाह आदि के संकेत मिश्र तथा बोराड़े जी के उपन्यासों में मिलते हैं । ऐसे टूटते सामाजिक जीवन में मिश्र के 'पानी के प्राचीर' का नीरू, मलिंद, 'जल टूटता हुआ' का सतीश, 'थकी हुई सुबह' की लक्ष्मी, 'बीस बरस' की वंदना तथा बोराडे जी के 'महान गाव' का चिमाजी 'कथा एका तंटामुक्त गावाची' का प्रकाशभाऊ बिराजदार ऐसे अनेक आदर्श पात्र भी सामने आ रहे हैं जो ग्रामीण सामाजिक जीवन को एक अच्छी और संतुलित दिशा देने का प्रयास कर रहे हैं ।

आर्थिक पक्ष : बदलते संदर्भ

ग्रामीण जीवन के आर्थिक पक्ष का प्रमुख केंद्र कृषक रहा है । कृषक तथा कृषि पर ही ग्रामीण जीवन की अर्थ-व्यवस्था आधारित होती है । बदलते ग्रामीण जीवन में ऐसे आधार का ही शोषण हो रहा है । शोषण के प्राचीन संदर्भ बदल चुके हैं । सहकार क्षेत्र, बैंक, साहूकार, ज़मींदार उसका नये सिरे से शोषण कर रहे हैं । इससे कृषक जो पहले आर्थिक विपन्न था वह और भी विपन्न हो रहा है । उसकी उपजी हुई फसल सामाजिक समस्या बन रही है । बिजली भी अब उसके साथ लुका-छुपी खेलकर उसे परेशान कर रही है । ऐसी स्थिति से तंग आकर बोराडे जी के 'रिक्त अतिरिक्त' उपन्यास का कृषक सिद्राम पिता नाथाप्पा से कहता है कि ''किसान के नसीब में ही ऐसा दलिंदर जीना क्यों आया है ?''[11] सिद्राम का यह सवाल बदलती ग्रामीण व्यवस्था के प्रति एक जोरदार तमाचा है । शोषण, कभी अकाल तो कभी अतिवृष्टि के कारण किसान आज अपने आप को आदिम अवस्था में महसूस कर रहा है । किसान के टूटने से गाँव के बारह हकदार भी टूट रहे हैं । कुल-मिलाकर बदलते ग्रामीण जीवन का आर्थिक पक्ष विपन्न हो रहा है । धनिक वर्ग और अधिक धनिक हो रहा है । रिक्त किसान अतिरिक्त हो रहा है । ग्रामीण आर्थिक जीवन में आर्थिक असन्तुलन का निर्माण हो रहा है । ऐसी स्थिति की ओर मिश्र तथा बोराडे जी ने स्पष्ट संकेत किए हैं ।

राजनीतिक पक्ष : बदलते संदर्भ

बदलते ग्रामीण जीवन के राजनीतिक पक्ष को मिश्र तथा बोराडे जी ने यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया है । आजादी के बाद देश की राजनीति में काफी परिवर्तन हुआ है । भूतपूर्व

साहूकारों, ज़मींदारों ने राजनीति में प्रवेश किया है । इनकी राजनीति के माध्यम से पैसा कमाने की प्रवृत्ति दिन-ब-दिन बढ़ रही है । वोट पाने के लिए नोट दिए जा रहे हैं । ज्यादातर नेता अनपढ़, बेमेल, भ्रष्ट, पदलोलुप और असहिष्णु दिखाई दे रहे हैं । राजनीति में जाति आधारित राजनीति का बोलबाला होने लगा है । मिश्र जी के 'आकाश की छत' उपन्यास में यश के पिता कहते हैं कि- ''अब चुनाव पर पैसे और जाति का दबाव लगातार बढ़ता जा रहा है ।''[12] 'जल टूटता हुआ' के सतीश की तरह आदर्शवादी नेता टूट रहे हैं । ग्रामीण जीवन में केवल 'विरोध के लिए विरोध' की राजनीति का प्रयोग हो रहा है । बोराडे जी ने इसे 'महान गाव' तथा 'कथा एक तंटामुक्त गावाची' उपन्यास में चित्रित किया है । 'महान गाव' का अवचितराव चिमाजी से कहता है- ''आज तक किसी ने भी हमारे विरोध में ग्रामपंचायत का चुनाव लड़ने की हिम्मत नहीं की है ।''[13] इस चुनाव में चिमाजी तो जीत जाता है पर उसे हमेशा अवचितराव का विरोध के लिए विरोध सहना पड़ता है । 'कथा एका तंटामुक्त' गावाची उपन्यास में कल्याणराव 'गावंडे टंटा मुक्ति' का अध्यक्ष बनने के लिए चुनाव में शराब का प्रयोग करता है । वह बाळासाहेब से कहता है- ''चुनकर आने के लिए लायक होना आवश्यक नहीं लगता बाळबा ।''[14] अर्थात् ग्रामीण राजनीति विकास की दिशा खो रही है । उसमें शराब, पैसे और जाति का प्रयोग हो रहा है । विकास के लिए पद न होकर पद प्राप्ति के लिए राजनीति का प्रयोग होने लगा है । राजनीति की ऐसी दशा में भी 'जल टूटता हुआ' का सतीश, 'महान गाव' का चिमाजी, 'कथा एका तंटामुक्त गावाची' का प्रकाशभाऊ बिराजदार और इंद्रजित पाखरे जैसे शिक्षित और अच्छे नेतृत्व गुणों वाले नेता ग्रामीण परिवेश में दिखाई दे रहे हैं । इसे भी बोराडे तथा मिश्र जी ने चित्रित किया है ।

धार्मिक पक्ष : बदलते संदर्भ

बदलते ग्रामीण संदर्भों के अनुसार ग्रामीण जीवन में जाति-धर्म की मान्यता में भी परिवर्तन हो रहा है । धर्म-भाग्य पर का विश्वास कम हो रहा है । कार्य, श्रम को महत्त्व दिया जा रहा है । जाति-पाँत के खोखले बंधन टूट रहे हैं । इसे मिश्र तथा बोराडे जी ने चित्रित किया है । मिश्र जी के 'आकाश की छत' उपन्यास का यश ब्राह्मण होने के पश्चात् अछूत जाति की रूपमती के घर पानी पीता है । अब हरिजन भी अपने आप में परिवर्तन ला रहे हैं । बीस बरस उपन्यास का दामोदर देखता है कि- ''अब नीचे गिरे हुए लोग उठ रहे हैं, सँभल रहे हैं, आदमी की तरह जीने का अपना हक माँग रहे हैं ।''[15] तात्पर्य यह है कि ग्रामीण जीवन के दलितों में चेतना निर्माण हो रही है । वे अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो रहे हैं । परंतु समाज के मुख्य प्रवाह में सम्मिलित करने की मानसिकता का आज भी अभाव ही रहा है । बोराडे इस अभाव को 'वळणाचं पानी' उपन्यास में अभिव्यक्त करते हैं । बोराडे जी लिखते हैं कि- ''जाति-व्यवस्था खत्म करने हेतु मिश्र बस्ती का स्वीकार करना चाहिए । ऐसा तो कहा गया; परंतु ऐसी मिश्र बस्ती स्वीकारने जैसी मानसिकता अब तक निर्माण नहीं हुई है ।''[16] इससे स्पष्ट होता है कि जाति-पाँति के बंधन तो टूट रहे हैं परंतु जाति-पाँति के प्रति पुरानी मानसिकता आज भी ग्रामीण परिवेश में व्याप्त है ।

शैक्षिक पक्ष : बदलते संदर्भ

ग्रामीण जीवन की शैक्षिक स्थिति में भी बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है । शिक्षा का बहु आयामी विस्तार हो रहा है । मिश्र जी के 'सूखता हुआ तालाब' उपन्यास का शंकर कहता है कि- ''शिकारपुर लंठ-बागड़ों का गाँव माना जाता था, अब इस गाँव में एक दर्जन एम.ए., बी.ए. हो गए हैं । कोई नेता है, कोई वकील है, कोई प्रोफेसर है, कोई अध्यापक है ।''[17] इससे ग्रामीण जीवन में शिक्षा के व्यापक प्रचार-प्रसार के संकेत मिलते हैं ।

अब लड़कों के समान लड़कियाँ भी शिक्षा ग्रहण कर रही हैं । स्त्री शिक्षा के प्रति ग्रामीण जीवन में जागृति निर्माण हो रही है । मिश्र जी के 'थकी हुई सुबह' उपन्यास की लक्ष्मी को शिक्षा के कारण अच्छा घर-वर मिलता है । इस पर गाँव वाले कहते हैं- ''देखो पढ़ाई-लिखाई का प्रताप । पढ़ाई के कारण ही ग़रीब घर की लड़की को इतना अच्छा घर-वर मिल रहा है ।''[18] 'बीस बरस' उपन्यास में सुखदेव की भाँजी पढ़ने लिखने के बाद अपने ही गाँव में अध्यापक बन जाती है । स्त्री शिक्षा के ऐसे संकेत मिश्र के अन्य उपन्यासों में भी मिलते हैं । इससे पता चलता है कि शिक्षा का व्यापक प्रसार हो रहा है ।

अब तो शिक्षा बुनियादी अधिकार बन गई है । सरकार की ओर से अब वह गाँव-गाँव पहुँचनेवाली है । ऐसी स्थिति में हम देखते हैं कि ज्यादातर स्कूल-कॉलेज राजनीति से घिरे हैं । डोनेशन और पहचान के अभाव में शिक्षा प्राप्त करना और नौकरी मिलना मुश्किल हो गया है । ऐसी विविध समस्याओं को बोराडे जी ने प्रस्तुत किया है । 'रिक्त अतिरिक्त' उपन्यास में कृषक परिवार का केदार बी.ए., बी.एड्. हो जाता है । फिर भी उसे नौकरी नहीं मिलती । वह पिता नाथाप्पा से कहता है- ''आप्पा आपको पता नहीं होगा इसीलिए बता रहा हूँ । आज-कल नौकरियाँ मिलना कठिन हो गया है । पैसे दिए बिना नौकरी नहीं मिलती । चपरासी की भी नौकरी प्राप्त करनी होगी तो कम-से-कम दो लाख रुपये गिनने पड़ते हैं ।''[19] शिक्षितों की ऐसी दशा और बेकारी के अन्य संकेत भी मिश्र तथा बोराडे जी के अन्य उपन्यासों में मिलते हैं ।

सांस्कृतिक पक्ष : बदलते संदर्भ

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक पक्ष की तरह ग्रामीण जीवन की संस्कृति में भी बदलाव आ रहा है । ग्रामीणों के जीवन से उत्सवों, पर्वों, त्यौहारों, मेलों और खेल-कूद की पकड़ धीरे-धीरे टूट रही है । इस परिवर्तन की और मिश्र तथा बोराडे जी ने संकेत किए हैं । 'सूखता हुआ तालाब' का देवप्रकाश अनुभव करता है कि- ''प्रकृति में सब कुछ वैसा ही है लेकिन लोग कितने बदल गये हैं - न फागुन की मस्ती है, न राग रंग है, न भाईचारा है, न रास्तों पर बहती हुई अबीर-गुलाल की रंगीनी है ।''[20] ग्रामीण जीवन के तीज-त्यौहार अब दिन-ब-दिन फीके पड़ते जा रहे हैं । लोगों के मन में सांस्कृतिक परंपराओं के प्रति आदरभाव कम हो रहा है । लोग अब त्यौहारों के अवसर पर ''खुद गाने बजाने के स्थान पर टी.वी. का गाना बजाना देखने लगे हैं ।''[21]

दूरदर्शन, डी.टी.एच. तथा फिल्मों के कारण ग्रामीण जीवन के सांस्कृतिक पक्ष में तेज गति से परिवर्तन हो रहा है । इससे वेशभूषा, केशभूषा, खान-पान, रहन-सहन परिवर्तित हो

रही है । पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति भी बढ़ने लगी है । इतना ही नहीं तो कीर्तन मण्डली फिल्मी गीतों के तर्ज. पर कीर्तन प्रस्तुत कर रही है । 'सूखता हुआ तालाब' की कीर्तन मंडली ऐसा ही कीर्तन प्रस्तुत करती है –

"कि मेरा तन डोले हो मन डोले हो
मेर मन का गया करार हो
कौन बजावे बाँसुरियाँ
कि आ रे किसुना
कौन बजावे बाँसुरियाँ ।"[22]

इस गीत को 'आ रे किसुना' से जोड़कर भजन बनाया है । बोराडे जी ने भी 'महान गाव' उपन्यास में चित्रित किया है कि लोग भजन–कीर्तन को छोड़कर तमाशा की ओर आकृष्ट हो रहे हैं । ऐसे अनेक बदलाव भारतीय संस्कृति में हो रहे हैं । इन बदलावों को दोनों उपन्यासकारों ने चित्रित किया है ।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि ग्रामीण जीवन दिन–ब–दिन परिवर्तित हो रहा है । इस परिवर्तन की दिशा सकारात्मक कम और नकारात्मक अधिक दिखाई दे रही है । दोनों लेखकों के उपन्यासों से यह स्थिति अभिव्यक्त हो रही है । मिश्र जी ने ग्रामीण जीवन के बदलते सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष को व्यापकता से प्रस्तुत किया है । मिश्र जी की तुलना में बोराडे जी के उपन्यासों में यह व्यापकता कम ही दिखाई देती है । बोराडे जी के उपन्यासों पर कहानी विधा का प्रभाव रहा है । परिणामत: इन्होंने एक विषय को ही प्रमुखता से एक उपन्यास में अभिव्यक्त किया है । बोराडे जी ने ग्रामीण जीवन का केंद्र कृषक को व्यापकता से प्रस्तुत किया है । मिश्र जी के उपन्यासों में बोराडे जी की तरह सशक्त कृषक अभिव्यक्त नहीं हुआ है । उसका स्पष्ट अभाव दिखाई देता है । बोराडे जी ने ग्रामीण जीवन के बदलते रिश्ते–नाते का विस्तृत चित्रण किया है । मिश्र जी के उपन्यासों में ऐसी व्यापकता का अभाव रहा है । ग्रामीण जीवन के बदलते रूप को अभिव्यक्त करने के लिए मिश्र जी ने विविध शैलियों का प्रयोग किया है । बोराडे जी ने सीमित शैलियों का प्रयोग करते हुए निवेदन के लिए साहित्यिक मराठी और संवादों के लिए ग्रामीण बोली का प्रयोग किया है । कुल –मिलाकर दोनों उपन्यासकारों ने कम अधिक मात्रा में बदलते ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है ।

दोनों उपन्यासकारों ने बिखरते ग्रामीण जीवन को चित्रित करते हुए बदलाव की दिशा में सकारात्मक सुधार लाने की आवश्यकता को भी महसूस किया है । ग्रामीण जीवन के ऐसे बदलते परिवेश में भी कुछ ऐसे पात्रों का चित्रण दोनों उपन्यासकारों ने किया है जिससे ग्रामीण जीवन के बदलाव को सही दिशा मिलने की संभावना बनी रहती है, वह भी निस्संदेह ! केवल आवश्यकता है दोनों लेखकों द्वारा चित्रित आदर्श पात्रों के निर्माण की ।

संदर्भ संकेत

(1) सामाजिक संबंधों के मूलतत्त्व - डॉ. पी.डी. सिंह, पृ. 335

(2) स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम-चेतना - डॉ. ज्ञानचंद गुप्त, पृ. 25

(3) पानी के प्राचीर - रामदरश मिश्र, पृ. 86

(4) जल टूटता हुआ - रामदरश मिश्र, पृ. 234

(5) सूखता हुआ तालाब - रामदरश मिश्र, पृ. 67

(6) बीस बरस - रामदरश मिश्र, पृ. 8

(7) पाचोळा - रा. रं. बोराडे, पृ. 7

(8) सूखता हुआ तालाब - रामदरश मिश्र, पृ. 92

(9) सावट - रा. रं. बोराडे, पृ. 21

(10) सूखता हुआ तालाब - रामदरश मिश्र, पृ. 11

(11) रिक्त-अतिरिक्त - रा. रं. बोराडे, पृ. 62

(12) आकाश की छत - रामदरश मिश्र, पृ. 37

(13) महानगाव - रा. रं. बोराडे, पृ. 7

(14) कथा एका तंटामुक्त गावाची - रा. रं. बोराडे, पृ. 6

(15) बीस बरस - रामदरश मिश्र, पृ. 70

(16) वळणाचं पाणी - रा. रं. बोराडे, पृ. मलपृष्ठ से

(17) सूखता हुआ तालाब - रामदरश मिश्र, पृ. 67

(18) थकी हुई सुबह - रामदरश मिश्र, पृ. 34

(19) रिक्त अतिरिक्त - रा. रं. बोराडे, पृ. 154

(20) सूखता हुआ तालाब - रामदरश मिश्र, पृ. 94

(21) बीस बरस - रामदरश मिश्र, पृ. 23

(22) सूखता हुआ तालाब - रामदरश मिश्र, पृ. 27

रामधारी सिंह 'दिनकर' का राष्ट्र-बोध और उनकी कविता

डॉ. अभिषेक शर्मा

छायावादोत्तर कविता की समस्त प्रवृत्तियों को यदि एक जगह ढूँढ़ना हो तो दिनकर से बड़ा उदाहरण शायद ही कहीं मिले। कहीं-कहीं तो उनकी कविताओं में मध्यकाल (हारे को हरिनाम) की भी अनुगूँज सुनाई पड़ती है। कई साहित्य चिंतक तो उनके काव्य में रीतितत्त्व की मौजूदगी से भी इनकार नहीं करते हैं। दिनकर की काव्य चेतना हिन्दी काव्यधारा के कई युगों को स्पर्श करते हुए आगे बढ़ती है। यदि हम छायावादोत्तर युगीन कवियों का जिक्र करें तो दिनकर के बाद नागार्जुन, अज्ञेय, शमशेर और मुक्तिबोध का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इन चार स्तम्भों ने छायावादोत्तर कविता को वैसी ही वैचारिक दृढ़ता प्रदान की, जैसी मध्यकालीन कविता को कबीर, जायसी, सूर और तुलसी आदि ने की थी। एक तरह से देखा जाए तो दिनकर का संपूर्ण लेखन एक ऐसे संक्रमण काल से गुजर रहा था जहाँ मूल्यों की खोज और उसकी स्थापना के लिए साधारण मनुष्य के साथ-साथ प्रबुद्ध वर्ग भी संघर्षरत दिखाई पड़ रहा था। निःसन्देह इन्हीं मूल्यों की खोज और संरक्षण में स्वयं राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' भी शामिल थे । यही कारण है कि उन्होंने 'तटस्थता' (जो तटस्थ है समय लिखेगा उनका भी इतिहास...) को मनुष्यता का शत्रु कहा था। वे आजादी के उपरांत की भारतवर्ष की सामाजिक परिस्थितियों से प्रायः असंतुष्ट थे। इसका उल्लेख भी हमें उनकी प्रमुख कविता 'जनतंत्र का जन्म' में मिलता है। लोकतंत्र में सबकी हिस्सेदारी और जवाबदेही तय हो इसके लिए वे शुरू से ही जागरूक थे। इस सन्दर्भ में वे अपने प्रसिद्ध लेख 'वीरता की परम्परा और गाँधी मार्ग' में लिखते हैं कि – "गाँधी जी की सबसे बड़ी देन क्या है ? अहिंसा या सत्य ? ब्रह्मचर्य या विनम्रता ? अपरिग्रह या अस्तेय ? अपनी रूचि के अनुसार लोग इनमें से कुछ या सबको गाँधी-मार्ग का निचोड़ मान सकते हैं। किन्तु, मेरे मत से गाँधी जी की सबसे बड़ी देन अभय है। सन् 1949 ई. में, जब गाँधी जी की मृत्यु का शोक बिल्कुल ताजा था, मैंने, अभय को ही गाँधी-मार्ग का सार मान कर, चारण-शैली में, एक कविता लिखी थी, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

"जुल्मी को जुल्मी कहने में जीभ जहाँ पर डरती है,
पौरुष होता क्षार वहाँ दम घोंट जवानी मरती है।
सत्य न होता प्राप्त कभी भी सत्य-सत्य चिल्लाने से,
मिलता है वह सदा एक निर्भयता को अपनाने से।"[1]

प्रख्यात कवि एवं विचारक श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' की रचनावली कुल चौदह खण्डों में विभक्त है। रचनावली का स्वरूप यह बताता है कि वे गद्य और पद्य दोनों में समाभ्यस्त थे। उनकी इतिहास दृष्टि भविष्योन्मुखी थी। 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक ग्रंथ इसका ज्वलंत प्रमाण है। हम 'दिनकर' की इस पुस्तक को एक तरह से भारतवर्ष की सांस्कृतिक चेतना का उन्नायक भी कह सकते हैं। उन्होंने यह पुस्तक नये-नये आजाद हुए भारतवर्ष को सामाजिक-सांस्कृतिक मजबूती प्रदान करने के लिए लिखी थी। वे साफ़ तौर पर मानते हैं कि भारतीय संस्कृति शुरू से ही सामासिक है। इसीलिए 'दिनकर' 'लेखक का निवेदन'

शीर्षक के अन्तर्गत सर्वसाधारण से इस ग्रन्थ को पढ़ने की गुजारिश करते हैं– ''मेरा अपना क्षेत्र काव्य है एवं मेरे साहित्यिक जीवन का यश और अपयश मेरे काव्य पर निर्भर करता है । किन्तु, जिस परिश्रम से मैंने यह पुस्तक लिखी है, उस परिश्रम से मैंने और कुछ नहीं लिखा । मैंने पाठकों से यह कभी भी अनुरोध नहीं किया कि वे मेरी किसी भी कृति को पढ़ें । किन्तु इस ग्रन्थ को एक बार देख जाने का अनुरोध मैं सबसे करता हूँ ।''[2] वस्तुतः कवि दिनकर का अपने पाठकों से यह विनम्र आग्रह भारतीय जनमानस में सामासिक संस्कृति की एक सर्वमान्य समझ पैदा करने की कोशिश मात्र है । दिनकर की राष्ट्रीयता जितनी भावनात्मक थी, उतनी ही तेजोद्दीप्त एवं विचारात्मक भी । वे राष्ट्र की अखंडता के प्रबल समर्थक थे । इसकी झलक हमें 'हिमालय' शीर्षक कविता में मिलती है– ''मेरे नगपति ! मेरे विशाल ! / साकार, दिव्य गौरव विराट / पौरुष के पूँजीभूत ज्वाल ! / मेरी जननी के हिम–किरीट ! / मेरे भारत के दिव्य भाल ! / मेरे नगपति ! / मेरे विशाल !''[3] राष्ट्रकवि दिनकर की चिंतन शैली पर विचार करते हुए 'प्रणय कृष्ण' लिखते हैं कि– ''दिनकर जी ने भारतीय संस्कृति की सामासिकता, हिन्दू–मुस्लिम एकता और सामाजिक समरसता को ही अपने संस्कृति विमर्श का आधार बनाया है ।''[4]

जिस तरह दिनकर की सांस्कृतिक चेतना सर्वसमावेशी है उसी तरह उनका इतिहास–बोध में भविष्योन्मुखी एवं लोकमंगलकारी है । महाभारत के कथानक और द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियों को केन्द्र में रखकर उन्होंने 'कुरुक्षेत्र' नामक एक सुप्रसिद्ध महाकाव्य लिखा है । इस काव्य कृति के आलोक में दिनकर का मानना है कि सत्य और स्वाभिमान की रक्षा के लिए कहीं–कहीं युद्ध आवश्यक हो जाता है । 'रश्मिरथी' महाकाव्य जहाँ एक तरफ ऐतिहासिक पात्र 'कर्ण' की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालता है वहीं दूसरी तरफ भारतवर्ष में उभरती हुई 'दलित चेतना' के महत्त्व को भी निरूपित करता है । 'उर्वशी' 'दिनकर' की अन्यतम कृति है । उन्होंने इस कृति में मनुष्य की काम भावना को एक आध्यात्मिक आयाम प्रदान किया है । दिनकर कृत काव्य 'परशुराम की प्रतीक्षा' में चीन, पाकिस्तान द्वारा भारत के साथ हुए युद्ध की परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है । रामधारी सिंह 'दिनकर' की अन्तिम काव्य कृति 'हारे को हरिनाम' में उनकी वैयक्तिक एवं आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हुई है । प्रख्यात आलोचक डॉ. नामवर सिंह से इस कृति को दिनकर की 'विनय पत्रिका' कहा है । कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' अपनी प्रसिद्ध कृति 'हारे को हरिनाम' के संदर्भ लिखते हैं कि– ''कुछ मित्र 'हारे को हरिनाम' इस नाम से भी चौंके हैं । किन्तु पराजित मनुष्य और किसका नाम ले ? जिन्हें मेरे पराजित रूप से निराशा हुई है, उन मित्रों से क्षमा माँगता हूँ । मैंने अपने आपको / क्षमा कर दिया है / बन्धु, तुम भी मुझे क्षमा करो / मुमकिन है, वह ताजगी हो, / जिसे तुम थकान मानते हो ।/ ईश्वर की इच्छा को / न मैं जानता हूँ, / न तुम जानते हो ।''[5]

रामधारी सिंह 'दिनकर' जिस युग में साहित्य सृजन कर रहे थे उसका बहुलांश अंग्रेजी शासन की क्रूरताओं से त्रस्त था । ऐसी स्थिति में उनकी रचनाओं में अंग्रेजी हुकूमत के प्रति विद्रोह स्वाभाविक था । प्रबुद्ध वर्ग अक्सर उनकी कविताओं में राष्ट्रीयता के स्वर को ही रेखांकित करता है, किन्तु सूक्ष्म मूल्यांकन से पता चलता है कि उनके साहित्य (गद्य

और पद्य) में राष्ट्रीयता के स्वर के अतिरिक्त भी बहुत कुछ है । अपने लेखन और जीवन-दर्शन के सन्दर्भ में 'दिनकर' लिखते हैं कि- ''देश के क्रान्तिकारी युवक गाँधी जी के मार्ग पर भी चलते थे और उस मार्ग से उतरकर वे नया रास्ता भी खोजते थे । इसी प्रकार गाँधी जी क्रान्तिकारियों की नीति का तो विरोध करते थे, किन्तु उनकी देशभक्ति की सराहना करते थे । मैं न तो क्रान्तिकारी था, न बाजाप्ता गाँधी जी की फौज में शामिल था । फिर भी विचार के धरातल पर हिंसा और अहिंसा का द्वन्द्व मुझे काफी परेशान करता था और बार-बार मुझे यही दिखाई देता था कि आत्मबल यथेष्ट नहीं है । स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए शारीरिक शक्ति की शायद अधिक आवश्यकता है ।''[6] अर्थात जिस प्रकार स्वाधीनता के लिए बुद्धि, बल और धन (अर्थात् समग्र प्रयास) की आवश्यकता होती है उसी प्रकार किसी साहित्यकार के मूल्यांकन के लिए भी समग्रतावादी दृष्टिकोण जरूरत होती है । राष्ट्रीयता यद्यपि दिनकर के साहित्य के प्रधान गुणों में से एक है, किन्तु उनके साहित्य की कई महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ आज भी रेखांकित नहीं हो पायी है ।

'दिनकर' का संपूर्ण साहित्य मानव कल्याण की भावना से ओत-प्रोत है । उनके साहित्य में राष्ट्रीयता का आशय तात्कालिकता से न होकर उसके सतत विकास से है । राष्ट्रीय चेतना यद्यपि युग विशेष की देन है, किन्तु वह किसी युग विशेष की परिधि में जकड़ी हुई नहीं रह सकती है । इसीलिए दिनकर की राष्ट्रीयता में कहीं-कहीं आक्रामकता का भी पुट है । वे धार्मिक द्वेष को निर्मूल करके मनुष्य मात्र में ऐक्य स्थापित करना चाहते हैं । इसीलिए कई स्तरों पर उनके विचार भी महात्मा गाँधी से मेल खाते हैं । 'हिमालय का संदेश' नामक कविता में वे लिखते हैं कि- ''भारत एक भाव, जिसको पाकर मनुष्य जगता है, / भारत एक जलज, जिस पर जल का न दाग लगता है । / भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म-उदय की, / भारत है आभा मनुष्य की सबसे बड़ी विजय की । / जहाँ त्याग माधुर्यपूर्ण हो, जहाँ भोग निष्काम, / समरस हो कामना, वहीं भारत को करो प्रणाम ।''[7]

रामधारी सिंह 'दिनकर' का रचना कर्म जितना विपुल है, उतना ही विस्तृत भी । राष्ट्रीयता उनके साहित्य में जीवन मूल्य की तरह व्यवहृत हुई है, जो क्षणिक न होकर दीर्घजीवी एवं सतत है । दिनकर की ख्याति यद्यपि कवि रूप में ही अधिक है किन्तु उनका गद्य लेखन भी तात्विक एवं विचारोत्तेजक है । 'संस्कृति के चार अध्याय' पुस्तक मेरी दृष्टि में संस्कृति, कला और साहित्य की त्रिवेणी है । जिस तरह दिनकर का जीवन-दर्शन सर्वसमावेशी है, उसी तरह उनका लेखन भी सर्वप्रिय और प्रेरक प्रसंगो से भरपूर है । इस सन्दर्भ में उनकी 'आदमी' शीर्षक कविता विशेष रूप से उल्लेखनीय है- ''आदमी के बारे में / मैं केवल यह चाहता हूँ / कि उसके भीतर की चिनगारी/अभंग रहे । / अपनी आग को वह कभी भी बुझने नहीं दे । / और जो आपदाएँ पड़े, / वीरता के साथ सहे ।''[8] कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' स्वतंत्रता आंदोलन के साक्षी एवं सहभागी रचनाकारों में से एक हैं । उनका साहित्य मनुष्यता की समस्त प्रवृत्तियों का व्याख्याता है । वे 'काम' जैसे गोपन भावों की भी 'उर्वशी' महाकाव्य में व्याख्या करने से नहीं चूकते हैं । 'दिनकर' एक अदम्य लेखकीय साहस से संपृक्त रचनाकार थे । उनका संपूर्ण साहित्य 'अभिव्यक्ति की आजादी' का सच्चा प्रमाण है । वे राजनीति से जुड़े तो थे, किंतु राजनीतिज्ञ नहीं थे । उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर

विचार करते हुए 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी' लिखते हैं कि- ''छायावादी कवियों में सामाजिक चेतना बहुत छिपी हुई, अस्पष्ट और अवगुंठित थी । 'दिनकर' की उमंग और मस्ती में सामाजिक मंगलाकांक्षा का प्राधान्य है । वह समाज की चिंता छोड़ नहीं पता । इन द्विविध वृत्तियों के संघर्ष से 'दिनकर' के काव्य में वह प्रवाह उत्पन्न हुआ है जो अन्य कवियों में नहीं मिलता । 'दिनकर' व्यक्तिवादी दृष्टि का प्रत्याख्यान लेकर साहित्य मंच पर आए । वे द्वापावादियों और प्रगतिवादियों के बीच की कड़ी हैं- कम छायावादी, अधिक प्रगतिवादी । कुरुक्षेत्र में उनकी सामाजिक चेतना की बहुमुखी अभिव्यक्ति हुई है । 'दिनकर' अपने ढंग के अकेले हिंदी कवि हैं । यौवन और जीवन उन्हें आकृष्ट करते हैं, सौंदर्य का मोहन संगीत उन्हें मुग्ध करता है, पर वे इनसे अभिभूत नहीं होते । उल्लास और उमंग सच्चे अर्थों में मानवता की मुक्ति से ही संभव है । जब छायावाद के प्रथम उन्मेष के कवियों के बाद दूसरे उन्मेष के कवि आए तो उनके सामने मानवतावाद का आदर्श अस्पष्ट रह गया था । 'दिनकर' में वह आदर्श पूरे ज़ोर पर है ।''[9] मानवता की रक्षा के प्रति 'दिनकर' की प्रतिबद्धता अद्वितीय है । वे कला, साहित्य, संस्कृति और राजनीति के स्तर पर मानवता की रक्षा एवं संवर्धन हेतु जो कुछ भी करणीय है उसे करने से जरा भी हिचकिचाते नहीं हैं । मानवता के कल्याणार्य 'देवता का श्रम' नामक अपनी अनुदित कविता में 'दिनकर' लिखते हैं कि- ''मुझे सहस्रों घाव लगे हैं, लगते ही जाते हैं । / किन्तु दानवों के प्रहार से मैं तो नहीं झुकूँगा । / जब तक / परम देव की इच्छा पूर्ण नहीं होती है, / लेक्ष्य-सिद्धि के बिना भला मैं पथ में कहाँ रुकूँगा ?''[10] भारतवर्ष के क्रांतिकारियों एवं स्वतंत्रता सेनानियों पर होने वाले अमानवीय हमलों से कवि 'दिनकर' बहुत क्षुब्ध रहा करते थे । 'महात्मा गाँधी' की नृशंस हत्या से वे बहुत आहत थे । उपरोक्त काव्य पंक्तियाँ उनकी इसी पीड़ा की अभिव्यक्ति मात्र हैं । वे भारत की आजादी श्रम और संघर्ष के बल पर प्राप्त करना चाहते थे, न कि धोखे से । दिनकर की कविता अपने समकालीन कवियों से ज्यादा मुखर इसीलिए है कि उन्हें राष्ट्र रक्षा का प्रण और से अधिक है । जरूरत पड़ने पर वे अपनी कलम को बंदूक की तरह भी इस्तेमाल कर सकते थे । 'दिनकर' के काव्य साहित्य का समाज-बोध उसकी सहजता में छिपा है । उनकी कविताएं मनुष्य से मनुष्य को जोड़ने वाली हैं । मानव जाति को कर्मण्य बनाने वाली अनेक उक्तियाँ उनकी कविताओं में भरी पड़ी हैं । मनावता के विकास में वे मनुष्य की 'उपकारवृत्ति' को सर्वाधिक तरजीह देते हैं । वस्तुतः यही उनके कवि कर्म का मूल उत्स है, जिसकी पहचान आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बहुत पहले ही कर ली थी । अपनी 'गाँधी' शीर्षक कविता में 'दिनकर' लिखते हैं कि- ''तुम आए इसलिए कि टूटी कड़ियाँ जोड़ों / मानवता के अमित-कल्प-व्यापी विकास की । / तुम आए इसलिए कि भव्य अतीत मनुज का / वर्तमान अथवा भविष्य से छूट न जाए ।''[11] रामधारी सिंह 'दिनकर' जितने बड़े कवि थे, उतने ही बड़े अनुवादक भी थे । धर्म, संस्कृति, दर्शन, राजनीति आदि अनेक विषयों के आधिकारिक विद्वान थे, यह एक बहुश्रुत तथ्य है । प्रशासनिक दक्षता, धैर्य, श्रम और अनुशासन की झलक हमें उनकी अधिकांश कृतियों में देखने को मिलती हैं । उनके साहित्यिक अवदान पर विचार करते हुए प्रसिद्ध आलोचक 'विजयेन्द्र स्नातक' लिखते हैं कि- ''राष्ट्रीय चेतना के उद्बोधक गीत लिखकर जो ख्याति चौथे दशक में दिनकर को

प्राप्त हुई वैसी किसी अन्य कवि को नहीं मिली । दिनकर के काव्य में जीवन और समाज का तात्कालिक परिवेश देखा जा सकता है ।''[12] वस्तुतः कवि 'दिनकर' सच्चे अर्थों में एक मानवतावादी कवि हैं । उनकी कविताएं मानव-मूल्यों की प्रतिष्ठा में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं । वे अतिशय यांत्रिकता, विलासिता और भौतिक सुख-सुविधाओं के विरोधी थे । उनके काव्य साहित्य का ध्येय वाक्य सत्य, श्रम और संघर्ष है । इसीलिए 'मोम का गीत' नामक कविता में वे लिखते हैं कि- ''विज्ञान ने आदमी के / शरीर को तो जगाया / मगर आत्मा को सुला दिया है । / इस सत्य को भुला दिया है / कि जरूरत से ज्यादा सुख भोगना / उनके प्रति पाप है / जो अरबों की संख्या में गरीबी से मर रहे हैं / जन्म से लेकर मृत्यु तक / भूख से लड़ रहे हैं ।''[13]

सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची

1. नवल, नंदकिशोर, कुमार, तरुण (सं.) : रामधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली, पहला, संस्करण-2011, आठवाँ खण्ड, पृ. सं.-270, प्रकाशक-लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, मूल्य-4000 रूपये, (अजिल्द, सभी 14 खण्ड) ।
2. नवल, नंदकिशोर, कुमार, तरुण (सं.) : रामधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली, पहला संस्करण-2011, दसवाँ खण्ड, पृ.सं. 14, प्रकाशक-लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, मूल्य-4000 रुपये (अजिल्द, सभी 14 खण्ड) ।)
3. सिंह, रामवीर (सं.) : आधुनिक काव्य संग्रह, षष्ठ संस्करण : 2013 ई. पृ.सं. 160 प्रकाशक-विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी-221001, मूल्य : 180 रूपये (अजिल्द) ।
4. कृष्ण, प्रणयः शती स्मरण, फैज, शमशेर, नागार्जुन, अज्ञेय, रामविलास शर्मा, दिनकर हिन्द स्वराज, पहला संस्करण : 2012 ई., संशोधित संस्करण : 2014 ई., पृ.सं. 170, प्रकाशक-स्पॉट क्रिएटिव सर्विसेज, 43बी/9बी/ए लिडिल रोड, जॉर्ज टाउन, इलाहाबाद, (उत्तर प्रदेश), मूल्य 100 रुपये (अजिल्द) ।
5. नवल, नंदकिशोर, कुमार, तरुण (सं.) : रामधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली, पहला संस्करण-2011, चौथा खण्ड, पृ.सं. 356, प्रकाशक- लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, मूल्य 4000 रुपये (अजिल्द, सभी 14 खण्ड) ।
6. नवल, नंदकिशोर, कुमार, तरुण (सं.) : रामधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली, पहला संस्करण-2011, चौथा खण्ड, पृ. सं. 151, प्रकाशक - लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, मूल्य 4000 रुपये (अजिल्द, सभी 14 खण्ड) ।

7. वही, बारहवाँ, पृ.सं. 181 ।
8. नवल, नंदकिशोर, कुमार, तरुण (सं.) : रामधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली, पहला संस्करण-2011, चौथा खण्ड, पृ.सं. 151, प्रकाशक - लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001, मूल्य 4000 रुपये (अजिल्द, सभी 14 खण्ड) ।
9. द्विवेदी, हजारी प्रसाद : हिंदी साहित्य उद्भव और विकास, मूल संस्करण : 1952, छठा राजकमल संस्करण : 1980, ग्यारहवीं आवृत्ति : 2013, पृ. सं. 25-52, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, मूल्य : 150 रुपये (अजिल्द) ।
10. नवल, नंदकिशोर, कुमार, तरुण (सं.) : रामाधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली, पहला संस्करण-2011, चौथा खण्ड, पृ.सं. 215, प्रकाशक - लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद-211001, मूल्य-4000 रुपये (अजिल्द, सभी 14 खण्ड) ।
11. नवल, नंदकिशोर, कुमार, तरुण (सं.) : रामाधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली, पहला संस्करण-2011, चौथा खण्ड, पृ.सं. 328, प्रकाशक - लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद-211001, मूल्य 4000 रुपये (अजिल्द, सभी 14 खण्ड) ।
12. स्नातक, विजयेन्द्र : हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रथम संस्करण-2009, पुनर्मुद्रण : 2010, 2011, 2012 एवं 2015, पृ.सं. 269, प्रकाशक - साहित्य अकादेमी, मुख्य कार्यालय : रवीन्द्र भवन, 35, फीरोजशाह मार्ग नई दिल्ली-110001, मूल्य 50 रुपये (अजिल्द) ।
13. नवल, नंदकिशोर, कुमार, तरुण (सं.) : रामाधारी सिंह 'दिनकर' रचनावली, पहला संस्करण-2011, चौथा खण्ड, पृ.सं. 406-407, प्रकाशक - लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद-211001, मूल्य 4000 रुपये (अजिल्द, सभी 14 खण्ड) ।

गोवा के साहित्य में रविन्द्र केलकर का योगदान

(राष्ट्रपरक मूल्यों के संदर्भ में)

डॉ. मनीष शर्मा

पद्म भूषण से सम्मानित रविन्द्र केलकर, गोवा प्रदेश के साहित्यिक जगत के प्रतिष्ठित स्तंभो में से एक रहे हैं । दक्षिण गोवा के कोकलिम में पिता डॉ. राजाराम केलकर के यहाँ 7 मार्च 1925 में जन्में रविन्द्र केलकर ने न सिर्फ कोंकणी अपितु मराठी, गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी भाषा मे भी अनेक कृतियों की रचना की है । उनके अनेक कृतियों में राष्ट्रीयता, भाषायी अस्मिता और राष्ट्र बोध की झलक परिलक्षित होती है । प्रस्तुत लेख में गोवा व गोवा के साहित्यिक यात्रा व उसमें श्री रविन्द्र केलकर जी का योगदान राष्ट्रपरक मूल्यों के सदंर्भ में प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है ।

गोवा का साहित्यिक विरासत :

भारत वर्ष के पश्चिमी प्रांत गोवा अपने नैसर्गिक सुंदरता, अप्रतिम समुद्री तट व पश्चिमी सभ्यता में रचा बसा एक राज्य के रूप में प्रतिष्ठित है । 1430 वर्ग मील के दायरे में फैले हुए डेढ़ करोड़ की आबादी वाला यह राज्य, कम से कम तेरह स्थानीय भाषाओं में अपनी कला व संस्कृति के माध्यम से हमेशा से ही अन्य लोगों में आकर्षण का केन्द्र रहा है ।

ज्ञात हो कि गोवा में प्रथम प्रिटिंग प्रेस की स्थापना 1556 ईस्वी में ही हो गई थी और पूरे एशिया में पहला प्रिटिंग प्रेस होने का गौरव भी गोवा को ही प्राप्त है । फलतः गोवा के लेखको को अपनी कृतियों को टंकित रूप में लिखने व संग्रहित करने के प्रति अपने आग्रह को बनाये रखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, परन्तु विभिन्न कारणों से यह यह संग्रह न विशाल हो पाया और न ही संरक्षित ।

ऐसा प्रतीत होता है कि गोवा की साहित्यिक रचना की परंपरा भी संस्कृत से ही आई है, पर गोवा के साहित्य शास्त्र में उसके उद्‌गम व स्वरूप की मिमांसा का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है । हालाँकि सोलहवीं शताब्दी के साहित्यकार श्री कृष्णदास शर्मा की कुछ कृतियों का उल्लेख मिलता है, जिसमें उन्होंने रामायण व महाभारत को कोंकणी में पद्यबद्ध किया था । वे मराठी में भी लिखते थे पर आज की स्थिति में उनके रचनाओं के बारे में जानकारी का अभाव है व वह साहित्य लुप्त हो गया है । दमनकारी पुर्तगालियों ने इन साहित्यों के नष्ट करने व अपनी संस्कृति को प्रतिस्थापित करने में बड़ी भूमिका निभाई । यहाँ तक कि 1684 में पुर्तगालियों द्वारा कोंकणी भाषा को अपने धार्मिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए पूर्णतः प्रतिबंधित कर दिया था । फलस्वरूप एक लंबा काल खण्ड तक कोंकणी व गोवा के मराठी साहित्यिक रचनाओं पर ग्रहण लग गया व पुर्तगाली भाषा व साहित्य का गोवा में प्रचार-प्रसार होने लगा और उन्नसवीं सदी की शुरूआत में 'सच एन ए बिबलियोटेका दा गोवा (1839), ओ इनसाक्लोपीडिया (1841-42), ओ आरक्यूबो पोर्तगीज ओरियन्टल (1857-1866) इत्यादि रचनाओं ने गोवा वासी साहित्यकारों को अपनी कृतियों को प्रकाशित करने हेतु प्रेरित कर एक नए मंच को उपलब्ध कराया (पोल मेलो ए कास्ट्रो, 2016) ।

इसी कड़ी में गोवा के पहले उपन्यास ओ ब्रह्मनेस का प्रकाशन 1866 में गोवा के फ्रांसिस्को लुइस गोम्स द्वारा किया गया (बेन एन्टाओ, 2015) । इन रचनाकारो के पश्चात् गोवा के साहित्य ने विषयवस्तु व शिल्प का नयापन ग्रहण करना शुरू कर दिया था व उन्नीसवीं सदी में गोवा के लेखको द्वारा भारतीय भाषाओं यथा कोंकणी, मराठी, कन्नड़ व हिंदी में भी साहित्यिक रचनाएं गद्य, पद्य व नाटकों के प्रारूप में किया जाने लगा । जिनमें सेनॉय गोयेम्बॉब (कोंकणी भाषा), आर. भी. पंडित (मराठी भाषा) जैसे रचनाकार अग्रज रहे । कालान्तर में गोवा की साहित्यिक विरासत में कोंकणी और मराठी प्रभावी होते गए ।

तत्पश्चात् यह गोवावासियों की प्राकृतिक प्रवृति ही है जो उन विषम स्थिति में भी अपनी संस्कृति को बाँधे रखने व बचाए रखने में सक्षम रहे हैं । आज के सदंर्भ में रहन-सहन भले ही पाश्चात्य हो पर सोचने का ढंग, आतिथ्य भाव, विभिन्न समुदायों, भाषाओं, धर्मावलंबियों में सामंजस्य व सद्भाव, विविध सांस्कृतिक मूल्य इनके भारतीय चिंतन को ही प्रतिबिंबित करते हैं ।

हाँलाकि यह भी सत्य है कि गोवा की कल्पना करते ही शराब, नग्नता, रेव पार्टी, ड्रग्स व स्मगलिंग जैसे दृश्य मानस पटल पर उभरते हैं । जिसकी प्रमुख वजह भारतीय हिन्दी सिनेमा की अबुझ प्रस्तुति व गोवा से भिन्न अन्य राज्यों में गोवा के साहित्य व संस्कृति का असमुचित प्रचार-प्रसार व अज्ञानता ही रहा है । गोवा सरकार की भी प्राथमिकता राज्य को एक पर्यटन केन्द्र के रूप में उभारना रहा है, न कि साहित्य का प्रोत्साहन व संवर्धन, पर पिछले कुछ वर्षो से इस ओर सरकार उल्लेखनीय प्रयास कर रही है एवं राष्ट्र के साहित्यिक पटल पर यह राज्य अपनी सशक्त उपस्थिति दर्शा रहा है ।

रविन्द्र केलकर व उनका साहित्य :

उपरोक्त लिखित पृष्ठभूमि में गोवा के आधुनिक साहित्यकारों में अनन्यतम साहित्यकार श्री रविन्द्र केलकर जी का प्रादुर्भाव होता है, जिनकी लेखनी हमेशा से ही स्थानीय व वैश्विक मुद्दों को सामान्य भाषा, सरल शब्दों एवं रोचक ढंग से प्रस्तुत करती रही है । शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जिस पर उनकी लेखनी न चली हो । अपनी रचनाओं को विषय व शिल्प के स्तर पर नयापन देने के कारण केलकर जी को गोवा के नए साहित्यिक आन्दोलन का जन्मदाता भी कहा जाता है । ज्वलंत मुद्दों को सामान्य एवं प्रबुद्ध वर्गो के मध्य असरदार व विचारोतेजक ढंग से प्रस्तुत करना उनकी खास शैली रही है । जिस वजह से न सिर्फ गोवा का साहित्य समृद्ध हुआ अपितु नये रचनाकारों की भी साहित्य के प्रति अभिरूचि बढ़ी । उनकी रचना 'महाभारत' एक अनुसरजनष पाठको में काफ़ी लोकप्रिय रही । दो खण्डों में महाभारत का कोंकणी रूपांतर में महाभारत के किरदारों को अलग व्याख्या के साथ प्रस्तुत कर उन्होंने एक अभिनव प्रयोग किया । ऐसा ही कुछ उनकी दूसरी रचनाओं में भी पाठको ने महसूस किया, विशेषकर 'तथागत' जिसमें उन्होंने गौतम बुद्ध की जीवनी एवं दर्शन का परिचय एक अलग अंदाज में अपने पाठको को कराया । उनकी रचनाए धार्मिक या पौराणिक ही न होकर राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरणीय से लेकर वर्तनी/वर्ण विन्यास जैसे विषय पर भी केन्द्रित रही हैं । श्री केलकर जैसा कि पूर्व में भी लिखा हुआ है कि न

सिर्फ कोंकणी या मराठी बल्कि गुजराती, अंग्रेजी, हिन्दी यहाँ तक कि पुर्तगाली में भी अपनी रचनाएं लिखी । हिन्दी में लिखी 'महात्मा गाँधी : एक जीवनी' काफी सराही गई एवं कई भाषाओं में अनुवादित भी हुई । पूरी साहित्यिक यात्रा में उनकी 100 से अधिक मौलिक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं । वे आधुनिक कोंकणी आंदोलन के प्रणेता थे और कोंकणी भाषा मंडल की स्थापना में उनकी अह्म भूमिका रही । श्री केलकर को ज्ञानपीठ पुरस्कार के अलावा 1976 में साहित्य अकादमी पुरस्कार, 2017 में साहित्य अकादमी का फैलो चुनने के अलावा 2008 में पद्मभूषण से भी सम्मानित किया गया ।

रविन्द्र केलकर की रचनाएं व राष्ट्रयिता :

रविन्द्र केलकर के पिता पेशे से चिकित्सक थे । साथ ही, साहित्यिक अभिरूचि भी रखते थे । उन्होने भगवद् गीता का पुर्तगाली भाषा में अनुवाद कर ख्याति अर्जित की थी और शायद यहीं से बाल रविन्द्र के मन में साहित्यिक अभिरूचि जगी । रविन्द्र केलकर विद्यार्थी काल से ही गोवा मुक्ति संग्राम में शामिल हो गए एवं इसी दौरान कई स्थानीय एवं राष्ट्रीय नेताओं से उनका संपर्क बढ़ा । विचारों का आदान-प्रदान हुआ एवं इसी दौरान महान शिक्षाविद् एवं लेखक लक्ष्मण राव सरदेसाई से उनकी मुलाकात हुई, जिन्होने केलकर को देशभक्ति का पाठ पढ़ाया । उन्होंने 1949 में दिल्ली के गाँधी स्मारक में कार्य करना शुरू किया तत्पश्चात नौकरी छोड़ वापस गोवा के मुक्ति संग्राम में सक्रिय भागीदारी की, फिर गिरफ्तारी हुई, शायद यही वह पृष्ठभूमि है जो उनकी रचनाओं में उनकी लेखनी से उभर कर आती है ।

रविन्द्र केलकर उन प्रबुद्ध और सजग साहित्यकारों में से एक हैं जिन्होंने गोवा के साहित्य के पुर्ननिर्माण में सक्रिय योगदान दिया है । अपने अनुठे ढंग से साहित्य रचना एवं पूरी जिन्दगी जिस दर्शन को जीते रहे उसका प्रतिबिंब उनकी रचनाओं में झलकने की वजह से जाने जाते रहे हैं । किसी जटिल एवं गंभीर विषय को लेखनी के माध्यम से समाज में सरल ढंग से प्रस्तुत करना उनकी विशेष शैली रही है । जैसा कि एंटोल फ्रांस ने कहा था "शैली एक सूर्यकिरण की भाँति होती है, जिसका अपना कोई रंग नहीं पर फिर भी सात रंगों को समेटी रहती है ।" केलकर की रचनाएं भी उसी सूर्य किरण की भॉति हैं । साहित्य सृजन अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की मूर्तकला है व साहित्यकार उस अनुभूत सत्य को ही अभिव्यक्ति प्रदान करता है ।

ऐसे ही साहित्यकार केलकर की रचनाएं क्रांतिकारी एंव विचारोत्तेजक होती थीं । गोवा के प्रसिद्ध कवि मनोहर राय सर देसाई के अनुसार केलकर की रचनाओं में भाषायी उग्रता नहीं झलकती पर भाव गजब के क्रांतिकारी होते हैं । 1956 से 1960 के मध्य वो गोमान्त भारती नामक साप्ताहिक पत्रिका के दौरान उन्होने विश्व भर में फैले गोवावासियों को जोड़ने का काम किया । 'जाग' पत्रिका के संपादकत्व के वर्षों में उस पत्रिका में छपी रचनाएं राष्ट्रबोध से ओत-प्रोत होती थी, जो समाज में व्याप्त कुरीतियों पर कुठाराघात करते हुए सांस्कृतिक अस्मिता, भाषायी अस्मिता एवं राष्ट्रयिता के भाव, पाठको में भरा करती थीं । 'जाग' के पूर्व (कोंकणी भाषा की) 'भृंग' व 'गोमांत' पत्रिकाओं का भी संपादन उन्होंने

उसी सरोकार से किया एवं उन्होंने समकालीन कई युवा लेखकों को प्रोत्साहित किया । शायद इसीलिए उन्हें लेखकों का लेखक कहा जाता रहा है ।

'आमची भाषा कोंक्निच' नामक पुष्तक में उन्होंने कोंकणी भाषा की अस्मिता के विभिन्न आयामों को एक साथ स्पर्श किया था । ऐसा ही उन्होंने 'सल्लेंत कोंकणी कितायक' नामक पुस्तक में वियालयीन छात्रों में कोंकणी भाषा के महत्व को उजागर किया ।

केलकर गाँधीवादी विचारधारा से काफी प्रभावित रहें एवं आचार्य काका साहेब केलकर का निकट सान्धिय की झलक रविन्द्र केलकर की शुरूआती रचनाओं में स्पष्ट दिखती है । केलकर में समग्र भारत भ्रमण के पश्चात राष्ट्र चिंतन का जो भाव जगा वह उनकी पुस्तक 'हिमालयांत' में प्रकृति वर्णन के माध्यम से दिखता है, इस पुस्तक की वजह से 1977 में उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से अलंकृत किया गया । जीवन दर्शन की समझ, प्रकृति से निकटता एवं राष्ट्र बोध की समझ उनकी लगभग प्रत्येक रचनाओं में देखने को मिलती है । जिसके माध्यम से भारत के सांस्कृतिक विरासत व विविधता को समझने की उनके अंदर की जिज्ञासा भी परिलक्षित होती है । 'महाभारत : एक अनुसरंजन' एक गंभीर साहित्यिक रचना है जिसमें उन्होंने महाभारत के पौराणिक घटनाओं एव पात्रों की औचित्यपूर्ण विवेचना कर पाठकों में इस महाकाव्य के प्रति एक अलग नज़रिया व समझ के साथ उत्सुकता बढ़ाने का एक अद्‌भुत कार्य किया । साहित्य की शायद ही कोई विद्या हो, जिसे केलकर ने न छुआ हो, चाहे कहानी हो, बाल कथा हो, अनुवाद हो, गंभीर चिंतनपूर्ण लेख हो या पुस्तक राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, दार्शिनिक, पर्यावरणीय, सामाजिक, आर्थिक, वर्ण-विन्यास जैसे विषयों पर समसामायिक चिंतन से लेकर खगोलीय विषयों पर चिंतन उनकी राष्ट्रपरक सोच को उजागर करता है । शायद इसके पीछे उनका बाबा साहेब केलकर के सानिध्य के साथ-साथ उनके युवावस्था में पुर्तगाली शासकों से डॉ. राम मनोहर लोहिया के नेतृत्व में मुक्ति आंदोलन में साथ व गोवा के आजादी के आंदोलन में सक्रिय भूमिका, वर्धा के आश्रम में बिताए दिनों की बड़ी भूमिका रही हो । यहाँ तक कि रविन्द्रनाथ टैगोर व उनकी रचनाओं को समझने के लिए उन्होंने बॉग्ला भाषा भी सीखी, जो उनकी राष्ट्रीय एकतम्कता के बोध को परिलक्षित करती है ।

उपरोक्त तथ्य उनके राष्ट्रपरक होने का बोध कराते हैं । उन पर कुछ आलेचकों के द्वारा ऐसा आरोप लगाया जाता रहा है कि उनकी रचनाएं राजनीति से प्रेरित होती थीं, जबकि हकीकत यह है कि ये रचनाएं राष्ट्रपरक हैं । दरअसल बात यह है कि यह रचनाएं किसी विचारधारा की महक नहीं फैलाती, वरना आम आदमी की पीड़ा का चित्रण व उनमें स्वाभिमान का जागरण करने में मदद करती हैं । गोवा के समाज में राष्ट्रबोध, कोंकणी भाषा के महत्व के बोध को जगाने एवं बचाए रखने में रविन्द्र केलकर की रचनाएं आने वाले दिनों में भी समाज को राष्ट्रीयता के नए अर्थ, नए मायने व महत्व को नए ढ़ंग से समझने में न सिर्फ मदद करेंगी, अपितु नए साहित्यकारों को नव सृजन हेतु मार्गदर्शन भी करती रहेंगी । भारत की साहित्यिक विरासत में गोवा का नाम ऊँचा कराने में उनके अप्रतिम योगदान के लिए उनका सम्मान हमेशा से ही रहा है और रहेगा और समूची भारतीय साहित्य बिरादरी

व शासन ने उनके कृत्यों को सम्मानित करते हुए अनेकों सम्मान से अलंकृत कर उनके साहित्यिक योगदान को सम्मानित कर समुचा राष्ट्र गौरवान्वित महसूस करता रहा है ।

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करते हुए उन्होंने कहा था कि– ''अब लोगों ने क्षेत्रिय भाषाओं की रचनाओं को पढ़ना छोड़ दिया है और दूसरी तरफ अंग्रेजी भाषा में हम, बोन्साई बुद्धिजीवियों, बोन्साई लेखकों एवं पाठकों को पैदा कर रहे हैं ।'' (सीएनएन–आईबीएन) यह दर्द उनकी गोवा की भाषा व भूमि के प्रति प्रेम को उजागर करता है । 27 अगस्त 2010 के पश्चात केलकर अब हमारे बीच नहीं रहे, पर उनका सृजन हमेशा हमें मार्गदर्शन कराता रहेगा ।

संदर्भ सूची

1. पाल मेलो ए कास्ट्रो (2016), 'लेंदरिंग शैडो' दूसरा संस्करण, सालिगॉवो, गोवा, भारत, 1956
2. बेन एंटाओ (2015), 'गोवान लिटरेचर इन इंग्लिस' म्यूज इंडिया, 64 (नवम्बर–दिसम्बर)
3. मुफ्त ज्ञानकोश विकीपीडिया, रविन्द्र केलकर
4. शख्सियत : रविन्द्र केलकर, जनसत्ता
5. 'रविन्द्र केलकर को ज्ञानपीठ पुरस्कार' आई.बी.एन. लाइव नोएडा, उत्तर प्रदेश, सी. एन.एन., आई.बी.एन. पी.टी.आई. 31 जुलाई 2010

भारतीय भक्ति साहित्य और नरसी मेहता

डॉ. जोगेन्द्र सिंह मीणा

नरसी मेहता को पहले गुजराती आदि कवि के नाम से जाना जाता है । उनमें सूर, तुलसी और कबीर की झलक एक साथ देखने को मिलती है । निर्विवाद रूप से सूर, तुलसी और कबीर भारतीय भक्ति आंदोलन के संत और भक्त कवि माने जाते हैं । इन भक्त कवियों की काव्य संवेदना तथा इनका रचना संसार नरसी मेहता से विस्तृत और बहुआयामी हो सकते हैं, लेकिन जीवनवृत्त और व्यक्तित्व के संदर्भ में कहीं न कहीं सूर, तुलसी और कबीर के व्यक्तिव की झलक नरसी मेहता के व्यक्तिव में दिखाई देती है । जिस प्रकार सूरदास उत्तर भारत में सबसे बड़े कृष्ण भक्त कवि माने जाते हैं, उसी तरह नरसी मेहता गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान में बड़े कृष्ण भक्त कवि माने जाते हैं । गुजरात में कृष्ण भक्त कवि के रूप में नरसी मेहता का वही स्थान है जो सूरदास का हिंदी में है ।

सूरदास को जन्मांध माना गया है, फिर भी उन्होंने सबसे बड़े कृष्ण भक्त कवि होने का गौरव प्राप्त किया । हालांकि सूरदास के साथ कोई चमत्कार नहीं हुआ और वे जीवनभर सूरदास ही रहे । लगभग सूरदास की तरह ही नरसी मेहता भी जन्म से दिव्यंग थे । नरसी मेहता के बारे में कहा जाता है कि वे जन्म से गूंगे थे और आठ वर्ष की आयु तक गूंगे रहे । किसी कृष्ण भक्त साधु की दैवीय शक्ति के चमत्कार के कारण उनका गूंगापन समाप्त हुआ और उन्हें वाणी की प्राप्ति हुई ।

तुलसीदास के तुलसीदास होने का गौरव प्राप्त करने के पीछे उनकी अपनी साधन, तपस्या और कठिन परिश्रम तो था ही लेकिन इसके पीछे एक स्त्री का भी हाथ था । वह स्त्री तुलसीदास की पत्नी रत्नावली थी । ऐसा माना जाता है कि तुलसीदास को अपनी पत्नी से अत्यधिक अनुराग था, वे एक दिन भी अपनी पत्नी से अलग नहीं रह सकते थे । रत्नावली द्वारा भर्त्सना किए जाने के बाद ही तुलसीदास वैरागी बने और अपने महान ग्रंथों की रचना की । कुछ इसी प्रकार की घटना नरसी मेहता के जीवन में घटित हुई । कहा जाता है कि नरसी मेहता कोई काम-धाम नहीं करते थे । हमेशा कृष्ण की भक्ति में ही लगे रहते थे । इस कारण उनकी भाभी उन्हें ताने मारती और भला-बुरा कहती रहती थी । भाभी की बातों से तंग आकर नरसी मेहता एक दिन घर छोड़कर जंगल में चले गए और बिना खाए-पिए सात दिन तक शिवाजी की आराधना करते रहे । नरसी मेहता की भक्ति भावना से प्रसन्न होकर शिवजी साधु के वेश में प्रगट हुए । कहा जाता है कि शिवजी ने ही नरसी मेहता को कृष्ण भक्ति का रस-पान करवाया था । नरसी मेहता की लगन और समर्पण भाव से खुश होकर कृष्ण ने उन्हें दर्शन दिए तथा अनेक अवसरों पर उसकी सहायता की तथा उसके जीवन में कई चमत्कार दिखाए । कृष्ण से आशीर्वाद प्राप्त कर नरसी मेहता अपने घर गए और अपनी भाभी को धन्यवाद दिया, क्योंकि उसकी डाँट-फटकार और भला-बुरा कहने पर ही नरसी मेहता ने अपना घर छोड़ा जिसके कारण उन्हें ज्ञान अथवा ईश्वर की प्राप्ति हुई । इसके बाद ही नरसी मेहता ने अपने उत्कृष्ट काव्य की रचना की थी ।

भक्तिकालीन निर्गुण काव्य धारा के संत कवि कबीरदास की भांति नरसी मेहता भी उंच-नीच और जाति-पाती के विरोधी थे । वे किसी प्रकार के भेदभाव में विश्वास नहीं करते थे । वे दीन-दलितों के साथ समान व्यवहार करते थे । इसके कारण तथाकतिथ उच्च समाज में उनका विरोध होता था, लेकिन उन्होंने इसकी कभी परवाह नहीं की । ऐसा कहा जाता है कि नरसी मेहता दलितों के घर भोजन करते थे और साथ ही उनके घर जाकर कृष्ण भक्ति से संबंधित कीर्तन भी किया करते थे । इस दृष्टि से नरसी मेहता को कबीरदास की तरह ही विद्रोही और क्रांतिकारी भक्त कवि माना जा सकता है ।

नरसी मेहता संत भक्त कवि कबीर की तरह ही फक्कड़ प्रवृत्ति के भक्त कवि थे । उन्होंने अपने जीवन में कभी धन का संचय नहीं किया । उनकी पुत्री के यहाँ 'मायरा' अथवा 'भात' देने के लिए उनके पास कुछ नहीं था, लेकिन ऐसा माना जाता है कि कृष्ण की कृपया से उन्होंने अपनी पुत्री के यहाँ ऐसा भात दिया था जिसकी मिसाल आज भी दी जाती है । नरसी मेहता के जीवन से संबंधित इस प्रसंग की कथा गुजरात, महाराष्ट्र और राजस्थान में आज भी 'नरसी जी का मायरा' अथवा 'नरसी का भात' के नाम से जनसामान्य में प्रचलित है । राजस्थान में शादी-विवाह के अवसर पर नरसी के भात से संबंधित भजन गाए जाते हैं । कहा जाता है कि नरसी मेहता की पुत्री के यहाँ भात देने स्वयं कृष्ण गए थे और उन्होंने ही बहुत सारा धन तथा सामग्री दी थी । यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि 'नरसी जी का मायरा' नामक रचना प्रसिद्ध कवयित्री मीराबाई द्वारा लिखी गई है । नरसी मेहता और मीराबाई दोनों ही कृष्ण भक्त थे ।

नरसी मेहता का जन्म 1414 ई. में जूनागढ़ (सौराष्ट्र) के निकट तलाजा गाँव में माना जाता है और मृत्यु 1480 ई. में मंगरोल में 66 साल की उम्र में हुई थी । मंगरोल में उनके शमशान को 'नरसीनुं शमशान' के नाम से जाना जाता है, । ऐसा कहा जाता है कि उनके माता-पिता का देहांत बचपन में ही हो गया था । इसलिए वे अपने चचेरे भाई के साथ रहते थे । लगभग 15 वर्ष की आयु में ही उनका विवाह माणिकबाई से हो गया था । उनके दो संतान हुई थी — एक पुत्री कुंवरबाई और एक पुत्र श्यामलदास ।

नरसी मेहता घर छोड़कर अपने परिवार के साथ जूनागढ़ में रहने लगे । 'नरसिंह मेहता का चौरा' के नाम से उनका स्थान आज भी जूनागढ़ में स्थित है । यहाँ वे सब कुछ भूलकर कृष्ण के कीर्तन करते और अपने गीतों/भजनों की रचना करते थे । वे कृष्ण के गीत स्वयं भी गाते और दूसरे लोगों को भी आमंत्रित करते थे । वे अन्य स्थानों पर जाकर भी कृष्ण भक्ति के गीत लोगों को सुनाया करते थे । नरसी मेहता की रचनाओं को श्रृंगार रस की श्रेणी में रखा जाता है । उन्होंने कृष्ण की बाल लीला और रासलीला से संबंधित गीत और भजन लिखे हैं । उनके भजन बहुत ही मर्मस्पर्शी हैं । उन्होंने भक्ति, ज्ञान और वैराग्य से संबंधित भजन भी लिखे हैं । उनके द्वारा लिखित कुछ प्रमुख भजन इस प्रकार हैं-सूरत संग्राम, कृष्णा जन्म बधाई, रस-सहस्र पदी, सबुरी छत्रिसी, चतुरी षोडशी, बाल लीला, दान लीला, रास लीला, सुदामा चरित, नृसिंह विलास । उन्होंने लगभग 700 से अधिक गीतों/भजनों की रचना की है अथवा गाए हैं ।

महात्मा गांधी के प्रिय भजन 'वैष्णव जन तो तेणे कहिये' की रचना भी नरसी मेहता ने ही की है । भजन और उसका भावार्थ निम्न प्रकार है-

वैष्णव जन तो तेणे कहिये, जे पीड़ पराई जाणे रे,
पर दुख उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे ।
सकल लोकमां सहुने वंदे, निंदा न करे केनी रे,
वाच काछ मन निश्छल राखे, धन-धन जननी तेनी रे ।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न बोले रे, परधन नव झाले हाथ रे ।
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ़ वैराग्य जैना मनमां रे,
रामनामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना मनमां रे ।
वणलोभी ने कपट-रहित छे, काम क्रोध निवार्या रे,
भणे नरसैयो तेनूं दर्शन करतां कुलं एकोतेरे तार्या रे ।

वैष्णव जन वही है, जो दूसरे की पीड़ा को अनुभव करता है । दूसरे के दुखों को देखकर उस पर उपकार तो करता है, पर मन में अभिमान नहीं रखता । अर्थात् भलाई कर दरिया में डालने वाला ही सही अर्थों में वैष्णव जन कहलाता है । वह किसी की निंदा नहीं करता बल्कि सबकी वंदना करता है । जो वैष्णव जन अपने मन और वाणी पर नियंत्रण रखता है तथा ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उसकी माता धन्य है । ऐसा व्यक्ति जो अपनी दृष्टि को सचेत रखता है और जिसने तृष्णा का त्याग कर दिया हो तथा अपनी स्त्री के अतिरिक्त किसी भी दूसरी स्त्री को माता के समान मानता है, वही वैष्णव जन है, सदाचारी है । जो व्यक्ति दूसरे के धन को स्पर्श नहीं करता, उसे वह मिट्टी के समान समझता है और जिसे मोह-माया का कोई लोभ नहीं है, ऐसा व्यक्ति ही वास्तव में वैष्णव जन हो सकता है । सदाचारी अर्थात् वैष्णव जन को अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण होना चाहिए, वह जिसने सभी प्रकार की माया-मोह को त्याग दिया हो तथा उसके मन में हमेशा राम-नाम की धुन लगी हो और उसके शरीर में सभी तीर्थों का निवास हो । कहने का तात्पर्य यह है कि तन-मन से उसका आचरण पूरी तरह शुद्ध हो । साथ ही वह व्यक्ति लोभ रहित हो और उसके मन में किसी प्रकार का कपट नहीं हो तथा जिसने काम-क्रोध का त्याग कर दिया हो अर्थात वह सद्गुणों की खान हो । नरसी मेहता कहते है कि ऐसे सज्जन व्यक्ति के दर्शन से ही इकहत्तर पीढ़ियाँ तर जाति हैं अर्थात ऐसा व्यक्ति ही वास्तव में साधु पुरुष एवं वैष्णव जन कहलाता है ।

नरसी मेहता के जीवन के बारे में गुजरात और आस-पास के उत्तर भारतीय राज्यों के लोकजीवन में अनेक किवदंतियाँ प्रचलित हैं । उनके जीवन से संबंधित घटनाओं को वर्तमान समय में चमत्कार ही माना जा सकता है । ये किवदंतियाँ नरसी मेहता के व्यक्तित्व निर्माण में सहायक रहीं हैं, इसलिए उनके बारे में जानना आवश्यक है । देखते हैं, नरसी मेहता के जीवन से संबंधित कौन-कौन सी किवदंतियाँ प्रचलित हैं- पहली किवदंती यह है कि नरसी मेहता जन्म से गूंगे थे, वे बोल नहीं सकते थे । आठ वर्ष की आयु में नरसी मेहता को

उनकी दादी किसी सिद्ध महात्मा के पास लेकर गई, उस महात्मा ने नरसी मेहता को देखकर कहा कि भविष्य में यह बालक बहुत बड़ा भक्त होगा । महात्मा ने बालक नरसी मेहता के कान में कहा कि 'बच्चा, कहो राधा-कृष्ण' और नरसी मेहता 'राधा-कृष्ण' का उच्चारण करने लगा ।

नरसी मेहता के माता-पिता का देहांत उनके बचपन में ही हो गया था । वे अपने चचेरे भाई के साथ रहते थ । नरसी मेहता का मन साधु-संत संगति और भजन-कीर्तन में अधिक रमता था, वे घर के कार्यों में रुचि नहीं रखते थे । इस आदत के कारण उनकी चाची उनको भला-बुरा कहती रहती थी, लेकिन नरसी मेहता फिर भी अपनी धुन में ही मस्त रहते थे । मानिकबाई से विवाह के उपरांत भी नरसी मेहता की जीवन-पद्धति में कोई विशेष अंतर नहीं आया था । कहते हैं एक दिन नरसी मेहता साधु-संगति से रात को घर देर से आए जिसके कारण उनकी चाची की नींद खराब हुई । चाची ने नरसी मेहता को कुछ अधिक ही खरी-खोटी बातें सुना दीं । पत्नी के सामने खरी-खोटी बातों से नरसी मेहता के मन को ठेस पहुंची, जिससे से वे सूरज निकालने से पहले ही घर छोड़कर चले गए । अपने दुखी मन को लिए चलते-चलते वे किसी घने जंगल में पहुँच गए, जहाँ उन्हें एक खंडहर में शिव लिंग दिखाई दिया । कहा जाता है कि शिव लिंग देखकर नरसी मेहता का मन भक्ति से भर गया, वे अन्नजल त्याग कर शिव को प्रसन्न करने लग गए । नरसी का दृढ़ निश्चय और भक्ति से प्रसन्न होकर शिव जी ने दर्शन दिए तथा वरदान मांगने के लिए कहा । नरसी ने शिव जी से कहा कि जो आपको ठीक लगे वही दे दीजिए । कहा जाता है कि शिव जी के आशीर्वाद से ही नरसी मेहता को कृष्ण के दर्शन प्राप्त हुए और कृष्ण ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भक्तिरस का पान कराया । कृष्ण के कहने पर ही नरसी मेहता ने कृष्ण भक्ति की धारा को आगे बढ़ाया । नरसी मेहता कृष्ण भक्ति ज्ञान प्राप्त कर अपने घर वापस लौटकर या गए । उसके बाद ही नरसी ने कृष्ण भक्ति के भजन गाए और लोगों को कृष्ण भक्ति की ओर आकर्षित किया ।

ऐसा माना जाता है कि एक बार अपने पिता के श्राद्ध के दिन वे बाजार में घी लेने गए और रास्ते में घी भूलकर कृष्ण के भजन-कीर्तन में रम गए । उनकी अनुपस्थिति में स्वयं कृष्ण ने नरसी मेहता का रूप धरण कर उनके घर घी पहुंचाया था । जैसा कि इस लेख के पूर्व में लिखा है, नरसी मेहता की दो संतान थीं - एक पुत्री और एक पुत्र । उन्होंने बेटी का विवाह कर दिया, लेकिन बेटे का असामयिक निधन हो गया था । कुछ समय बाद नरसी मेहता की पत्नी माणिकबाई का भी निधन हो गया । इन घटनाओं के बाद नरसी मेहता पूरी तरह कृष्ण भक्ति में लीन हो गए । अब उनके ऊपर गृहस्थी का कोई दायित्व नहीं रहा था । इसलिए एक फक्कड़ साधु की तरह मोह-माया छोड़कर पूरी तरह कृष्ण के हो गए ।

नरसी मेहता के जीवन के बारे में गुजरात और आस-पास के उत्तर भारतीय राज्यों के लोकजीवन में अनेक किवदंतियाँ प्रचलित हैं । उनके जीवन से संबंधित घटनाओं को वर्तमान समय में चमत्कार ही माना जा सकता है । ये किवदंतियाँ नरसी मेहता के व्यक्तित्व

निर्माण में सहायक रहीं हैं, इसलिए उनके बारे में जानना आवश्यक है । देखते हैं, नरसी मेहता के जीवन से संबंधित कौन-कौन सी किवदंतियाँ प्रचलित हैं- पहली किवदंती यह है कि नरसी मेहता जन्म से गूंगे थे, वे बोल नहीं सकते थे । आठ वर्ष की आयु में नरसी मेहता को उनकी दादी किसी सिद्ध महात्मा के पास लेकर गई, उस महात्मा ने नरसी मेहता को देखकर कहा कि भविष्य में यह बालक बहुत बड़ा भक्त होगा । महात्मा ने बालक नरसी मेहता के कान में कहा कि 'बच्चा, कहो राधा-कृष्ण' और नरसी मेहता राधा-कृष्ण का उच्चारण करने लगा ।

ऐसा माना जाता है कि एक बार अपने पिता के श्राद्ध के दिन वे बाजार घी लेने गए और रास्ते में घी भूलकर कृष्ण के भजन-कीर्तन में रम गए । उनकी अनुपस्थिति में स्वयं कृष्ण ने नरसी मेहता का रूप धरण कर उनके घर घी पहुंचाया था । जैसा कि इस लेख के पूर्व में लिखा है, नरसी मेहता की दो संतान थीं-एक पुत्री और एक पुत्र । उन्होंने बेटी का विवाह कर दिया, लेकिन बेटे का असामयिक निधन हो गया था । कुछ समय बाद नरसी मेहता की पत्नी माणिकबाई का भी निधन हो गया । इन घटनाओं के बाद नरसी मेहता पूरी तरह कृष्ण भक्ति में लीन हो गए । अब उनके ऊपर गृहस्ती का कोई दायित्व नहीं रहा था । इसलिए एक फक्कड़ साधु की तरह मोह-माया छोड़कर पूरी तरह कृष्ण के हो गए ।

नरसी मेहता के जीवन के बारे में यह किवदंती प्रचलित है कि कुछ व्यापारी, व्यापार करने जा रहे थे लेकिन वे अपने साथ धन-दौलत नहीं ले जा सकते थे, क्योंकि उस जमाने में धन-दौलत साथ लेकर यात्रा करना सही नहीं होता था । उस समय में हुंडी की प्रथा थी । हुंडी एक कागज या गारंटी पत्र होता था, जो एक व्यापारी दूसरे व्यापारी को लिखकर देता था । इससे गंतव्य स्थान पर उन्हें धन मिल जाता था । व्यापारियों की जिद के कारण नरसी मेहता ने एक बार उन व्यापारियों के लिए किसी काल्पनिक व्यक्ति के नाम हुंडी लिख दी थी, जबकि उनका इस तरह के कार्यों से कोई लेना देना नहीं था । हुंडी के बदले मिले धन को नरसी मेहता ने कृष्ण की भक्ति करने में खर्च कर दिया । ऐसा कहा जाता है कि नरसी मेहता ने जिस व्यक्ति के नाम हुंडी लिखी थी, वास्तव में उस नाम का कोई व्यक्ति था ही नहीं । स्वयं कृष्ण ने उस काल्पनिक व्यक्ति का रूप धरण कर व्यापारियों को हुंडी की रकम दी थी ।

नरसी मेहता के जीवन से संबंधित यहाँ एक अंतिम किवदंती का उल्लेख करना अति आवश्यक है, क्योंकि यह किवदंती गुजरात सहित समूचे उत्तर भारत में प्रचलित है । ऐसा माना जाता है कि नरसी मेहता की पुत्री कुंवर बाई की पुत्री सुलोचना बाई के विवाह में भात देने के लिए नरसी मेहता के पास कुछ भी नहीं था, न कोई धन-दौलत और न ही कोई संपत्ति । लोग नर्सी मेहता का मजाक उड़ा रहे थे । नरसी मेहता ने कृष्ण से अपनी लाज बचाने के लिए प्रार्थना की और उन्हें विवाह का निमंत्रण दिया । कहते हैं कि सुलोचना बाई के विवाह में स्वयं कृष्ण भात लेकर गए और कई बैल गाड़ियों में कपड़े-लत्ते, धन-दौलत, हीरे-जवाहरात आदि सामग्री लेकर गए थे । कृष्ण ने ऐसा भात दिया, जैसा भूतकाल

में किसी ने नहीं दिया और न भविष्य में कोई दे सकता है । इसलिए आज भी 'नरसी का भात' अथवा 'नरसी का मायरा' गुजरात के साथ ही पूरे उत्तर भारत में प्रसिद्ध है । आज भी कोई भाई अपनी बहन के घर भात देने जाता है तो महिलाएं 'नरसी के भात' का भजन गाती हैं, अनेक प्रकार से नरसी के भात का उदाहरण देती हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गुजरात का यह कृष्ण भक्त संत उत्तर भारत सहित पूरे भारतीय भक्ति साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखता है । गुजराती साहित्य में नरसी मेहता के बारे में कहा जाता है कि- ''सूरदास का जो स्थान हिंदी साहित्य में है, वही स्थान नरसी मेहता का गुजराती साहित्य में है ।'' लेकिन मेरा मानना है कि नरसी मेहता का स्थान इससे कहीं ज्यादा है । यदि हम नरसी मेहता और सूरदास को साथ रखकर देखें तो जानेंगे कि जन्म सूरदास से पहले हुआ था या यों कहें कि नरसी मेहता के जीवन के अंतिम चरण में सूरदस का जन्म हुआ था । नरसी के कृतित्व काल को 'नरसी मेहता-मीरा बाई' काल के नाम से भी जाना जाता है । यह सही है कि हिंदी साहित्य में नरसी मेहता, मीरा बाई, जैसे भक्त कवियों को उचित स्थान नहीं मिल सका है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हिंदी साहित्य के इतिहास में जिन कवियों/लेखकों को स्थान दिया है, उन्हें ही आज तक आगे बढ़ाने का अवसर मिलता रहा है या यों कहें कि हिंदी के शोधार्थीयों/विद्वानों ने उन्हीं को केंद्र में रखा है । यदि हिंदी पट्टी के बाहर भारत के अन्य राज्यों की भाषाओं के संतों/कवियों को उचित स्थान मिलता तो ऐसे भक्त कवि आज हिंदी साहित्य की मुख्यधारा में सम्मिलित होते । अब समय है कि हिंदी साहित्य के इतिहास का नये ढंग से विश्लेषण हो और उपेक्षित रह गए साहित्य तथा साहित्यकारों को उसमें सम्मिलित किया जाए ।

संदर्भ सूची

1. गुजराती साहित्य का इतिहास - श्री जयन्तकृष्ण हरिकृष्ण दबे
   हिंदी समिति ग्रंथमाला-68, हिंदी समिति, सूचना विभाग
   लखनऊ, उत्तर प्रदेश, संस्करण-1963
2. गुजराती के संतों की हिंदी वाणी – सं. डॉ. अम्बाशंकर नागर
   गुर्जर भारती, अहमदाबाद, संस्करण-1969.
3. सूरदास और नरसिंह मेहता - डॉ. भ्रमर लाल जोशी (तुलनात्मक अध्ययन)
   गुर्जर भारती, अहमदाबाद, संस्करण-1968.
4. गुजरात के संतों की हिंदी साहित्य को देन - डॉ. रामकुमार गुप्ता
   जवाहर पुस्तकालय , मथुरा , संस्करण-1967.
5. भक्त नरसी मेहता – गीता प्रेस, गोरखपुर.
6. नरसी मेहता – हरिकृष्ण देवसरे
7. नरसी मेहता – अनन्त पई
   इंडिया बुक हाउस, संस्करण-2007.

8. https://www.sanatangroup.org/narsinh-mehta-autobiography/20959/
9. https://gitapressbookshop.in/0168-BE-bhakt-narsimha-mehta-
10. https://www.sivanandaonline.org//?cmd = displaysection & section_id=1628
11. https://alvitrips.com
12. https://panch Janya.com/2021/12/17/187403/bharat/sant-narsi-mehta-whose-composition-is-vaishnav- Jan-to-tene-kahiye/
13. https://www.livehindustan.com/bihar/muzaffarpur/story-narsi-mehta-s-leela-convincing-viewers-2293056.html
14. https://prayog.pustak.org/index.php/books/bookdetails/2061
15. https://hi.wikipedia.org/wiki/नरसी/मेहता
16. https://bharatdiscovery.org/india/नरसी/मेहता

सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में स्वतंत्रता संघर्ष की अनुगूँज

योगेन्द्र सिंह **प्रो. नवीनचंद्र लोहनी**

स्वतंत्रता के प्रति प्रेम ही राष्ट्रीय भावना है । देश पराधीन हो तो कोई संवेदनशील व्यक्ति राग-रंग में खोया नहीं रह सकता । विवेकशील व्यक्ति स्वाधीनता के लिए स्वयं को होम करके राष्ट्रीय चेतना की अलख जगाता है । स्वतंत्रता की चेतना किसी राष्ट्र के उत्थान की पहली सीढ़ी है । यह राष्ट्र की आत्मा है । किसी भी राष्ट्र की परिभाषा तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक वह 'स्वाधीन' नहीं है । दासता वेदनापूर्ण है । यह मानव एवं राष्ट्र की चैतन्य-यात्रा की एक बाधा है । भारत राष्ट्र ने सदियों दासता का दंश झेला है । पराधीन भारत को स्वाधीनता के सिंहासन पर आरूढ़ करने में अनेक लोगों ने अपने प्राणों की आहुति दी है । क्रांतिकारियों, समाजसेवियों तथा साहित्यकारों, राजनेताओं की एक लंबी श्रृंखला है, जिन्होंने अपना सर्वस्व न्यौछावर करके आजादी को वरण किया है । स्वाधीनता की इस संघर्ष यात्रा में साहित्यकारों की भी अविस्मरणीय भूमिका रही है । हिंदी साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में देश-प्रेम का नाद गुंजायमान करके राष्ट्र में न केवल देशभक्ति का संचार किया अपितु आम नागरिकों को स्वतंत्रता के इस महायज्ञ में आहुति देने के लिए प्रेरित भी किया । स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान अनेक साहित्यकारों ने भारतीय जनता में देश-प्रेम की भावना विकसित करने के लिए देश-प्रेम से ओत-प्रोत साहित्य का सृजन किया । सुभद्राकुमारी चौहान ऐसी ही रचनाकार हैं, जिनकी रचनाशीलता का उद्देश्य ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष की मशाल को प्रज्ज्वलित कर त्याग और समर्पण के लिए कोटि-कोटि भारतवासियों को उद्वेलित करना था ।

सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में मातृभूमि के प्रति प्रेम का ऐसा स्वर है, जो देशभक्ति के रंग से रंगा हुआ है । आपकी रचनाओं में देश की मिट्टी की खुशबू विद्यमान है । आपके काव्य में राष्ट्रीय चेतना और स्वाधीनता का उद्दाम स्वर है, जिस पर भारतीय संस्कृति की छाप दिखती है । आपकी काव्य रचनाओं में आस्था और प्राचीन इतिहास का गौरव परिलक्षित होता है । कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ केवल देशभक्ति तक सीमित नहीं है, अपितु इन्होंने जनान्दोलन का कार्य भी किया । स्वतंत्रता की माँग कर रहे लोगों में उत्साह पैदा करने का काम उनकी कविताएँ करती है । प्राचीन इतिहास के गौरव को सामने रखते हुए उन्होंने बताया कि देशभक्ति की भावना सबसे ऊपर है । एक देशभक्त अपने देश का गौरव और वैभव बनाए रखने के लिए आत्मोत्सर्ग से कभी पीछे नहीं हटता है । उसके इसी बलिदान भाव से पराधीनता की बेड़ियाँ स्वतः ही टूटने लगती है । 'झाँसी की रानी' कविता में देशभक्ति का यही भाव कवयित्री ने इस रूप में दर्शाया है-

> ''सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
> बूढ़े भारत में भी आई, फिर से नई जवानी थी,
> गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
> दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी,
> चमक उठी सन सत्तावन की, वह तलवार पुरानी थी ।''[1]

16 अगस्त 1904 को प्रयागराज (उ.प्र.) में जन्मी सुभद्राकुमारी चौहान राष्ट्र चेतना बोध की सजग कवयित्री है । आपका काव्यलोक स्वाधीनता आंदोलन संघर्ष तथा बलिदान के भाव से निर्मित हुआ है । आपके दो काव्य संग्रह प्रकाशित हुए हैं । 15 फरवरी, 1948 को 43 वर्ष की अल्प आयु में आपका निधन हो गया । इस कम आयु के जीवन में उन्होंने स्वतंत्रता के प्रति जो तेज कविता के माध्यम से जागृत किया, वह अविस्मरीण है । आपकी कविता राष्ट्रीय चेतना की सजग पहरी थी । उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान कई बार जेल की यात्रा की थी तथा यातनाएँ सही । अपनी इन्हीं अनुभूतियों, क्रांतिकारी दृष्टिकोण को कविता के रूप में संप्रेषित करके उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन को और अधिक धार दी थी ।

वीर रस से ओत-प्रोत पंक्तियों की रचना के कारण सुभद्राकुमारी चौहान को 'राष्ट्रीय वसंत की प्रथम कोकिला' कहकर सम्मानित किया गया था । उनकी कविताएँ क्रांतिकारियों का कंठहार बन गई थी । ऊर्जा से ओत-प्रोत रचनाएँ करने की प्रक्रिया में उनकी रचनाएँ सामान्य भारतीय जनता के देश-प्रेम का पर्याय बन गई थी । स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जो कविताएँ लिखी गई थी, उसमें माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' यदि भारतीय क्रांतिकारी भावना का श्रृंगार बन गई थी तो सुभद्राकुमारी चौहान की कविता 'वीरों का कैसा हो वसंत' उन्मेष का नवीन स्वर बनकर गुंजायमान हुई थी ।

"फूली सरसों ने दिया रंग
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग
है वीर देश में किंतु कन्त
वीरों का कैसा हो वसंत ?"[2]

सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ, भारतीय संस्कृति के प्राण-तत्वों, धर्म निरपेक्ष समाज के निर्माण तथा सांप्रदायिक सद्भाव का वातावरण तैयार करने के प्रयत्नों के लिए सोद्देश्यपूर्ण है । हिंदी साहित्य तथा देश की आजादी के लिए उनकी कविताएँ जीवंत और रोमांच पैदा करने का माध्यम थी । आपकी कविताएँ मानो जनसामान्य के हृदय में बिजली भरने का काम करती थी । ऐतिहासिक घटनाओं के माध्यम से क्रांति की मशाल जलाने में सुभद्राकुमारी चौहान अन्य रचनाकारों से कहीं आगे थी । यही भाव उनकी इन काव्य पंक्तियों में उजागर हुआ हैं-

"हल्दी घाटी के शिलाखण्ड
ऐ दुर्ग ! सिंह-गढ़ के प्रचण्ड
राणा ताना का कर घमण्ड
दो जगा आज स्मृतियाँ अनंत
वीरों का कैसा हो वसन्त ?"[3]

प्रस्तुत काव्य पंक्तियों में भारतीय इतिहास के स्वाधीनता संघर्ष पुत्रों राणा सांगा और ताना जी का यह स्मरण; कवयित्री के इतिहास बोध ही नहीं भारतबोध का भी परिचायक है । भारतीय इतिहास के धूल-धूसरित कालखंडों से स्वाधीनता साधकों की यह अन्वरत खोज, साधना और आराधना; कवयित्री ने अपनी कविताओं में की है । राष्ट्र उन्नायकों के

चरित्र-चित्रण के माध्यम से कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान ने भावी युवा पीढ़ियों को उनके कर्त्तव्य कर्म का बोध कराया है ताकि वे भी अपने प्राचीन आदर्शों के अनुरूप ही अपना सर्वस्व अपनी मातृभूमि पर अर्पित कर सकें । कवयित्री की यही काव्य प्रेरणा स्वाधीनता आंदोलन का लोकाहार बनकर स्वाधीनता आंदोलन की बेदी पर चढ़े नौजवानों का कंठाहार बनी थी; जिसे उन्होंने स्वाधीनता प्राप्ति तक यूँ ही धारण किए रखा ।

देश-प्रेम ही राष्ट्रीय चेतना है । राष्ट्रीय काव्य की यह विशेषता है कि उसमें देश वत्सलता, देशभक्ति तथा देश के लिए समर्पण का भाव निबद्ध होता है । राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि इतिहास के गर्भ से भी उत्पन्न होती है । इसकी अभिव्यक्ति में नया उत्साह रचनाकार के स्वर में उत्पन्न होता है । सुभद्राकुमारी चौहान की कविता 'पुरस्कार कैसा' में शक्ति और साहस के उत्साह को देखा जा सकता है-

"इन बुंदेलों की झाँसी में
शस्त्रों बिना तार कैसा ?
देश-प्रेम की मतवाली को
जननी ! पुरस्कार कैसा ?"[4]

स्वतंत्रता आंदोलन के समय शोषित जनता की शक्ति को जगाना सबसे बड़ा राष्ट्र कर्म था । सैकड़ों वर्षों की गुलामी ने पीढ़ियों को जो भीषण ताप दिया था, उससे बाहर निकलकर स्वाधीनता के लिए आहुति देना आसान नहीं था । देश की सुषुप्त जनता तथा जनभावनाओं को जागृति प्रदान करने के लिए ऐतिहासिक नायकों के पराक्रम तथा राष्ट्र प्रेम का गीत गाकर लोगों में जुनून पैदा करना अनीवार्य था । सुभद्राकुमारी चौहान की कविता में यह भाव पूर्णतः समाहित है । महात्मा गाँधी तथा बाल गंगाधर तिलक भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष के ऐसे महानायक थे, जिनकी वाणी सुनकर कोटि-कोटि भारतीयों ने त्याग के मार्ग का अनुसरण किया । इन नेताओं ने स्वाधीनता आंदोलन को व्यापकता प्रदान की, यही कारण है कि कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान की कविता में गाँधी और तिलक राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक बनकर उभरे-

"तिलक, लाजपत, गाँधी जी भी
बन्दी कितनी बार हुए ।
जेल गए जनता ने पूजा
संकट में अवतार हुए ।"[5]

हिंदी की राष्ट्रीय काव्यधारा को गति प्रदान करने के साथ जनमानस की सुषुप्त मानसिकता को झकझोरने के लिए सुभद्राकुमारी चौहान ने अपनी कविताओं के माध्यम से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई । उन्होंने 1857 की क्रांति की प्रणेता रानी लक्ष्मीबाई को केंद्रीयता प्रदान करते हुए लंबी कविता लिखी । 'झाँसी की रानी' कविता के प्रत्येक शब्द में राष्ट्रीयता का आयाम निहित है । रानी लक्ष्मीबाई के संघर्ष और उत्सर्ग की भावना को कवयित्री ने शब्दबद्ध करते हुए, यह बताया है कि उस वीरांगना ने मिटकर भी भारतीय क्रांतिधर्मिता को नया मार्ग दिखाया तथा अपने अदम्य साहस से राष्ट्र को नई संजीवनी-शक्ति प्रदान कर गई । कवयित्री ने इन काव्य पंक्तियों में रानी लक्ष्मीबाई को अपनी श्रद्धांजलि दी है-

''रानी गई सिधार, चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेईस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आई, बन स्वतंत्रता नारी थी ।''[6]

सुभद्राकुमारी चौहान अपनी कविता से राष्ट्रीय जीवन में अद्‌भुत चेतना का संचार करती है । उन्होंने देशभक्ति की कविताओं से जन-जन को उद्वेलित किया, उनके भीतर उत्साह का संचार किया । विदेशी ताकतों से लोहा लेने के लिए युवाओं का आह्वान करती हुई वह आत्म स्वाभिमान और आत्मविश्वास का संदेश देती है । उनकी 'स्वागत' कविता में आत्म स्वाभिमान का भाव इस रूप में व्यक्त हुआ है-

''हमें नहीं, भय संगीनों का, चमक रही जो उनके हाथ ।
जरा नहीं डर उन तोपों का, गरज रही जो बल के साथ ॥
ढीठ सिपाही की हथकड़ियाँ, दमन नीति के वे कानून ।
डरा नहीं सकते हैं हमको, यद्यपि बहावे प्रतिदिन खून ॥''[7]

हिंदी साहित्य में राष्ट्रीयता की प्रतीक रचनाकार के रूप में सुभद्राकुमारी चौहान को देश-समाज की ऐतिहासिक अनुभवशीलता के कारण प्रतिष्ठित किया जाता है । उनकी लोकप्रियता के बावजूद उनके कृतियों का मूल्यांकन गंभीरता से नहीं हुआ है । अपने सार्वकालिक यश के साथ भारतीयता को स्वरबद्ध करने वाली कवयित्री की रचनाओं को लेकर गजानन्द माधव मुक्तिबोध ने अवश्य अपनी कूची फेरी है । मुक्तिबोध ने लिखा है- ''सुभद्राकुमारी चौहान साधारण महिलाओं की आकांक्षाओं और भावों को व्यक्त करती है । खास तौर पर बहन, माता, पत्नी के साथ-साथ एक सच्ची देश सेविका के भाव उन्होंने जिस तरह व्यक्त किए, वह अनुपम और दुर्लभ है । उनकी शैली में वही सरलता अकृत्रिमता और स्पष्टता है जो उनके जीवन में है ।''[8] सुभद्राकुमारी चौहान देश-प्रेम की भावना को काव्यात्मक स्वर प्रदान करने वाली रचनाकार थी । उनकी ओजपूर्ण वाणी ने भारतीय युवाओं में स्वचेतना का संचार किया तथा स्वतंत्रता संघर्ष में बलिदान और त्याग की भावना की प्रेरणा दी । उनकी कविताओं में राष्ट्रवाद की भावना पर बदलते ऐतिहासिक घटनाक्रम का प्रभाव था । समसामयिक घटनाओं से प्रभावित होकर उन्होंने अनेक रचनाएँ की, जिसमें 'जलियावाला बाग में वसंत' प्रमुख है । जलियावाला बाग नरसंहार, वर्ष 1919 में हुआ, जब जनरल डायर ने शांतिपूर्ण सभा पर गोलियाँ चलाने का आदेश दिया, जिसमें सैंकड़ों निर्दोष हताहत हुए । इस घटना ने पूरे भारत को संवेदित तथा आंदोलित किया था । यहाँ कवयित्री की भावुकता इन शब्दों में व्यक्त हुई हैं-

''परिमल-हीन पराग दाग-सा बना पड़ा है ।
हा! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है ॥
आओ, प्रिय ऋतुराज ! किंतु धीरे से आना ।
यह है शोक स्थान यहाँ मत शोर मचाना ॥''[9]

स्वतंत्रता की बेदी पर न्यौछावर होने की प्रेरणादाता कवयित्री अपने बलिदानी वीरों पर जितना गौरवान्वित है उतनी ही शोक संतृप्त भी । प्रस्तुत काव्य पंक्तियों में कवयित्री अपने इन बलिदानी वीरों को भावुक हृदय से नमन करती है । स्पष्ट है कवयित्री का काव्य जहाँ स्वाधीनता आंदोलन की महाप्रेरणा है तो वहीं उनका हृदय मातृशक्ति का उद्दाम स्थल है, जिसमें ओज और भावुकता दोनों ही कूट-कूट कर भरे हुए हैं । सुभद्राकुमारी चौहान की कविताओं में क्रांतिकारी देश-प्रेम के साथ मातृत्व भावना का सुन्दर परिपाक है । उनकी कविता 'झाँसी की रानी' में 'खूब लड़ी मरदानी, वह तो झाँसी वाली रानी थी' किसी भी भारतीय के मन में देश-प्रेम की प्रक्रिया सृजित करने में सक्षम है । उनकी यह कविता युग की नवीन महागाथा है । यह एक वीरांगना के विराट जीवन की गवाही है । लोक जीवन से प्राप्त आस्थाओं तथा मिथकों का प्रयोग कर कवयित्री ने भारतीय इतिहास के एक महत्त कालखण्ड को शौर्यगीत में परिणत कर दिया है-

''लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना, ये थे उसके प्रिय खिलवाड़ ॥''[10]

सुभद्राकुमारी चौहान की भाषा सरल और शुद्ध खड़ी बोली थी । किसी राष्ट्र को संबोधित करने और उसकी युवा पीढ़ी में उत्साह भरने के लिए ऐसी ही भाषा की जरूरत होती है । सुभद्रा जी ने केवल उत्साह बढ़ाने के लिए काव्य-रचना नहीं की बल्कि स्वयं भी स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेकर यह बताया कि कवि कर्म केवल रचनाधर्मिता नहीं है बल्कि नेतृत्व के लिए तैयार करने की प्रक्रिया भी है । उन्होंने असहयोग आंदोलन में भाग लिया । 1922 ई. में जबलपुर झंडा सत्याग्रह में सुभद्राकुमारी चौहान ने पहली महिला सत्याग्रही के रूप में हिस्सा लिया । स्थानीय समाचार-पत्रों ने तब उन्हें 'लोकल सरोजनी' कहकर गरिमा प्रदान की थी ।

सुभद्राकुमारी चौहान ने राष्ट्रीय जीवन को विराट चेतना से भरने का कार्य किया । वह तरूणाई को जगाकर नये भारत का निर्माण चाहती थी । गुलामी से मुक्ति के साथ भारत के 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' को स्वरूप प्रदान करने के लिए उनका काव्यात्मक प्रयास महत्त्वपूर्ण है । उनकी कविता 'स्वागत-गीत' में इसे स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है-

''कर्म के योगी, शक्ति प्रयोगी
देश-भविष्य सुधारियेगा
हाँ वीर-वेश के दीन देश के
जीवन-प्राण पधारियेगा ।''[11]

स्वतंत्रता आंदोलन के संघर्ष को कवयित्री ने पाप-पुण्य की लड़ाई के रूप में राम-रावण का युद्ध बताते हुए महिलाओं को भी आगे आने की प्रेरणा दी । कवयित्री को विश्वास था कि पाप का जो साम्राज्य आज हमारे देश में कुंडली मारकर बैठा है, वह विनष्ट होगा और भारत माता स्वाधीन होगी । इस विश्वास के साथ सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपनी कविता 'विजयादशमी'में लिखा है-

''पापों के गढ़ टूट पड़ेंगे, रहना तुम तैयार सखी ।
विजये! हम-तुम मिलकर लेंगी, अपनी माँ का प्यार सखी ॥''[12]

सुभद्राकुमारी चौहान की राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद को उनकी प्रत्येक कविता में देखा जा सकता है । उनके भीतर गुलामी के अंधेरे से मुक्ति की छटपटाहट थी । उनका संपूर्ण काव्य इसी बेचैनी का प्रतीक है । उनकी रचनात्मकता में बेबाकी का स्वर है और वह बलिदान होने की भावना से प्रेरित होकर शब्दों में ढल सका है । उनकी आह्वान-परक कविताएँ मुक्ति की चाह रखने वाले नवयुवकों को उद्वेलित करती है-

''आज तुम्हारी लाली से, माँ के मस्तक पर हो लाली ।
काली जंजीरें टूटें, काली जमना में हो लाली ॥
जो स्वतंत्र होने को है, पावन दुलार उन हाथों का ।
स्वीकृत है माँ की वेदी पर पुरस्कार उन हाथों का ॥"[13]

राष्ट्रीय चेतना का तात्पर्य केवल क्रांतिधर्मिता ही नहीं है,बल्कि एकता और अखण्डता की भावना भी इससे जुड़ी हुई है । एकता की भावना ही राष्ट्रीय बल का आधार है । यह अनिवार्य शर्त है । कवयित्री 'राखी' कविता में राष्ट्र की एकता के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती दिख जाती है । राष्ट्रीय चेतना का ऐसा काव्यात्मक रूप कम ही रचनाकारों में मिलता है । डॉ. रामकुमार वर्मा ने सुभद्राकुमारी चौहान के 'मुकुल' कविता-संग्रह की भूमिका में लिखा है- ''सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य में विविधता होते हुए भी उनकी कविताएँ राष्ट्रीय हैं क्योंकि उनका जीवन ही राष्ट्रीय भावमय है । सच्चे अनुभवों ने उनकी कविताओं को अधिक स्पष्ट और हृदयग्राही बना दिया है । उन्होंने अपनी राष्ट्रीय कविताओं में वीर भाव के साथ ही भावुकता भी इस प्रकार भर दी है कि उन कविताओं का मूल्य वस्तुतः देश के मूल्य के बराबर हो गया है ।''[14] निष्कर्षतः सुभद्राकुमारी चौहान आधुनिक हिंदी काव्यधारा में राष्ट्रीयता की उद्‌घोषक कवयित्री हैं । उनका जीवन और रचनाकर्म समानांतर रूप से चलता हुआ भी एक-दूसरे से कभी असंपृक्त नहीं हुआ । उनकी कविताओं में 'भारतीयता' का प्राणतत्व निहित है । देश की आजादी के लिए उनकी भावुकता कविता को हथियार बनाती है और देश के कोटिशः युवाओं को संघर्ष के लिए प्रेरित करती है ।

सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ कालजयी हैं । यह हर उस कालखंड में प्रासंगिक है, जब देश के लोगों को 'राष्ट्रीयता' और प्रेरणा की जरूरत होगी । यह एकता और अखंडता का स्वर बुलंद करने वाली काव्यात्मक-सृजनात्मक चेतना का अवरूप है ।

अस्तु सुभद्राकुमारी चौहान का काव्यलोक देश और देश-प्रेम के भाव से सन्निहित है । आपकी काव्यदृष्टि स्वाधीन भारत और उसके पीछे होम हुए जननायकों के बलिदान और गौरव से गहन रूप से संपृक्त है । इसीलिए आपकी कविता आजादी के मतवालों का शृंगार, उनका गौरवगान करके करती है । सच्चे अर्थों में सुभद्राकुमारी चौहान भारतीय राष्ट्रीय चेतना और स्वाधीनता आंदोलन की निर्भीक पहरी थी, उनके जीवन कर्म और रचनाधर्मिता में इसकी सहज संपुष्टि हुई है ।

संदर्भ सूची

1. सुधा चौहान, कविता - झाँसी की रानी, भारतीय साहित्य के निर्माता : सुभद्राकुमारी चौहान, साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35-ए, फिरोजशाह मार्ग, नई दिल्ली-110001, संस्करण-2013, पृ.सं. 80
2. शिव कुमार मिश्र, राष्ट्रीय-सामाजिक काव्य-सुधा (कविता - वीरों का कैसा हो वसंत?), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-221001, संस्करण-2003, पृ.सं. 32
3. वही, पृ.सं. 33
4. सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल तथा अन्य कविताएँ, हंस प्रकाशन, 21-ए, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-1993, पृ.सं. 114
5. वही, पृ.सं. 97
6. सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल तथा अन्य कविताएँ (झाँसी की रानी), भारतीय साहित्य संग्रह, 12/10, खालटोली, कानपुर-208002, संस्करण-2012, पृ.सं. 57
7. सुभद्राकुमारी चौहान, स्वागत (कविता), भारतीय साहित्य संग्रह, 12/10, खालटोली, कानपुर-208002, संस्करण-2016, पृ.सं. 98
8. जनसत्ता (दैनिक समाचार-पत्र, दिल्ली संस्करण) से उद्धृत आलेख- राष्ट्र प्रेम का ओजस्वी स्वर सुभद्रा कुमारी चौहान (16 अगस्त, 2020)
9. शिव कुमार मिश्र, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्य सुधा, कविता - जलियावाले बाग में वसंत, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-221001, पृ.सं. 29
10. वही, पृ.सं. 28
11. वही, स्वागत गीत, पृ.सं. 30
12. सुभद्राकुमारी चौहान, मुकुल काव्य संग्रह, कविता - विजयादशमी, भारतीय साहित्य संग्रह, 12/10, खालटोली, कानपुर-208002, संस्करण-2014, पृ.सं. 78
13. वही, राखी (कविता), पृ.सं. 70
14. रामकुमार वर्मा, मुकुल की भूमिका : सुभद्राकुमारी चौहान, भारतीय साहित्य संग्रह, 12/10, खालटोली, कानपुर-208002, संस्करण-2012, पृ.सं. 02

गांधीयुगीन गुजराती कविता में राष्ट्रीय भावना एवं सुंदरम् का काव्य

डॉ. भावना ठक्कर

जब हम राष्ट्रीय अस्मिता की बात करते हैं तब राष्ट्र और राष्ट्रीय अस्मिता क्या है इसका ज्ञान होना आवश्यक है । 'राष्ट्र' शब्द का अर्थ देखे तो जनपद, राज्य, कोई निश्चित प्रदेश है । अंग्रेजी में इसे 'नेशन' भी कहते हैं तथा 'राष्ट्रीयता' का अर्थ देखे तो जनसमूह की मानसिक अवस्था, जनसमूह के आचार-विचार है । राष्ट्रप्रेम की भावना मनुष्य जाति की एक मूलभूत भावना है । स्वदेश के ऊपर यदि कोई आपत्ति आती है तब आत्म बलिदान देकर भी स्वतंत्रता की रक्षा करना यह मानव वृत्ति प्राचीन काल से चली आ रही है । 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' जैसी काव्य पंक्तियाँ भी प्राचीन काल से भारतीय सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एकता का परिचय देती है ।

राष्ट्रीय अस्मिता के संदर्भ में डॉ. दिलावर सिंह जाड़ेजा ने सही कहा है- ''प्रजाहित को यदि कवि किसी भी तरह से चाहते हो तो उसे राष्ट्रीय अस्मिता का प्रकटीकरण ही मानना चाहिए ।''[1]

राष्ट्रीय अस्मिता के लिए जनमानस का अनुसंधान राज्य के साथ होना अति आवश्यक है । अंग्रेज शासनकाल के दौरान प्रत्येक क्षेत्र में जागृति लाने का प्रयास लोगों में होने लगा । फिर वह सामाजिक, धार्मिक, राजकीय हो या आर्थिक । बंगभंग आंदोलन, बारडोली सत्याग्रह, क्विट इंडिया, करेंगे या मरेंगे जैसे राष्ट्रव्यापी आंदोलन शुरू हो गए थे । एक तरफ गांधीजी के विचारों का अनुसरण करने वाला अहिंसात्मक वर्ग था तो दूसरी तरफ खुदीराम बोस, सुभाषचंद्र बोस, भगत सिंह, मंगल पांडेय, चंद्रशेखर आजाद जैसे लोग भी थे, जो हिंसात्मक स्वरूप का आधार लेकर आजादी की कमान लेकर आगे बढ़े थे । ऐसे में साहित्यकारों द्वारा भी अपने साहित्य सर्जन के जरिए राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य किया जाने लगा । सन् 1915 के बाद गुजराती साहित्य सर्जकों का ध्यान इस ओर विशेष केन्द्रित हुआ ।

राष्ट्रीय अस्मिता के यह बीज हमें गांधीयुग से पूर्व सुधारक युग में कवि दलपतराम के 'बापानी पींपरी', 'फार्बस विरह', 'हुन्नरखाननी चड़ाई' आदि रचनाओं में भी मिलते हैं । उन्होंने खांडेराव गायकवाड़ के दरबार में गाया था- ''गुणवंती गुजरात तुं, भलो धरी ऊरभाव, गुण गा गायकवाड़ना, बंड थी कर्यो बचाव ।''

राष्ट्रीय अस्मिता के प्रमुख उद्‌गाता के रूप में कवि नर्मद भी प्रमुख हैं । उनकी 'हिन्दूओनी पड़ती', 'वीरसिंह' आदि कविता में भी स्वदेशाभिमान, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय ऐक्य एवं देश के लिए बलिदान वृत्ति पाई जाती है । दलपतराम एवं नर्मद दोनों के काव्य में देशभक्ति पाई गई है । लेकिन जहाँ दलपतराम की कविता में इसका शांत, संयत रूप हैं वहीं नर्मद की देशभक्ति में एक जोश, आवेश दिखाई देता है । पंडित युग में बहेरामजी मलबारी, भीमराव भोणानाथ, गोवर्धनराम, कवि कांत, न्हानालाल, खबरदार आदि ने अपनी कविताओं के द्वारा राष्ट्रीय चेतना को जागरूक करने में अपना योगदान दिया है ।

गांधीयुगीन गुजराती कविता का आरंभ सन् 1920 से माना जाता है । इस समय की कविता में राजभक्ति की अपेक्षा देशभक्ति का सूर तीव्र हुआ । साथ ही गांधीजी द्वारा भारत

प्रसिद्ध असहयोग आंदोलन भी शुरू हुआ था । यह समय भारत के लिए युग परिवर्तन का समय था । कोई एक युग प्रवर्तक साहित्यकार का साहित्य जगत पर जो प्रभाव होता है उससे भी अधिक प्रभाव गांधीजी का साहित्य जगत पर हुआ है । गांधीजी वैसे तो सत्य और अहिंसा के समर्थक थे । इस युग के अनेक कवि गांधीजी के विचारों से प्रभावित है और उन्हीं के विचारों को उन्होंने अपने साहित्य का आधार बनाया । उमाशंकर जोशी, सुंदरम्, कृष्णलाल श्रीधराणी, रा. वि. पाठक, झवेरचंद मेघाणी, जुगतराम दवे, देशणजी परमार, पुंजालाल दलवाड़ी, प्रजाराम रावण, मनसुखलाल झवेरी, करसनदास माणेक, चन्द्रवदन महेता, स्नेहरश्मि, सुंदरजी बेटाई आदि ऐसे प्रमुख कवि है कि जिन्होंने अपने साहित्य में गांधीजी की विचारधारा को केंद्र में रखते हुए साहित्य के अंतर्गत लोक कल्याण के भाव एवं राष्ट्रीय चेतना के भाव को आधार बनाया । इनकी कविताएँ राष्ट्रीय अस्मिता से युक्त, प्राण शक्ति से युक्त कविताएँ है । इनके द्वारा वास्तव प्रियता, दिन जन के प्रति वात्सल्य, सत्य-अहिंसा, मनुष्य-मनुष्य के बीच समानता, मानवतावाद आदि विषयों से युक्त कविताएं लिखी जा रही थी । अतः साहित्य सृष्टि में व्यापक परिवर्तन आए । इन परिवर्तनों के संदर्भ में स्वयं सुंदरम् कहते हैं कि ''जीवन में एक तरह से सर्वव्यापी जागरूकता आयी । स्वतंत्रता, नवनिर्माण, प्रकाश, ज्ञान, समता, सर्वभूतहित, बंधुत्व, मानव प्रेम, जन कल्याण, जनसेवा, त्याग, बलिदान, समर्पण इन सभी की एक भावात्मक सृष्टि तथा उसे जीवन एवं व्यवहार में सिद्ध करने का प्रयत्न प्रत्यक्ष होने लगे ।''[2]

इस समय के श्रेष्ठ कवियों में सर्वप्रथम नाम स्नेहरश्मि का है । उन्होंने सन् 1921 में 18 वर्ष की किशोर आयु में ही गांधीजी के ऊपर 'अवतार' नाम से काव्य का निर्माण किया था । इसे हम गांधीयुगीन कविता का उदय गान भी कह सकते हैं । कवि ने इसमें भारतीय जनता के भीतर उत्पन्न रोमांच का वर्णन किया है । वे कहते हैं कि नए अवतार के रूप में शुरू हुआ यह असहकार का आंदोलन देखने से भले उच्छेदक लगे, किंतु उसका मुख्य हेतु अंत में मंगलता और संवादिता का सृजन करना है- ''जय घोड़े बेसीने आवे नव अवतार ।''[3] 'ब्यूगल', 'एकलहाथ', 'सफर', 'स्वतंत्रता', 'यज्ञ', 'ज्वाला', 'दिवादांडी' आदि ऐसे प्रमुख काव्य है जिसमें स्नेहरश्मि की राष्ट्रीय अस्मिता के आशावादी दर्शन होते हैं ।

गांधीयुगीन कविता में राष्ट्र जागृति के उद्‌घोषक कवि के रूप में झवेरचंद मेघाणी एक प्रमुख कवि हैं । राष्ट्रीय शायर का बिरुद प्राप्त मेघाणी जी की कविता में एक ऐसा उत्साह, जोश दिखता है, जिससे पाठक एवं वाचक स्वयं ही उस प्रवाह में बहता चला जाता है । 'स्वप्न थकी सरजेली' उनका यह अनुवादक काव्य प्रथम देशप्रीति काव्य माना जाता है । 'सिंधुड़ा', 'युग वंदना', 'एक तारो', 'बापू ना पारणा' आदि उनके ऐसे काव्य संग्रह है जिसमें स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी हुई अनेक कविताएं मिलती है । इसमें 'सिंधुड़ा' उनका प्रथम काव्य-संग्रह जिसमें सिर्फ पंद्रह काव्य कृतियों का समावेश हुआ है, इसने लोगों में देशभक्ति का ऐसा रंग चढ़ाया कि उस समय की विदेशी सरकार को यह पुस्तक ले लेनी पडी थी । 'झंखना', 'मोत ना कंकु घोण्या', 'छेल्ली प्रार्थना', 'उच्च मस्तक', 'सर्जन-संहार नी जोडली', 'धीमा-धीमा लोचन खोलो', 'यज्ञधूप' आदि काव्य स्वातंत्र्य सेनानियों के लिए प्रेरणास्वरूप बने । उनका 'छेल्लो कटोरो' काव्य राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी को इस तरह से स्पर्श

कर गया कि वे पहले गोणमेजी परिषद में जाने से मना करते थे उसकी जगह बाद में उन्होंने गोणमेजी परिषद में जाने का निर्णय कर लिया था —

"छेल्लो कटोरो आ झेरनो आ पी जजो बापू !
सागर ने पिनारा ! अंजलि नव ढोणजो बापू !"[4]

मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करने का भाव उनके अनेक काव्यों में मिलता है–

"नथी जाण्यु, अमारे पंथशी आफत खड़ी छे,
खबर छे एटली के मातनी हाकल पड़ी छे,
जीवे माँ मावड़ी ए काज मरवानी घड़ी छे,
फिकर शी जयां लगी तारी अमो पर आंखड़ी छे !"[5]

मेघाणी जी के लिए मनसुखलाल जवेरी ने कहा है कि– "हमारी कविताओं को सामान्य जन हृदय के बीच रखने वाले, सजीवन किये हुए प्राचीन लय में युग के शौर्य तथा समर्पण, कारुण्य तथा मानवता के भावों को गाने वाले मेघाणी जी हमारे राष्ट्रीय शायर है ।"[6]

गुजरात के वडोदरा में जन्मे चंद्रवदन मेहता का भी गांधीयुगीन गुजराती साहित्य के अंतर्गत महत्वपूर्ण स्थान है । इन्होंने भी देशप्रेम, बंधुत्व से युक्त अनेक काव्यकृतियाँ गुजराती साहित्य को प्रदान की है । 'यमल', 'इला काव्यो', 'इला काव्यों अने बीजा', 'केटलाक', 'चंदरणा', 'रतन', 'दूधना दाणा', 'रूडारबारी' आदि उनके प्रमुख काव्य संग्रह है । 'स्वतंत्रता ! स्वतंत्रता ! रहो दिले तुं मूर्तिमंत' जैसी काव्य पंक्तियों से स्पष्ट है कि स्वतंत्रता, देशप्रेम, गांधीजी एवं उनकी विचारधारा का स्वर उनके काव्यों में भी पाया गया है ।

गांधीयुग के प्रमुख कवियों में सुन्दरजी बेटाई का भी महत्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने अपने 'वसुंधरानुं गुंजन', 'मुर्छानी अपयशकथा', 'जागृति गंगा', 'जीवता मोत ने जय', 'शांति तीर्थ', 'घडीये सांभणे शानुं', 'निशा दर्शन' आदि काव्यों के द्वारा गांधी विचारधारा को, सत्य, सत्याग्रह, अहिंसा तथा स्वदेश प्रेम को जागृत करने का प्रयास किया है–

"सर्वोदय सदा झंख्यो, सर्वोदय सदा चर्यो,
सर्वोदयनी सिद्धिमां ए महात्मा सदा रम्यो."[7]

भावार्थत: कह सकते है कि उन्होंने हमेशा आजादी की कामना की और उसी की प्राप्ति हेतु वे प्रयत्नरत रहे ।

गांधीयुग के अग्रणी कवियों को मनसुखलाल झवेरी का स्थान भी प्रमुख हैं । उनकी अनेक रचनाएँ गांधीयुगीन जीवन आदर्शों का पुरस्कार है । अपने 'अनुभूति' काव्य संग्रह में जहाँ गांधीजी के व्यक्तित्व की महानता प्रकट की है, वहीं 'फूल दोल' काव्य संग्रह की 'तदा', 'मनोरोथ' आदि काव्य कृतियाँ गांधीजी के शौर्य, सत्य एवं अहिंसा की यशोगाथा का वर्णन करती है । उनके 'अभिसार' काव्य संग्रह की 'महोत्सव खुमारीनो' काव्य सत्याग्रह के इतिहास का एवं सत्याग्रहियों की अड़गता का वर्णन करता है । इसके अतिरिक्त 'सहवीर्य करवा वहै', 'युद्धारंभे', 'शान्ति दीक्षा', 'जीवे छे', 'डुमो ओगण्यो', 'जय गुर्जर गंगे' आदि कविताएं गांधीजी के आदर्श एवं देशप्रेम को प्रकट करती है ।

गांधीवादी संस्था एवं शांति निकेतन में अभ्यास करनेवाले कृष्णलाल श्रीधराणी भी गांधीयुग के प्रमुख कवि है । 'पुनरपि', 'कोडिया', 'हाथरसनो हाथी' जैसे काव्य-संग्रह द्वारा देश के प्रति अपनी खुमारी, स्वातंत्र्य प्रेम तथा गांधीजी के आदर्श को इन्होंने प्रकट किया है । उनका 'सपूत' काव्य स्वतंत्रता सेनानी एवं सत्याग्रह योद्धा ऐसे गाँधीजी की महानता को प्रस्तुत करती रचना हैं, जिसकी तुलना धीरुभाई ठाकुर ने मेघाणी की काव्य रचना 'छेल्लो कटोरो' के साथ की है । श्री उमाशंकर श्रीधराणी की कविता के संदर्भ में कहते हैं कि "स्वातंत्र्य संग्राम संदर्भी श्रीधराणी की रचनाएँ सिर्फ प्रचार-प्रसार की अपेक्षा नहीं रखती बल्कि उनकी वाणी में भावना का ओजस भी प्रकट होता है ।"[8]

गांधीयुगीन गुजराती साहित्य में दलित प्रेम, पुरुषार्थ, स्वतंत्रता प्राप्ति की खेवना, अहिंसा तथा सत्य की भक्ति आदि विषय पाए गए हैं । गांधीजी के आदर्श जीवन का प्रभाव, सत्य, अहिंसा का भाव कवि उमाशंकर की कविताओं में भी पाया गया है । उमाशंकर के 'विश्वशांति', 'गंगोत्री', 'निशीथ', 'प्राचीना', 'आतिथ्य', 'धारावस्त्र' आदि काव्य-संग्रह की अनेक काव्यकृतियाँ गांधी विचारधारा का नवोन्मेष प्रकट करती हैं । उमाशंकर जोशी ने गांधीजी के सान्निध्य में काफी समय व्यतीत किया था । इसलिए गांधीजी के जीवन के आदर्श उनके सर्जन में हो यह स्वाभाविक है । गांधी विचारधारा के अनेक उन्मेष दलित, पीड़ित उद्धार, ग्रामोद्धार, विश्वशांति, सामाजिक वर्गभेद, आर्थिक असमानता, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अडिगता, सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह, मानवीय मूल्यों का संरक्षण आदि विषय उनकी रचना में गाँधी विचारधारा को मूर्त रूप प्रदान करते हैं ।

"अहिंसाथी भिंजावोने प्रकाशो सत्यतेजथी
शांतिनो जगने माटे मार्ग एके बीजो नथी ।"[9]

यहाँ कवि उमाशंकर जोशी मनुष्य जगत में विश्व शांति स्थापित करने की बात कर रहे हैं ।

गांधीयुग के काव्यों में गांधी विचारधारा को सर्वाधिक रूप से अपनाने वाले कवि युग्म में उमाशंकर एवं सुंदरम् का समावेश होता है । दोनों की सर्जन यात्रा समांतर रूप से आगे बढ़ती है । स्वतंत्रता की भावना, जीवन के प्रति गंभीर सच्चाई, समाज अभिमुखता का प्रधान स्वर इन दोनों कवियों की कविता में दिखता है ।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की प्रेरणा से ही जिनके जीवन काल की शुरुआत हुई थी ऐसे कवि सुंदरम् की रग-रग में राष्ट्रीयता समायी हुई है । सुंदरम् एक बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्ति हैं । उनका जन्म 22 मार्च 1908 को गुजरात के मियामातर गाँव में हुआ था । सुंदरम् का पूरा नाम त्रिभुवनदास पुरुषोत्तमदास लुहार है । वे अच्छे कवि के साथ-साथ नाट्यकार, विवेचक, कहानीकार, अनुवादक एवं प्रवास लेखक भी हैं । लेकिन उनकी पहचान एक कवि के रूप में ही होती है । इन्होंने 'कड़वी वाणी' तथा 'गरीबोना गीतो', 'काव्यमंगला', 'रंग-रंग वादणिया', 'वसुधा', 'यात्रा', 'उत्कंठा', 'महानद', 'अगम निगम', 'ध्रुवपदे' आदि काव्य रचनाएँ गुजराती साहित्य को प्रदान की तथा इसके जरिए गांधीजी के सत्य, अहिंसा एवं बंधुत्व के भाव को अपनाते हुए दीन, दरिद्र, पीड़ित एवं श्रमिक वर्ग के प्रति मानवीय

दृष्टि एवं समाजवादी दृष्टि रखते हुए अपनी कला सूझ के द्वारा गुजराती कविता साहित्य को समृद्ध किया ।

देश प्रेम के भावों को व्यक्त करते हुए सुंदरम् अपने काव्य 'हे देश मारा' के अंतर्गत बताते हैं–

''हे देश मारा !
प्राण पियारा
मूढ़ गमारा ।''[10]

अर्थात् हे मेरे देश, मेरे प्राण से भी अधिक प्रिय देश अपनी मूर्ख बुद्धि का त्याग करो । इस तरह से वह अपने देशवासियों को जागरूक होने के लिए और भ्रमित मति का त्याग करने के लिए कहते हैं ।

गुलामी क्या चीज है ? इस अवस्था का वर्णन करते हुए सुंदरम् बताते हैं कि–

''ब्रिटिश गाड़ीए बैठण हारा,
फ्रांसनी पिनो पहेरण हारा,
जर्मनशाहीए लेखण हारा,
स्विसनी घड़ियाण धारणहारा,
चीनना रेशमे शोभण हारा,
जापानी घूघरे खेलण हारा,
तारुं एवुं छे शुं प्यारा ?
ओ देश मारा ।''[11]

स्वदेश प्रेम एवं देशाभिमान का भाव हम सुंदरम् के काव्य 'उठो रे' में प्राप्त कर सकते हैं । यहाँ पर स्वयं भारतमाता नव युवकों को उठा रही है तथा राष्ट्रीयता रूपी नव प्राण का संचार भी कर रही हैं ।

''उठो रे बाणक राजा रामनां, माता भारत उठाडे,
पंखा वींझी नवा प्राणना, उण्डी, उंघो उड़ाडे ।''[12]

किस तरह हमारे पूर्वजों ने अपनी जान की बाजी लगाकर देश की रक्षा की थी । देश की तरक्की के लिए नए-नए आयाम खड़े किए थे । वही आज का नवयुवक अपने भीतर के आलसीपन को न त्यागते हुए अपने पूर्वजों की कीर्ति को नष्ट कर रहा है । ऐसे में उनके भीतर आत्म जागृति लाना, नवीन ऊर्जा का संचार करना अति आवश्यक हो गया । इसलिए कवि सुंदरम् इन्हीं नवयुवकों को जागृत करते हुए कहते हैं कि–

''वडवा तमारानी वात शी? किर्ति एनी गवाणी,
लखमी लाव्या नवखंडनी, गंगा स्वर्गेथी आणी,
वडवा कमाया, तमे खोयुं, वाव्युं एनुं उखेडयुं,
घोड़े चड़ी घूमो गगनमां, रणनी वाटे थनगनजो ।''[13]

सुंदरम् यहाँ यह कहना चाहते हैं कि हमारे पूर्वजों की कीर्ति की क्या बात करें ? उनकी कीर्ति बहुत ही अनूठी है । वे नवखंड से लक्ष्मी लेकर आये । स्वर्ग से गंगा लेकर आये । उन्होंने नाम, कीर्ति कमाई । हमारी युवा पीढ़ी ने उसको खर्च किया, नष्ट किया । पूर्वजों ने विकास किया हमने उस विकास को नष्ट किया और मौत को आमंत्रण दिया । व्यर्थ है हमारा ऐसा जीवन, नीडर बन के उठो, पार करो सागर किनारा । भीतर के बेचारेपन को दूर करते हुए बहादुर बनो । घोड़े पर सवार होकर आसमान को छूओ, रेगिस्तान की राह को अपनाओ । अर्थात् यहाँ पर कवि आज की युवा पीढ़ी में नव प्राण का संचार कर रहे हैं ।

इसके अतिरिक्त 'कड़वी वाणी' काव्य संग्रह की 'वेरण मींदडी', 'पांदड़ी', 'भंगड़ी', 'रुड़की', 'त्रण पड़ोसी', 'छापरानुं गीत', 'तकली अने मोरली' आदि रचनाओं के जरिए सुंदरम् ने राष्ट्रीय प्रश्नों को वाणी दी है । ये सारी रचनाएँ 'कड़वी वाणी' काव्य-संग्रह में है । इन सभी काव्यों में कलातत्व की अपेक्षा भावतत्व अधिक पाया गया है ।

सन् 1933 में प्रकाशित उनका दूसरा काव्य-संग्रह 'काव्यमंगला' के अनेक काव्यों में राष्ट्रीय चेतना के बीज पाये गए है । इस संग्रह की 'रणगीत', 'त्रिमूर्ति', 'बुद्धनां चक्षु', साफल्यटाणु', 'बणतां बचावजे' आदि कविताएं देश की मिट्टी हेतु मर मिटने के लिए लोगों में जोश उत्पन्न करती है-

''भारत आपणी बोले,
भूख मिटाववा, दुख फिटावा,
कोण रे उठशे, भाई ?
हो के, कोण रे उठशे, भाई ?
भारतवीर, भारतवीर,
उठवा अमे अधीर
उठशुं अमे भारतवीर ।''[14]

इसके अतिरिक्त 'वसुधा', 'यात्रा' आदि काव्य-संग्रह की अनेक कविताओं में सुंदरम् ने नवीनरूप से नए भाव के साथ, नयी भाषाभिव्यक्ति के साथ राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त किया है ।

हमारे स्वतंत्र सेनानी कैसे है ? उनका आदर्श क्या है ? उनका धर्म, उनका कर्म क्या है ? आदि बातें कवि ने अपने काव्य 'अमे अमे' के अंतर्गत सहजता से दर्शायी है ।

''अमे सदाय होंशियार सज्ज धीर वीर,
अमे सदाय तीक्ष्ण तेज धारदार तीर,
अमे अमे अमे अमे
स्वतंत्रता तणा शहीद,
अजर अमर जपी रहो सदा अमारो हिन्द ।''[15]

यहाँ 'अमे' अर्थ देश के लिए लड़ने वाला योद्धा होता है । वह योद्धा कैसा होना चाहिए ? उसके आदर्श क्या है ? भूमिका क्या है ? उसका धर्म और कर्म क्या है, यह सब इस काव्य में कवि ने दर्शाया है ।

भारत माता के प्रति कवि के जो उमदा, उच्च भाव है, वह हम उनकी रचना 'तारे लिए' के अंतर्गत देख सकते हैं ।

"आ रुधिरनुं बूँदें बूँद तहारु,
आ कलेवरनो कणे कण चरण तारे पाथरुं
ले बलि लाख्खो अमारा, मावड़ी!
विश्वमां फरकी रहो धजा गगने चडी ।"[16]

कवि यहाँ यह कहना चाहते हैं कि इस रक्त की प्रत्येक बूंद तेरी है । इस शरीर का प्रत्येक कण तेरे चरणों में समर्पित है । हे भारत माता तेरी रक्षा हेतु, मुक्ति के लिए यदि शूरवीर को अपने प्राणों का भी बलिदान देना पड़े तो उसमें भी संकोच नहीं । विश्व में तेरी यशगाथा गूंजती रहे । इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि अपने काव्य 'जागो' में बताते हैं कि–

"तपतां नहि भानु थंभे, वातां नहि वायु झंपे,
मरता नहि शूर कंपे, उठ, चाल आगे । जागो..."[17]

इसका भावार्थ यह है कि जिस तरह सूर्य कभी अपनी रोशनी देने से नहीं रुकता है, वायु कभी भी अपनी हवा देने से नहीं थकता है । शूरवीर कभी भी मरने से नहीं डरता है; उसी तरह हमें भी आगे बढ़ते हुए मातृभूमि के लिए कुछ करना चाहिए, डरना नहीं चाहिए । कवि का यही भाव, यही जोश उनकी रचना 'पडकार' के अंतर्गत भी मिलता है ।

"घूमे छे खंडखंड एक ज पडकार आज,
मुक्तिने काज कोण, मरवा तैयार आज!
उगती जुवानी ताती तलवार,
झीली ले तुं पडकार । जागे..."[18]

सन् 1930 से 1946 के बीच सुंदरम् ने अनेक स्वाधीनता संग्राम के काव्यों का निर्माण किया । उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित 'महानद' काव्य-संग्रह में भी इस तरह के अनेक काव्य पाये गए है । 'वणिक गुरु', 'गांधीबापो', भारत भिखारी', 'गरबो गांधीडानो' आदि काव्य सिर्फ गांधीजी को केंद्र में रखकर लिखे गए है । 'बालतिलक' काव्य शहीद बाण गंगाधर तिलक को उनके द्वारा दिया हुआ श्रद्धासुमन है । ऐसे ही राष्ट्र के एक और सपूत सरदार वल्लभभाई पटेल को याद करते हुए 'महावट' तथा 'जय सरदार' जैसे काव्य का सृजन किया, जिसमें सरदार वल्लभभाई पटेल की महानता एवं शूरवीरता का वर्णन है । इतना ही नहीं, भूदान के प्रणेता विनोबा भावे को याद करते हुए 'भू-दान' काव्य लिखकर राष्ट्र को समर्पित किया । देश के महान कवि रवींद्रनाथ टैगोर को याद करते हुए 'अहो कवि-रवि' काव्य लिखा । 'धरा भरतनी' तथा 'भारत' जैसे काव्य लिखकर भारत के वैशिष्ट्य से लोगों को अवगत कराया है । कवि सुंदरम् गुजरात के होने की वजह से उनके भीतर गुजरात के प्रति उच्च भाव हो यह स्वाभाविक ही है । 'जय जय गरवी गुजरात' में गुजरात की सिद्धियों का गुणगान हुआ है । 'गुर्जरी भू' में भी गुजरात की धरा के प्रति उच्च भाव प्रकट हुआ है ।

इस प्रकार सुंदरम् की काव्य यात्रा गांधीयुग से लेकर अनु गांधीयुग तक विस्तृत है । विषय वैविध्य एवं भाव प्रवाहिता को लेकर गांधीयुगीन काव्यों में सुंदरम् और उनके काव्य साहित्य को हम प्रथम श्रेणी के अंतर्गत रख सकते हैं ।

कुल मिलाकर कह सकते कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इस आंदोलन में गुजरात की प्रजा को जोड़ने वाले गांधीयुगीन साहित्य सर्जकों ने अपनी कविताओं के जरिए गांधीजी के जीवन आदर्श एवं प्रेरणाओं को प्रस्तुत करने का एवं जनमानस में जागृति लाने का कार्य किया था ।

संदर्भ सूची

1. गुजराती कवितामां प्रतिबिंबत राष्ट्रीय अस्मिता, डॉ. दिलावर सिंह जडेजा, पृष्ठ–7
2. अर्वाचीन कविता, सुंदरम्, पृष्ठ–457, 458
3. गुजराती कवितामां प्रतिबिंबित राष्ट्रीय अस्मिता, डॉ. दिलावर सिंह जाडेजा, पृष्ठ–203
4. छेल्लो कटोरो, युगवंदना, झवेरचंद मेघाणी, पृष्ठ–40
5. युग वंदना, झवेरचंद मेघाणी, पृष्ठ–12
6. थोड़ा विवेचन लेखो, मनसुखलाल झवेरी, पृष्ठ–282
7. विशेषांजलि, सुन्दरजी बेटाई, पृष्ठ–93
8. गुजराती कवितामां प्रतिबिंबित राष्ट्रीय अस्मिता, डॉ. दिलावर सिंह जाडेजा, पृष्ठ–222
9. उमाशंकर जोशी, समग्र कविता, पृष्ठ–8
10. कड़वीवाणी काव्य संग्रह से, हे देश मारा, पृष्ठ–81
11. हे देश मारा !, कड़वी वाणी, पृष्ठ–81
12. उठो रे, कड़वी वाणी, पृष्ठ–89
13. उठो रे, कड़वी वाणी, पृष्ठ–89
14. रणगीत, काव्य मंगला, पृष्ठ–7
15. अमे अमे, महानद, पृष्ठ–12
16. तारे लिये, महानद, पृष्ठ–4
17. जागो, महानद, पृष्ठ–6
18. पडकार, महानद, पृष्ठ–9

महात्मा गाँधी और हिंदी कवियों की कविताएँ

डॉ. आशा रानी

1857 ई. की महान क्रांति जिसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से भी जानते हैं, हिन्दुस्तान में एक ऐसी ऐतिहासिक घटना है, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ युग-युगांतर तक प्रेरणा लेती रहेंगी। जहाँ अंगरेजों ने इसे केवल 'सैनिक विद्रोह' के रूप में प्रचारित किया, जबकि वास्तविकता यह है कि इस संग्राम में स्वतंत्रता सेनानियों और आम जनता ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और अपने प्राणों की आहुति दी । सर्वप्रथम बी. डी. सावरकर ने इसे 'भारतीय स्वाधीनता संग्राम' कहा तथा इसी नाम से सन् 1910 ई. में अंगरेजी भाषा में एक पुस्तक लिखी जो `The Indian War of Independence'[1] के नाम से लिखी । यह आन्दोलन ही स्वतंत्रता के लिए प्रेरणा बन गया और लोगों के मन में आजाद होने की लालसा और हिम्मत जग गई।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भारतवर्ष को 'माँ भारती' के नाम से उदबोधित किया है। इसी कामना से वे नमन् करते हैं-

''मानस-भवन में आर्यजन जिसकी उतारें आरती
भगवान! भारतवर्ष में गूँजे हमारी भारती !!''[2]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की 'मातृभूमि' शीर्षक कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रेरणादायक हैं, जो मातृभूमि पर मर मिटने एवं संकट से उबारने की भावना प्रकट होती है-

''जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान! कभी हम रहे न न्यारे ।
उस मातृभूमि की धूलि में जब पूरे सन जाएंगे,
होकर भव बंधन मुक्त हम आत्मरूप बन जाएंगे ।''[3]

हिंदी के कवि-लेखक-पत्रकार श्री सुधीर सक्सेना की महात्मा गाँधी की मध्य प्रदेश यात्राओं पर केन्द्रित पुस्तक ऐसे आये गाँधी, उन नाम-अनाम स्वतंत्रता संग्राम-सेनानियों को सादर समर्पित किया है जिन्होंने सत्य की जंग में शिरकत की । उनका विश्वास था कि महात्मा गांधी के संदेशों और वाणियों से हमें विकास का रास्ता खोजने में ठोस मदद मिली ।

''सदियों की सदी है यह
सदी है
फकत सत्य की लाठी से
धरती को
मुक्ति की ओर
ठेलते
गाँधी की ।''[4]

पूरे विश्व में भारत के आन बान और शान को लोहा मनवाते हुए जिस प्रकार गाँधी ने सत्य की लड़ाई लड़ी कवि हृदय सियारामशरण गुप्त ने अपनी कविता में उनका गुणगान किया –

''हम सब के थे प्यारे बापू / सारे जग ने न्यारे बापू ।''[5]

आन्दोलनकारियों को प्रेरित करते हुए अपनी रचनाएं की हैं-

''रामराज्य का अर्थ हिन्दू राज्य नहीं है...
रामराज्य से मेरा मतलब है - ईश्वर का राज ।
मेरे लिए राम और रहीम में कोई अन्तर नहीं है ।
मेरे लिए तो सत्य और सत्कार्य ही ईश्वर है ।''[6]

महात्मा गाँधी की सत्याग्रह की अवधारणा तथा नमक-सत्याग्रह में उसके प्रयोग को समझा गया -

''बंगयुग से कोटि सिर झुकते जहाँ
घूमता चरखा लिये गिरि पर चढ़ो,
ले अहिंसा-शस्त्र आगे ही बढ़ो ।''[7]

'सिपाही' शीर्षक कविता में भी, जो 1924 ई. की रचना है, उस समय के नरम और गरम दल की विचारधारा की ध्वनियाँ गूँज रही हैं । सिपाही का रूप ऐसा है ।''[8] यह एक संयोग ही है कि गाँधी जी की पीढ़ी के बाद की पीढ़ी के चिंतक श्री दीनदयाल उपाध्याय ने भी अपनी पुस्तक एकात्म मानववाद में 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम' यानि शरीर, धर्म का प्रथम साधन है के सिद्धान्त के तहत जीविका के साधनों के महत्व को रेखांकित किया ।''[9]

त्याग की वेदी पर आत्मोत्सर्ग कर देने की उच्चतम आध्यात्मिक मनोवृत्ति है । इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने अपनी एक कविता में लिखा है-

''ले प्राणों के फूल करों में,
हिय में अमित उमंग भरे,-
कन्धों पर ले विजय-पताका,
नयनों में रण-रंग भरे ।''[10]

गाँधी राजनीतिज्ञ से अधिक रहस्यवादी, रहस्यवादी से अधिक क्रान्तिकारी और क्रान्तिकारी से अधिक पुराण-पुरुष हैं । उन्होंने उस साधन को जन्म दिया जिसे हम संक्षेप में 'सत्याग्रह' कहते हैं । ''क्षमा सोहती उस भुजंग को जिसके पास गरल है ।''[11]

''गाँधी जी ने भारत को आजाद कराने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध सन् 1920 से ही असहयोग आन्दोलन करना प्रारम्भ कर दिया था ।''[12]

आन्दोलनकारी श्यामलाल 'पार्षद' द्वारा रचित राष्ट्रीय गीत 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊंचा रहे हमारा' गाते हुए तिरंगा झंडा लेकर जंगल में प्रवेश किया -

''मेरी यह जन्मभूमि जननी जगत में
पंचतत्व मेरी पुण्यभूमि के हैं मुझमें
कहला रहे हैं वही मुझसे पुकार के
हम परतंत्र नहीं, सर्वथा स्वतंत्र हैं ।''[13]

गुजराती पत्रकारों में अमृतलाल सेठ का नाम विशेष रूप से लिया जाता है-

''अस्थिर किया टोप वालों को गाँधी टोपी-वालों ने
शस्त्र बिना संग्राम किया है इन माई के लालों ने ।''[14]

प्रजा की थाती रहे अखण्ड

''सत्य अहिंसा बन अन्तर्राष्ट्रीय जागरण
मानवीय स्पर्शो से भरते धरती के व्रण ।''[15]

''हिन्दु-मुसलमान सब भाई, निज नवीन जय-गान,
वैष्णव, बौद्ध, जैन आविक हम उस पर हिंसा करें कि प्यार
सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार
हार मानकर शत्रु स्वयं ही यहाँ करेंगे मित्राचार ।''[16]

'पहिने जंजीर वहीं
कृष्ण को रिझाना तू
माँगे जालिम तो
खुशी से ये सर चढ़ाना तू ।''[17]

''अब तप के लिए विनोबा है
अपने तो पद है सेवा है ।''[18]

निराला के साथ जनभेदनी हुंकार उठी थी-

जागो फिर एक बार
समर में अमर कर प्राण
गान गाये महासिन्धु से
सिन्धु नद तीर वासी ।''[19]

स्वतंत्रता आंदोलन के समय जनता ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से अपने को सम्बद्ध करते हुए सरकार विरोधी आंदोलन के माध्यम से देश में अलख जगाने का प्रयास हुआ । जनता को जागरूक करने में इस युग के साहित्यकारों यथा मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामकुमार वर्मा, वृंदावन लाल वर्मा, रायदेवी प्रसाद पूर्ण, केदारनाथ अग्रवाल आदि की रचनाओं ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

केदारनाथ अग्रवाल 'गुलमेंहदी' शीर्षक काव्य के 'करोड़ों का गाना' नामक कविता में गुलाम होने की मानसिकता पर कटाक्ष करते हुए हमें आजादी के लिए आत्मसंघर्ष पर जोर देते हुए लिखते हैं —

''सभी का तन गुलाम है,/सभी का मन गुलाम है,
सभी की मति गुलाम है,/सभी की गति गुलाम है,
गुलामियों के चिह्न को मिटाए चल ।''[20]

कलम की यही ताकत आंदोलनकारियों को जोश दिलाने के लिए काफी था । यहीं गूंज अंगरेजों को परेशान भी करती रही है । महात्मा गांधी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन में सहभागिता[21] के लिए प्रेरित करती हैं -

"साठ वर्ष के बूढ़े गांधी, जेल में जा बैठे हैं आज ।
कैसे तुम युवक कहलाते उर में तनिक न आती लाज ।
इस विडम्बनामय जीवन से तो अच्छा है मर जाना ।
रणभेरी बज चुकी वीरवर, पहनो केसरिया बाना ।"[22]

भवानी प्रसाद मिश्र गांधी के कार्य करने की आदत पर 'तुम कागज पर लिखते हो' कविता में कहते हैं –

"दयानिधे, निज दया दिखा कर, एक वार फिर हमें जगा दो ।
एक वार ही न डगमगा दो, ह्रास मिटे अब, फिर विकास हो,
सभी गुणों का स्थिर निवास हो, रुचिर शान्ति का चिर विलास हो,
विश्व-प्रेम में हमें पगा दो ॥"[23]

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी की स्वदेश संगीत नाम की रचना ने तो इस क्षेत्र ही नहीं अपितु पूरे भारतवर्ष में जनक्रांति और राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया । अन्य समकालीन रचनाकारों ने भी देशभक्ति पूर्ण रचनाओं के माध्यम से इस आन्दोलन को सफल बनाने में अपना भरसक योगदान दिया ।

भाषा, किसी भी देष की संस्कृति, एकता और स्वाभिमान का प्रतीक होती है । मैथिलीषरण गुप्त का मत था कि पूरे देश में जाति-धर्म, भाषा-भाषी लोगों के बीच यदि हिन्दी नेतृत्व करें तो यह देश की एकता और अखण्डता के लिए बेहतर होगा ।

"है राष्ट्रभाषा भी अभी तक देश में कोई नहीं,
हम निज विचार जना सकें जिससे परस्पर सब कहीं ।
इस योग्य हिन्दी है तदपि अब तक न निज पद पा सकी,
भाषा बिना भावैकता अब तक न हममें आ सकी ॥"[24]

'झाँसी की रानी' वाली सुभद्रा कुमारी चौहान को हम बखूबी जानते हैं । तन-मन में ऊर्जा भर देने वाली यह कविता इनकी ख्याति का आधार है-

"सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी ।
बूढ़े भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी ।
गुमी हुई आजादी की कीमत सब ने पहचानी थी ।
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी ।
खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी ।"[25]

"राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की प्रतिष्ठा हो, राष्ट्र की स्वतंत्रता हो या समाज की संकीर्ण बंधनों से मुक्ति हो ।"[26] महात्मा गाँधी सत्येश्वर की शरण गये । इसलिये सत्याग्रह के संदर्भ में गांधी जी ने बारंबार कहा कि मैं स्वयं को ईश्वर के हाथों में पाता हूँ ।

"कष्ट बढ़े, दुर्बल देही था, असहनीय व्यवहार हुआ,
कैदी शय्या पर पड़ने को, गिर-पड़ कर लाचार हुआ,
सेनापति ने कहा, पताके ! अभी कौन बलिहार हुआ ?
हुंकारा हरदेव, प्राण मैं –दूँगा, लो तैयार हुआ ।"[27]

गीतों और कविताओं के द्वारा कवि ने कहा कि हमें पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के मोहजाल में न आकर अपनी गौरवमयी इतिहास से सीखने की जरूरत है ।

''आओ, मिले सब देश-बान्धव हार बनकर देश के,
साधक बनें सब प्रेम से सुख-शान्तिमय उद्देश्य के ।
क्या साम्प्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो !
बनती नहीं क्या एक माला विविध सुमनों की कहो ।।''[28]

कवि मैथिलीषरण गुप्त ने अपनी कविताओं के माध्यम से देश की गुलामी से पीड़ित जनता को यह याद दिलाते हुए उनके दर्द को कम कर रहे हैं -

''बलिहारी तेरा वरवेश,
मेरे भारत, मेरे देश !''[29]

हर किसी को अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ इस आंदोलन में अपनी आहुति देनी होगी ।

''अरे भारत ! उठ, आँखे खोल,
उड़कर यंत्रों से, खगोल में घूम रहा भूगोल !
पल पल है अनमोल ।
अरे भारत! उठ, आँखे खोल ।।''[30]

39 वें हिंदी साहित्य सम्मेलन में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी जी ने आन्दोलन के प्रचार-प्रसार के लिए हिंदी भाषा के विषय में कहा कि- ''मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हों मैं उससे उसी तरह चिपका रहूँगा जिस तरह अपनी माँ की छाती से वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है ।'' स्वतंत्रता से पूर्व समस्त भारतीय भाषाओं के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर समान रूप से सुनाई देते हैं- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी ने कहा था कि- ''निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।'' इसी मंत्र को लेकर सुभद्रा कुमारी चौहान ने जनमानस में निज भाषा के प्रति चेतना जगाई ।[31] ''भाषा ही वह शक्ति है जो पूरे राष्ट्र को एक सूत्र में बांधती है ।''[32]

सुभद्रा जी देश की आन में मर मिटने के लिए सदैव तत्पर रहीं । असहयोग आंदोलन में भाग लेने वाली देश की सर्वप्रथम महिला थीं । स्वातंत्र्य संग्राम में जूझने के कारण वे सचमुच विद्रोहिणी बन गयीं थीं ।

कवि मैथिलीषरण गुप्त के अलावा अन्य कवियों ने अपनी रचना के माध्यम से धर्म-प्रचार, अंग्रेजों, मुसलमानों पारसियों और इसाइयों के प्रति हिन्दु धर्मावलंबियों की सहिष्णुता को दर्शाया है । यद्यपि यह रचना धर्म एवं जाति प्रधान है तथापि राष्ट्रीयता की जयघोष का अनुभव भी कराती है । गुरुकुल एक राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत काव्य है, जो सभी संप्रदायों में मातृत्व भाव उत्पन्न करने की चेष्टा करना चाहता है । गुप्त जी गाँधीवाद से काफ़ी प्रभावित रहे हैं, जिस कारण इस काव्य के माध्यम से वे भारतीयों को अहिंसा का सहारा लेते हुए परतंत्रता की श्रृंखलाओं को तोड़ देने का संदेश देते हैं ।

देशप्रेम की भावना जगाने के लिए जयशंकर प्रसाद ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', सुमित्रानंदन पंत ने 'ज्योति भूमि, जय भारत देश', निराला ने भारती! जय विजय करे । स्वर्णषस्य कमल धरे', कामता प्रसाद ने 'प्राण क्या हैं देश के लिए, देश खोकर जो जिए तो क्या जिए', इकबाल ने 'सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा' का जयगान किया ।

''वंदे मातरम' गीत आजादी के परवानों को प्रेरित करता है।''[34] 'वंदे मातरम्' आज हमारा राष्ट्रीय गीत है, जिसकी श्रद्धा, भक्ति व स्वाभिमान की प्रेरणा से लाखों युवक हंसते-हंसते देश की खातिर फांसी के फंदे पर झूल गए । वहीं हमारे राष्ट्रगान 'जन गण मन अधिनायक' के रचयिता रवींद्र नाथ ठाकुर का योगदान अद्वितीय व अविस्मरणीय है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. तारा चंद्र - भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहस, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय, नई दिल्ली-11007, 1969, पृ. 32
2. मैथिलीषरण गुप्त - भारत भारती के अतीत खंड का मंगलाचरण, साहित्य सदन प्रकाशन, झांसी-284003, 2014, पृ. 45
3. कृष्णदत्त पालीवाल मातृभूमि कविता, मैथिलीषरण गुप्त ग्रंथावली-1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110007, संस्करण, 2008, पृ. 191
4. सुधीर सक्सेना ऐसे आये गाँधी, प्रभात प्रकाशन ग्वालियर-474001, प्रथम संस्करण, 1999, पृ. 40
5. कृष्णदत्त पालीवाल - आर्य कविता, मैथिलीषरण गुप्त ग्रंथावली-1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण-2008, पृ. 191
6. नर्मदा प्रसाद - बुंदेलखंड की लोक संस्कृति, प्रकाषक स्वराज संस्थान, संस्कृति विभाग, भोपाल-462002, म.प्र., 1997, पृ. 57
7. प्रतिपाल दीवान सिंह - बुंदेलखंड का इतिहास, भाग-1 प्रकाशक स्वराज संस्थान संस्कृति विभाग, भोपाल-462002, म.प्र., 1985, पृ. 23
8. संपादन श्रीराम तिवारी, घनष्याम सक्सेना - जंगल सत्य और जंगल सत्याग्रह, तपन प्रकाशन, झांसी-284003, प्रथम संस्करण-2008
9. सुधीर सक्सेना - 'ऐसे आये गाँधी', पृ. 42
10. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' - विप्लव गान, कुंकुम संग्रह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2016
11. सुधीर सक्सेना - 'ऐसे आये गांधी', पृ. 52
12. पं. श्याम नारायण पांडेय - 'हल्दी घाटी' इंडियन प्रेस पब्लिकेशंस प्रा.लि., इलाहाबाद-211002, प्रकाशन वर्ष 2011, पृ. 46-47
13. नर्मदा प्रसाद - बुंदेलखंड की लोक संस्कृति, पृ. 63

14. डॉ. सुषमा दुबे - स्वातंत्र्योतर हिन्दी कविता की विभिन्न प्रवृतियाँ, पाथेय प्रकाशन, जबलपुर, 2002, पृ. 46
15. वही, 47
16. वही, 49
17. वही, 58
18. वही, 59
19. वही, 69
20. केदारनाथ अग्रवाल - कहे केदार खरी खरी, अजित पुष्कल प्रकाशन, मथुरा-281006, 2004 पृ. 60
21. कृष्णदत्त पालीवाल मैथिलीषरण गुप्त ग्रंथावली, पृ. 23
22. सुधीर सक्सेना - 'ऐसे आये गाँधी', पृ. 65
23. नर्मदा प्रसाद - 'बुंदेलखंड की लोक संस्कृति', पृ. 66
24. मैथिलीषरण गुप्त - 'भारत भारती', 2014, पृ. 9
25. सुभद्रा कुमारी चौहान - झांसी की रानी कविता, मुकुल कविता संग्रह, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद-211002
26. हंसा व्यास - 'मध्य प्रदेश में स्वतंत्रता संग्राम', प्रकाशक - मध्यप्रदेश ग्रंथ अकादमी, भोपाल-462003, तृतीय संस्करण, 2018
27. नर्मदा प्रसाद - 'बुंदेलखंड की लोक संस्कृति', पृ. 68
28. वही, पृ. 68
29. कृष्णदत्त पालीवाल - 'मैथिलीषरण गुप्त ग्रंथावली', पृ. 27
30. मैथिलीषरण गुप्त - 'भारत भारती', पृ. 31
31. नर्मदा प्रसाद - 'बुंदेलखंड की लोक संस्कृति', पृ. 72
32. 'हिंदी के विकास में महात्मा गाँधी का योगदान' - डॉ. मीना गौड़, साहित्य भवन पब्लिकेशंस, आगरा-223007, 2011, पृ. 32
33. डॉ. सुषमा दुबे - 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता', पृ. 79
34. डॉ. नगेन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद-211002, 2016 पृ. 478

द्विवेदी युग : देशभक्ति का अर्थ

डॉ. पूनम

भारतेन्दु युगीन जागरण के संदर्भ द्विवेदी युग में आकर विस्तार पाया । बीसवीं शताब्दी की दो दशकों की समयावधि को 'द्विवेदी युग' की संज्ञा दी गई ! यह नामकरण आचार्य महावीर द्विवेदी के नाम पर हुआ है । इस युग के केंद्रीय व्यक्तित्व महावीर प्रसाद द्विवेदी थे । उन्होंने 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से नवजागरण की चेतना को विशाल जनसमूह तक प्रसारित किया । महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादन के माध्यम से पराधीन भारत को वाणी दी । द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन 1903 से लेकर 1920 तक किया । प्रस्तुत लेख में द्विवेदी जी और उनके सहयोगी रचनाकारों ने किस प्रकार जनभाषा खड़ी बोली हिंदी में साहित्य कर्म कर गुलाम भारत में नवीन ज्ञान-विज्ञान, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जागरण के विविध पक्षों को उज्ज्वल अभिव्यक्ति दी इन बातों की चर्चा की गई है ।

द्विवेदी युग में किसानों की चिंता एवं देश की बदहाल आर्थिक स्थिति का जीवंत रूप सखाराम गणेश देउस्कर ने 'देशेर कथा' नामक पुस्तक में प्रस्तुत किया है । इसका हिंदी अनुवाद बाबूराव विष्णु पराड़कर ने 'देश की बात' नाम से किया । इस पुस्तक में 'किसानों का सर्वनाश', 'देश की अवस्था', 'कारीगरों का सर्वनाश', 'स्वदेशी आंदोलन', 'अंग्रेजी शासन के गुण-दोष' आदि अध्याय में उन्होंने देश की यथार्थ रूप सामने रखा है ।

जैसे-जैसे अंग्रेजों का कब्जा भारत के विस्तृत भू-भाग में होता गया और लगान की दर बढ़ने लगी । वैसे -वैसे अकाल ने भयानक रूप धारण किया । इस युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त दुर्भिक्ष की भयावहता प्रकट करते हुए लिखते हैं-

> ''दुर्भिक्ष मानो देह धरके घूमता सब ओर है
> हा ! अन्न ! हा ! हा ! अन्न का रव गूँजता घनघोर है ।
> सब विश्व में सो वर्ष में, रण में मरे जितने हरे
> जन चौगुने उनसे यहाँ दस वर्ष में भूखों मरे ।''[1]

भारतेंदु युग के रचनाकारों ने भी अकाल की हृदय विदारक स्थिति का सजीव चित्रण किया है । इस युग में आकर यह चित्रण और मुखर होता है । द्विवेदी जी इन सब स्थितियों के लिए विदेशी साम्राज्यवाद को दोष देते हैं । उन्होंने किसानों की समस्या और उनकी जिंदगी के तमाम पहलुओं पर विचार किया । द्विवेदी जी किसानों के संगठन की बात कहते हैं । जमीन पर किसानों के अधिकार को लेकर भी संघर्ष करते हैं । देश-भक्ति का अर्थ 'किसानों की सेवा' को बताते हैं । उन्होंने तिलक के स्वर से स्वर मिलाते हुए उदारपंथी सुधारवादियों की कड़ी आलोचना की । द्विवेदी जी के विचारों पर महाराष्ट्र के नवजागरण का प्रभाव है । द्विवेदी जी द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित उनके लेख 'देश की बात' में देशभक्ति का वास्तविक अर्थ बताते हुए उन्होंने लिखा- ''आजकल देशभक्ति, देशहित और देश प्रेम आदि शब्द बहुत सुनाई पड़ते हैं । स्वदेश, स्वदेश प्रेम और स्वदेश हितैषणा के गीत गाए जाते हैं । पुस्तकें लिखी जाती है, अखबारों में कविताएं प्रकाशित होती है । परंतु इस बात का

विचार बहुत कम लोग करते होंगे कि हमारी भक्ति और हमारे प्रेम के आस्पद देश का अर्थ क्या है। देश कहते किसे हैं ? किसकी भक्ति करने-किसका हित साधन करने से मनुष्य देशभक्त कहा जा सकता है ? नगर, कस्बे गांव, पेड़, पहाड़, जंगल नदी या तालाब, मकान, मंदिर, मस्जिद आदि का समूह ही देश नहीं। यह सब देश के अंतर्गत हैं अवश्य पर 'देश' के साथ जिस 'भक्ति' का ग्रंथिबंधन हुआ है उस भक्ति का संबंध एकमात्र इनमें से नहीं है। इस भक्ति और हित का संबंध देश में रहने वालों से है पेड़, पहाड़, नगर और कस्बे आदि से नहीं। अच्छा तो देश में रहते कौन हैं ? देश में रहते हैं 70 फ़ीसदी कृषक-किसान, खेतीहर, 11 फ़ीसदी उद्योग धंधा करने वाले, 6 फ़ीसदी खनिज, व्यापार और महाजनी करने वाले। बाकी 13 फ़ीसदी में आपके वकील, डॉक्टर, बैरिस्टर, मास्टर, डिप्टी कलेक्टर आदि है। इस दशा में यदि देशभक्ति का अर्थ देश में रहने वालों पर भक्ति करने से है तो देशवासियों में अधिक संख्या किसानों की है।"[2]

इसी लेख में आगे किसान प्रश्नों को प्रखर ढंग से उठाते हुए द्विवेदी जी राष्ट्रवादी नेताओं के आमने-सामने खड़े हो जाते हैं- "हर साल जो यह कांग्रेस होती है उसने आज तक किसानों पर अपनी कितनी भक्ति प्रकट की है ? उसके पास किये गए प्रस्ताव में कितने प्रस्ताव ऐसे हैं जिनसे किसानों को लाभ पहुंचने की संभावना है ? ...यदि ये 70 फ़ीसदी कृषक दुर्भिक्ष और अत्याचार से पीड़ित होकर नष्ट हो जाये तो फिर देश की क्या दशा हो ? तो भी क्या यह देश 'देश' रह जाएगा। जब देश ही उत्स जाएगा तो सैकड़ों सुरेंद्र, सैकड़ों मालवीय और सैकड़ों गोखले की स्पीच से भी वह अपनी पूर्वावस्था को न प्राप्त होगा।"[3]

देश का अर्थ किसान की सेवा और देश का मूल आधार किसानों का श्रम है। यदि लगातार दुर्भिक्ष पड़ते रहे और किसान विरोधी नीतियाँ जारी रही तो देश खत्म हो जाएगा। द्विवेदी जी इन विचारों को अलग-अलग बिंदुओं से रेखांकित करते हैं। उन्होंने अपने लेखों में उदारवादी नीतियों का विरोध किया है। उनके विरोध के मूल कारणों में से एक किसानों को लेकर उदारपंथियों में प्रश्नाकुलता की कमी है। द्विवेदी जी देश के केंद्र में किसान को रखते हैं। उन्होंने किसानों के नजरिए से देश की व्याख्या की। उनके विचारों का रचनात्मक रूप प्रेमचंद के 'रंगभूमि' और 'गोदान' जैसे उपन्यासों में दिखाई पड़ता है।

द्विवेदी जी द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका का लेख कोरी भावुकता में नहीं वरन् यथार्थ की भूमि पर लिखे गए हैं। उन्होंने अपने प्रसिद्ध लेख 'देश की बात' में किसान द्वारा दिए गए लगान से संपूर्ण देश के शासन तंत्र के गतिशील होने की बात कहते हैं। उनके विचार किसान के गौरव से लैस है। उन्होंने नेताओं के प्रयत्न को द्वितीयक चीजें कहा। कृषकों द्वारा दिए जाने वाले लगान के विषय में उनके विचार हैं- "इसलिए कि यदि कृषकों से लगान मिलना बंद हो जाए तो बड़े-बड़े राजा महाराजाओं और ताल्लुकेदारों की दुर्गति का ठिकाना ना रहे, सरकार के शासन चक्र का चलना बंद हो जाएं, वकीलों और बैरिस्टरों के गाड़ी घोड़े बिक जाये और व्यापारियों तथा महाजनों को शीघ्र ही टाट उलटना पड़े।"[4]

जमींदारों द्वारा किसानों के प्रति की जाने वाली निष्ठुरता के बारे में द्विवेदी जी का कथन है– ''काश्तकार निरन्न होकर मर जाएं कोई परवाह नहीं । उनके बैल बिक जाएं कुछ परवा नहीं । वे देश छोड़कर फिजी, जमाइका और ट्रिनिडाड को चले जाएं कुछ परवा नहीं । उन्हें रुपए से काम । प्रजा के प्रतिनिधि बतावें इनके लिए उन्होंने क्या किया ?''[5] द्विवेदी जी के ये प्रश्न देशवासियों को जागृत करने के लिए है । देश–दशा की यथार्थ को उजागर कर उन्होंने साहित्य को सामाजिक उत्तरदायित्व बोध से संपन्न किया । किसानों के पलायन का कारण क्या है– जमींदारों की निष्ठुरता और लालच ! इसी भावबोध को मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान' कविता में देखा जा सकता है । इस कविता में गुप्त जी ने भारतीय किसानों के फिजी पलायन का मार्मिक चित्रण किया है । भारत में अंग्रेजों ने यहाँ की कृषि के साथ व्यापार को भी तहस–नहस कर दिया । भारत के व्यापार का नाश करने के लिए कई नीतियां अपनाई गई ।

फलस्वरुप भारत का उद्योगीकरण अवरुद्ध हो गया । द्विवेदी जी ने अंग्रेजों की स्वार्थी एवं असंतुलित व्यापार नीति की निंदा की– ''शुरू शुरू में इंगलिस्तान की गवर्नमेंट ने यहां की कपड़े की रफ़्तनी को, विलायत में उस पर कड़ा महसूल लगाकर, बिल्कुल ही रोक दिया, यहां का व्यापार, यहां का कला कौशल मारा गया । अब जब उसके पुनर्जीवन की ओर लोगों का ध्यान गया है तब यथेष्ट कर लगाकर विलायती वस्तुओं की आमदनी रोकी नहीं जाती । यदि किसी विलायती चीज पर कुछ महसूल है भी तो इतना कम है कि ना होने के बराबर है ।''[6]

भारत के दोतरफ़ा शोषण की ओर संकेत करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा द्विवेदी जी की कथन की व्याख्या करते हैं– ''जमीन पर इजारे के बाद अंग्रेजों के आमदनी का ज़रिया है, विलायती माल की बिक्री । ...किसान लगान देना बंद कर दे तो अंग्रेजों की जमींदारी खत्म हो जाएं, वैसे ही भारत में यहीं का माल बिकने लगे तो अंग्रेजों के कारखाने बंद हो जाएं । भारत का शोषण दो तरह से हो रहा है । पहला तरीका जमींदारी का है जो मुख्य है दूसरा तरीका पूंजीवाद का है, यहां विलायती माल बेचने का है, जो गौण है । लगान बंदी और स्वदेशी आंदोलन दोनों को मिला दिया जाये, एक तरफ किसान जमीन के लिए लड़े, दूसरी तरफ सारी भारतीय जनता विलायती माल का बहिष्कार करे, तो साम्राज्यवाद की जड़ पर कुठाराघात हो । इसलिए जो आंदोलन गौण था, उसे उन्होंने मुख्य बनाया और जो मुख्य था उसे भरसक रोके रहे ।''[7]

द्विवेदी जी जमींदारी और पूंजीवाद दोनों के प्रबल विरोधी हैं । देश की दुर्दशा के सुधार के लिए उन्होंने पहले लगानबंदी की बात कही । उनका विचार था कि किसानों का शोषण रुकने पर राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा मिलेगी । उन्होंने 'संपत्तिशास्त्र' के माध्यम से आर्थिक चिंतन को राजनीतिक चिंतन से जोड़ दिया ।

देश के औद्योगिक विकास को लेकर द्विवेदी जी उद्योग धंधों के विकास के पक्षधर हैं । उन्होंने कहा– ''विद्या और विज्ञान की वृद्धि के साथ–साथ नए यंत्र बनते चले जाते हैं । उनके उपयोग से, श्रम की उत्पादकता की तरह, पूंजी की भी उत्पादकता बढ़ती है । कलों

की बराबरी हाथ नहीं कर सकते । जिस देश में कलों का अधिक प्रसार है उस देश की पूंजी की उत्पादक शक्ति बहुत बढ़ जाती है ।"[8] द्विवेदी जी ने अपने लेखों में उद्योगीकरण की बात विभिन्न प्रसंगों में करते हैं । भारत के पूंजीवादी विकास के लिए विदेशी पूंजी के स्थान पर देशी पूंजी का समर्थन करते हैं । भारत के औद्योगिकरण के रास्ते में सबसे बड़ी बाधा ब्रिटिश शासन को मानते हुए पुरजोर विरोध करते हैं । इन सबके मूल में देश के स्वातंत्र्य बोध से सम्पन्न जागृति की भावना है ।

द्विवेदी जी किसान के साथ मजदूर वर्ग की समस्याओं एवं संभावनाओं को अभिव्यक्त करने वाले रचनाकार हैं । 'सरस्वती' में प्रकाशित अपने प्रसिद्ध लेख 'किसानों का संगठन' में उन्होंने लिखा है– "उधर रूस को देखिए ! वह बहुत बड़ा देश है ! कई वर्ष पूर्व वहां के जार नामधारी राजेश्वर का आतंक वहीं नहीं भूमंडल के अन्यान्य देशों में भी छाया हुआ था । उन्हीं सर्वशक्तिमान सत्ताधीश ही का नहीं, उनके वंश तक का नामोनिशान मिटाकर रूस के किसान और सैनिक अब स्वयं ही वहां का शासन कर रहे हैं । यह सारी करामात संगठन की है । वहाँ के किसान और सैनिक आपस में गठ गए । उन्होंने कहा जो जुल्म हम पर हो रहे हैं उनका एकमात्र कारण यहां की बिगड़ी हुई शासन व्यवस्था है । उसे तोड़ देना चाहिए । यह निश्चय करके उन्होंने अपना ऐसा संगठन किया जिसकी बदौलत उनका साध्य सिद्ध हो गया ।"[9]

द्विवेदी जी के विचार स्पष्ट हैं उन्होंने भारत की आजादी के लिए किसान और मजदूर में नई संभावना तलाशी । रूस का जिक्र आततायी जार शाही के समाप्ति के संदर्भ में किया । भारत में यह स्थिति ब्रिटिश शाही से मुक्ति का है । किसान और मजदूर को द्विवेदी जी भारतीय स्वाधीनता संघर्ष के आधार स्तंभ मानते थे । 'सरस्वती' पत्रिका में माधव राव सप्रे का एक प्रसिद्ध लेख छपा 'हड़ताल' नाम से । उन्होंने इसमें लिखा– "जब किसी देश में संपत्ति थोड़े से पूंजी वालों के हाथ में आ जाती है और अन्य लोगों को मजदूरी से अपना निर्वाह करना पड़ता है । तब पूंजी वाले अपने व्यापार का नफा स्वयं ही ले लेते हैं और जिन लोगों के परिश्रम से यह संपत्ति उत्पन्न की जाती है उनको भी भरपेट खाने को नहीं देते । ऐसी दशा में श्रम करने वाले मजदूरों को हड़ताल करनी पड़ती है ।"[10] द्विवेदी जी किसान और मजदूर के जीवन यथार्थ को देशवासियों के समक्ष रखता है । उन्होंने जिस 'स्वराज' की परिकल्पना की उसमें किसान और मजदूर का आर्थिक शोषण नहीं वरन् कल्याण का भाव नहीं था । हर स्तर पर उन्होंने सामंतवाद और साम्राज्यवाद के हर रूप के विरुद्ध आवाज बुलंद की । द्विवेदी युग का साहित्य जनवादी आकांक्षाओं का मूर्त रूप है ।

द्विवेदी जी देशी उद्योग धंधों के विकास के पक्ष में थे । 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध को भारत में जब उद्योग–धंधों का विकास शुरू हुआ । द्विवेदी जी उसका स्वागत करते हैं । स्वदेशी की भावना की अभिव्यक्ति इस दौर की महत्वपूर्ण विशेषता थी । महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार' स्वदेशी भावना की सुंदर अभिव्यक्ति है–

"विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं ?
वृथा धन देश का क्यों दे रहे हैं ?

न सूझे है अरे भारत भिखारी ।
गई है हाय तेरी बुद्धि मारी ।
हजारों लोग भूखों मर रहे हैं ।
पड़े वे आज या कल कर रहे हैं ।
इधर तो मंजू मलमल ढूंढता है ।
नहीं इससे और बढ़कर मूढ़ता है ।''[11]

स्वदेशी आंदोलन के समर्थन में पंडित नाथूराम शंकर शर्मा लिखते हैं–

''काम स्वदेशी ना चलाते ठग लालच के मारे !
माल विदेशी बेच रहे हैं खोले कपट पिटारे
दे देकर अन्नादि उचक्के परदेसी उपकार
ले ले मोटर, बाच, खिलौने झींख झींख मार ।''[12]

''द्विवेदी युग में 'स्वदेशी कुंडल' शीर्षक से राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' ने बावन कुंडलियों के काव्य में स्वदेशी आंदोलन का समर्थन किया । भारत की आर्थिक व्यवस्था का उद्घाटन पंडित माधव प्रसाद मिश्र ने 'शिल्प और वाणिज्य' तथा 'भलाई और बुराई' निबंधों में किया । श्याम सुंदर पांडे ने 'हमारी शिल्प कला का ह्रास' (मर्यादा, अप्रैल 1918) परमेश्वर प्रसाद वर्मा ने 'शिल्प कला तथा राष्ट्रीय धन' (इंदु दिसंबर 1918) और पारसनाथ त्रिपाठी ने 'भारत की अपनी शिल्प पद्धति' (इंदु 1913) आदि अनेक उल्लेखनीय निबंधों की रचना की थी जो स्वदेशी का समर्थन करते हैं ।''[13] गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने 'स्वदेशी होली' नामक कविता में स्वदेशी भावबोध को धूमधाम से रखा है–

चहक रहे हैं पिक चारों ओर कानन में, या कि देश–युवक स्वदेशी गान गाते हैं ।

''घर–घर, ग्राम–ग्राम होली जलती है या कि
बसन विदेशी धार–धार हुए जाते हैं ॥
फाग खेलने के लिए मण्डली जुड़ी है या कि
साज स्वत्व समर के सूरमा सजाते हैं ।
भर भर झोलियाँ अबीर हैं उड़ाते या कि,
दासता की धूल धूमधाम से उड़ाते हैं ॥''[14]

इस युग के कवियों में राष्ट्रीय भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति मिलती है । मैथिलीशरण गुप्त (1886–1964) की कविताओं में राष्ट्रीय भावना चरमोत्कर्ष तक पहुंची । गुप्त जी की कविताओं से खड़ी बोली हिंदी काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई । 'भारत भारती' उक्त दोनों बातों का रचनात्मक साक्ष्य है । 'भारत भारती' में उन्होंने देश के अतीत, वर्तमान का चित्र खींचा और भविष्य की सुखद कामना की । पूरी रचना नवजागरण की चेतना से संपन्न है । 'सरस्वती' के लेखों के साथ मिलाकर 'भारत भारती' को पढने पर एक नया अर्थ देती है । ऐसा लगता है मानो द्विवेदी जी के गद्य रूप को गुप्त जी काव्य में कह रहे हैं । दोनों साहित्यकारों का मूल लक्ष्य भारत की जागृति है ।

गुप्त जी 'भारत भारती' की भूमिका में चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं- ''यह बात मानी हुई है कि भारत के पूर्व और वर्तमान दशा में एक बड़ा भारी अंतर है । अंतर ना कह कर इसे विपरीत कहना चाहिए ! एक वह समय था कि यह देश विद्या, कला-कौशल और सभ्यता में संसार का शिरोमणि था और एक यह समय है कि नहीं बातों का इसमें शोचनीय अभाव हो गया है । जो आर्य जाति कभी सारे संसार को शिक्षा देती थी वहीं आज पद- पद पर पराया मुँह ताक रही है ।''[15]

आगे के कथन में इस शोचनीय स्थिति से उबरने की रचनात्मक दिशाएं गुप्त जी बताते चलते है - ''संसार में ऐसा काम नहीं जो सचमुच उद्योग से सिद्ध ना हो सके परंतु उद्योग के लिए उत्साह की आवश्यकता है । बिना उत्साह के उद्योग नहीं हो सकता । इसी उत्साह को इसी मानसिक वेग को उत्तेजित करने के लिए कविता एक उत्तम साधन है ।''[16]

गुप्तजी नवजागरण के मूल्यों में कर्म को विशेष महत्व देते हैं । 'कर्मयोग' की बात तिलक ने भी कही थी । महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अकर्मण्यता को ही सारी समस्याओं की जड़ माना है । द्विवेदी युग तिलक की राजनीतिक चेतना से संदर्भित है । हालांकि गुप्त जी पर गांधीवाद का प्रभाव है । 'भारत भारती' में तिलक के प्रभाव का पता नामवर सिंह के लेख 'भारत भारती' और 'राष्ट्रीय नवजागरण' से चलता है । उन्होंने बताया कि- ''कुछ ही दिनों बाद रामनवमी को एक और पत्र लिखा और राय साहब को सूचित किया- मेरी भी राय है कि तिलक रहे, पर विवश हूँ । तिलक का बहुत 'लोकमान्य' पद से होता है, उसे रखूंगा । ना सांप जाएगा ना लाठी टूटेगी । वर्तमान भारत भारती में वह पद इस प्रकार है- ''तो जन्मते हैं कुछ दृढ़ व्रत लोकमान्य अभी यहां । दृढ़ व्रत 'लोकमान्य' को भारत-भारती से न हटाकर कवि मैथिलीशरण ने यह साबित कर दिया है कि वह भी 'दृढ़व्रत' हैं ।''[17]

भारत भारती कर्म का संदेश देती है । आत्मा मीमांसा के लिए स्पेस प्रदान करती है । कर्म की यह अवधारणा आचार्य शुक्ल की आलोचना में 'कर्म-सौंदर्य' बनकर निखरता है । जिसकी केंद्रीय चिंतन 'लोकमंगल' है । भारत भारती के प्रकाशन के अवसर पर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा था- ''यह सोते हुओं को जगाने वाला, भूलें हुए को ठीक राह पर लाने उत्पन्न वाला है, निरुद्योगियों को उद्योगशील बनाने वाला है । उदासीनों के हृदय में उत्तेजना उत्पन्न करने वाला है । यह स्वदेश पर प्रेम कर सकता है...।''[18]

'भारत भारती' काव्य नवजागरण की गीता है । गुप्त जी 'राष्ट्रकवि' इस कृति के कारण कहलाएं । 'भारत भारती' राष्ट्रीयता की वाणी है-

''विद्या, कला, कौशल्य में सबका अटल अनुराग हो
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य अद्य का त्याग हो ।
सुख और दुख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो
अन्तः करण में गूंजता राष्ट्रीयता का राग हो ।''[19]

द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय जागृति के प्रमुख स्वर रामनरेश त्रिपाठी (1869-1962) थे । उन्होंने देश के सामाजिक-राजनीतिक वातावरण को रचना का आधार बनाया ! व्यक्तिगत प्रेम की

भावना और स्वदेश प्रेम में त्रिपाठी जी ने देशप्रेम को प्रधान माना । यह प्रेम के विस्तार का नया रूप था । शुक्ल जी के शब्दों में– ''देशभक्ति को रसात्मक रूप त्रिपाठी जी के द्वारा प्राप्त हुआ ।''[20]

उन्होंने स्वाधीनता संग्राम में संघर्षरत भारतीय जनता की नैतिकता, त्याग एवं बलिदान भावना को शब्द दिए ।

'स्वतंत्रता' शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा–

''एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है ।
पलभर की भी स्वतंत्रता सौ स्वर्गों से उत्तम है ।
जब तक जग में मान तुम्हारा तब तक जीवन धारो ।
जब तक जीवन है शरीर में तब तक धर्म न हारो ?
जब तक धर्म तभी तक सुख है, सुख में कर्म न भूलो ।
कर्म–भूमि में न्याय–मार्ग पर छाया बनकर फूलो ।
जहाँ स्वतंत्र विचार न बदलें मन से आकर मुख में ।
बने न बाधक शक्तिमान जन जहाँ निबल के सुख में ?
निज उन्नति का जहाँ सभी जन को समान अवसर हो ।
शांतिदायिनी निशा और आनंद–भरा वासर हो ।
उसी सुखी स्वाधीन देश में मित्रो ! जीवन धारो ।
अपने चारु चरित से जग में प्राप्त करो फल चारो ?''[21]

द्विवेदी युगीन कविता का धर्म राष्ट्र धर्म था । यह धर्म भारत की आजादी थी । स्वातंत्र्य भाव इस युग का सबसे बड़ा स्वप्न था । वर्ष 1906 ई. में 'सरस्वती' पत्रिका में द्विवेदी जी एक कविता प्रकाशित हुई थी– 'कवि और स्वतंत्रता' ! नवजागरण के केंद्रीय मूल्य स्वतंत्रता को द्विवेदी जी ने हृदय और बुद्धि के समन्वय से सामने रखा–

कभी प्रश्न करता है :

हे स्वतंत्रते । तुम्हारा जन्म कहां हुआ है ?
शूर देशहित तस्ते जहां
प्राण, मेरा जन्म है वहाँ ।
तुम्हारी शक्ति का मूल कहां है ?

स्वतंत्रता इसका यह उत्तर देती है कि–

प्रजा पीड़ना होती जहाँ, शक्ति मूल मम रहता वहाँ, अर्थात् स्वतंत्रता की भावनाओं को जनता के उत्पीड़न से बल प्राप्त होता है । कवि की जिज्ञासा शांत नहीं होती । वह इस बार पूछता है–

''तुम निर्भयता पूर्वक स्थाई रूप से कहां रहती हो ? स्वतंत्रता उसके इस प्रश्न का बहुत ही अर्थ पूर्ण उत्तर देती है । वह कहती है कि जिस समाज में भेद और तज्जनित विरोध नहीं होता, मैं निर्भयतापूर्वक स्थायी रूप से वहीं रहती हूं:

जहां न भेद-विरोध-विकास
वहाँ निडर मैं करती वास ।

कवि की अंतिम जिज्ञासा यह होती है-

तुम्हारी कृतार्थता किसमें है ?

स्वतंत्रता उसे बतलाती है कि- 'शांति राज्य जब पाऊंगी, तब कृतार्थ हो जाऊंगी मैं ।'

स्वतंत्रता की भावना सामाजिक-कल्याण के लिए उत्सर्ग की भावना से उत्पन्न होती है । उसे जनता के उत्पीड़न से शक्ति मिलती है । स्थायी रूप से उसकी प्राप्ति अंतर्विरोध रहित समाज में ही संभव है और स्वतंत्रता का लक्ष्य शांति । जिसमें मनुष्य का भौतिक और सांस्कृतिक विकास संभव हो पाता है । इन तमाम बातों से वे परिचित थे ।"[22]

द्विवेदी युग में अनेक राष्ट्रीय कविताएँ लिखी गई । इस दौर ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष को नई दिशा दी । श्रीधर पाठक ने 'भारत वंदना', 'बलि बलि जाऊं', 'देशगीत' । अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'भारत', 'भारत गगन', 'विबोधन', सत्यनारायण 'कविरत्न' ने 'मातृभूमि-महिमा', 'बंदेमातरम', 'स्वतंत्रते', 'श्री तिलक वंदना' रामनरेश त्रिपाठी ने 'स्वदेश गौरव', 'युवकों की रण यात्रा', 'वह देश कौन सा है ?', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने 'झन-झन झनक रही है कड़िया', 'तलवार', 'तकली', 'आजाद हिंद फौज का कड़खा' मैथिलीशरण गुप्त ने 'मातृभूमि', 'भारत संतान', 'उद्बोधन' एवं जगदंबा प्रसाद मिश्र 'हितैषी' ने 'शहीदों की चिताओं पर' पर कविता में लिखा-

"उरूजे कामयाबी पर कभी हिंदोस्ताँ होगा ।
रिहा सैयाद के हाथों से अपना आशियाँ होगा ?
चखाएँगे मज़ा बर्बादी-ए-गुलशन का गुलचीं को ।
बहार आ जाएगी उस दम जब अपना बाग़बाँ होगा ।
ये आए दिन की छेड़ अच्छी नहीं ऐ ख़ंजर-ए-कातिल ।
पता कब फैसला उनके हमारे दरमियाँ होगा ?
जुदा मत हो मेरे पहलू से ऐ दर्दे वतन हरगिज़ ।
न जाने बाद मुर्दन मैं कहाँ औ तू कहाँ होगा ?
वतन के आबरू का पास देखें कौन करता है ।
सुना है आज मकतल में हमारा इम्तहाँ होगा ?
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले ।
वतन पर मरनेवालों का यही बाकी निशाँ होगा ?
कभी वह दिन भी आएगा जब अपना राज देखेंगे ।
जब अपनी ही ज़मीं होगी और अपना आसमाँ होगा ?"[23]

आदि राष्ट्रीय जागरण की रचनाएं रची । द्विवेदी युगीन रचनाकर्म से गुजरना दो अर्थों में विशेष है प्रथम यह जनभाषा हिंदी में अपनी बात रखा । दूसरा द्विवेदी युग में किसान,मजदूर और युवा प्रश्न को भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख स्वर के रूप में अभिव्यक्ति मिली । स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास को अगर द्विवेदी युगीन रचनाकर्म के साथ मिलाकर पढ़ते

हैं तो भारतीय इतिहास के जन सरोकार सम्बन्धी अनेक तथ्य संवेदनशील रूप में सामने आते हैं । इस अर्थ में द्विवेदी युगीन देशभक्ति की चर्चा का स्थायी और शाश्वत मूल्य प्रदान करता है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 83
2. महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रतिनिधि संकलन, संपादक – रामबक्ष, पृ. 79
3. वही, पृ. 79
4. वही, पृ. 79
5. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, रामविलास शर्मा, पृ. 32
6. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, रामविलास शर्मा, पृ. 33
7. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, रामविलास शर्मा, पृ. 34
8. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, रामविलास शर्मा, पृ. 36
9. महावीर प्रसाद द्विवेदी, नंदकिशोर नवल, पृ. 56
10. माधव राव सप्रे, प्रतिनिधि संकलन, संपादक – मैनेजर पांडे, पृ. 156
11. महावीर प्रसाद द्विवेदी रचना संचयन, संपादक – भारत यायावर, पृ. 76
12. हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन की समस्याएं, संपादक – श्याम कश्यप, पृ. 105
13. हिंदी साहित्य का इतिहास लेखन की समस्याएं, संपादक – श्याम कश्यप, पृ. 105–106
14. स्वतंत्रता पुकारती (हिंदी के राष्ट्रीय कविताओं का संकलन) चयन एवं संपादन – नंदकिशोर नवल, पृ. 113
15. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 5
16. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 6
17. नामवर संचयिता, सम्पादक – नन्दकिशोर नवल, पृ. 361
18. महावीर प्रसाद द्विवेदी, नंदकिशोर नवल, पृ. 87
19. भारत भारती, मैथिलीशरण गुप्त, पृ. 164
20. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य

रामधारी सिंह 'दिनकर' के काव्य में राष्ट्रीयता का स्वर

राजेश कुमार राजन (शोधार्थी)

आकाश के 'दिनकर' के साथ धरती के 'दिनकर' का साम्य नाम-मात्र नहीं है । सूर्य की उदयकालीन आभा की मधुरिमा में रजनी की स्वप्निल मादकता के अवसान तथा कर्म-संकुल जीवन के मंगलमय विहान का संदेश दोनों में निहित है । जीवन के प्रति दिनकर का दृष्टिकोण अत्यंत सीधा और सरल है । उसमें जटिलता अथवा आत्मविरोध का कोई स्थान नहीं । आत्म और अनात्म के घात-प्रतिघात से, वैयक्तिक संस्कारों एवं सामाजिक परिस्थितियों के परस्पर प्रभाव से ही व्यक्ति का जीवन-दर्शन बनता है । जागरूक व्यक्ति के मानस में यह पारस्परिक घात-प्रतिघात आजीवन चलता रहता है । दिनकर की चेतना गतिशील है, इसलिए 'अहम' की रक्षा करते हुए भी उन्होंने परिवर्तनशील 'इद्म' का सदा समादर किया और दोनों के समन्वय की चेष्टा की ।

युग की विभीषिकाओं का करुण-चित्रण और क्रांति का दर्पपूर्ण आह्वान यद्यपि दिनकर की मूल वृत्तियाँ नहीं, फिर भी ये काव्योत्कर्ष में बाधक न होकर साधक ही सिद्ध हुई है । कारण स्पष्ट है, कवि को अनुभूति की सबसे बड़ी शक्ति प्राप्त है । शोषितों के प्रति बौद्धिक सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए उसने कलागत ईमानदारी का कभी अपमान नहीं किया । दिनकर ने समाज को, युग को, देश को कल्पना के रंगीन चश्मे के बदले यथार्थ के नग्न नेत्रों से देखा । उन्होंने 'दूध-दूध' की रट लगाने वाले अबोध शिशुओं को श्वानों से भी गई बीती दशा में मरते देखा था । निर्बल को लांछित, अपमानित और पद्दलित होकर निर्लज्जता से जीते देखा । अत्याचार के विरोधियों को बेजबान होकर तिल-तिल कर प्राण-विसर्जन करते देखा और यह सब उन्होंने खुली आँखों से देखा है । कवि भी मनुष्य है । उसमें भी मानवता है और शोषण-अत्याचार देखकर वह भी उबलता है ।

जीवन की अनेक समस्याएँ एक साथ ही दिनकर के सामने उपस्थित हो गई । राजनीतिक दासता का अन्त, आर्थिक वैषम्य का परिहार और मानवता का संहार से परित्राण यह समस्याओं का त्रिकोण है, जिसके समाधान से देश में ही नहीं अपितु संपूर्ण विश्व में नवीन जीवन तथा नई मानवता का उन्मेष होगा । दिनकर में अनुभूतिशील कवि है,वह ठहरता नहीं, ठहर कर सोचता नहीं, मार्ग पर बढ़ता है और उसका मार्ग 'राष्ट्रवाद' का है । राष्ट्रीयता के संदर्भ में कवि दिनकर का स्पष्ट विचार और उनकी स्वीकारोक्ति है- ''रेणुका, हुंकार, सामधेनी और कुरुक्षेत्र, द्वंद्वगीत और बाप इनमें मैंने जो कुछ भी गाया है, आत्मा के जोर से गाया है, कण्ठ फाड़कर गाया है, हृदय चीर कर गाया है ।''[1]

दिनकर की राष्ट्रीय चेतना में जनवाद का स्वर है । जनजीवन के प्रति सजग होने के कारण उनकी कविता में व्यक्तिगत जीवन के सुख-दु:ख की चर्चा नहीं, सामान्य जनता के हर्ष-विषाद को वाणी देने का उद्योग मिलता है । दिनकर की यह जनवादी प्रवृत्ति बौद्धिक आग्रह से नहीं बल्कि जनसामान्य के दु:ख को देखकर संवेदना या सहानुभूति की भावना से मन में उमड़ी है । अंतत: वे मानवतावादी कवि हैं और इसी कारण उनकी 'राष्ट्रीयता' के केंद्र में भी जनता का संघर्ष आह्लादित हुआ है । उनकी राष्ट्रीयता अंत:प्रेरणा का परिणाम है-

"सुलगती नहीं यज्ञ की आग
दिशा धूमिल यजमान अधीर;
पुरोधा कवि कोई यह यहाँ
देश को दे ज्वाला के वीर ।"[2]

दिनकर ने लिखा है- "मैं समय का पुत्र हूँ और समय की धारा के साथ सबसे बड़ा मेरा कार्य यह है कि मैं अपने युग के क्रोध और आक्रोश को, अधीरता और बेचैनी को सबलता के साथ छंदों में बाँधकर सबके सामने उपस्थित कर दूँ ।"[3]

राष्ट्रीयता, सामाजिकता का व्यक्त-सीमित रूप है । इसलिए जब कवि अपने मन की गहराइयों से बाहर निकलकर चारों ओर देखता है और जो देखता है, उससे प्रभावित होता है । उस प्रभाव के कारण जो कहता है उसमें 'राष्ट्रीयता' का भाव स्वमेव आ जाता है । राष्ट्रीयता और उससे मिली सामाजिकता को सफल काव्य के रूप में व्यक्त करने की बुनियादी शर्त कवि की सच्ची आस्था है । यदि ऐसा न हो तो राष्ट्रीयता, सामयिकता की पुकार बनकर रह जाएगी ।

दिनकर मूल रूप से छायावादी संस्कारों के कवि हैं । उनकी प्रेम विषयक रचनाओं को देखने से इस बात की सच्चाई में कोई शक नहीं रहता है । अनुभूतियाँ और भाव दिनकर ने छायावादियों से ग्रहण किया है पर उनकी अभिव्यक्ति की स्पष्टता मैथिलीशरण गुप्त तथा रामनरेश त्रिपाठी से गृहित है । छायावादी कवियों की अनुभूति के राष्ट्रीय तत्व का यदि परीक्षण किया जाए तो दिनकर की राष्ट्रीय चेतना पर उनका प्रभाव है । एक ओर जहाँ उस युग के कवि छायावादी चेतना के साथ सांस्कृतिक आवरण में मंडित कर देशभक्ति की कविताएँ लिख रहे थे तो उसमें आवेग-आवेश ही नहीं एक स्थायी ताप-परिताप दिखता है । उत्तर छायावाद में राष्ट्रीयता का उफान क्रांतिकारी रूप में सामने आया । बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा रामधारी सिंह 'दिनकर' ऐसे ही कवि है । रामधारी सिंह 'दिनकर' की कविता में वैचारिक भावात्मकता और क्रांति का आह्वान एक साथ अंतर्भुक्त है । 'रेणुका' काव्य में जो क्रांति बीज रूप में था, वह 'सामधेनी' में 'वृक्ष' का रूप ले चुका था-

"मही प्रदीप्त है दिशा दिगन्त लाल-लाल है,
देख लो, जवानियों की जल वही मशाल है;
गिर रहे हैं आग में पहाड़ टूट-टूट के,
आसमां से आ रहे हैं,रत्न छूट-छूट के;
उठो, उठो कुरीतियों की राह तुम भी रोक दो,
बढ़ो, बढ़ो कि आग में गुलामियों को झोंक दो,
परंपरा की होलिका जला रही जवानियाँ ।"[4]

दिनकर के व्यक्तित्व निर्माण में तीन तत्वों का हाथ है- भारत की अतीत परम्परा, सामयिक परिस्थितियों की माँग और छायावादी कोमल अनुभूतियाँ । वैसे अधिकांश कवि इन तत्वों से प्रभावित हो सकते हैं किंतु दिनकर इन तत्वों को समग्रता के साथ स्वीकार कर अपने समय की माँग को सामने रखने में सफल हुए । सामान्य दृष्टि से देखें तो स्वतंत्रता-संग्राम के

अंतिम वर्षों में जिस घोर राष्ट्रीयता की आवश्यकता थी वह दिनकर की कविता में स्पष्ट होती आई है ।

दिनकर की काव्य-चेतना वर्तमान की पुकार से सजग होती हुई आगे बढ़ी है । उन्हें शक्ति पर अगाध आस्था है । अहिंसावादी नीति का विरोध दिखता है । उनकी कविताओं में क्रांति-नाद है । 'कुरुक्षेत्र' तथा 'परशुराम की प्रतीक्षा' में अहिंसा को साध्य नहीं माना गया है । राष्ट्र धर्म के पालन तथा राष्ट्रीयता की रक्षा के लिए 'शस्त्र' उठाने के जायज ठहराया गया है । 'हुँकार' में क्रांति का स्वर अधिक व्यापक है । यह भाववादी राष्ट्रीयता है । उसमें चिंतन की संगति की अपेक्षा आवेग और आवेश ही प्रधान है । काल और वातावरण के संदर्भ में दिनकर की राष्ट्रीयता को अधिक व्यापक रूप में समझा जा सकता है । 'रेणुका' में कवि शृंगी नाद फूँककर प्राणों को जागृत करना चाहता है-

> ''दो आदेश फूँक दूँ शृंगी/उठें प्रभाती राग महान
> तीनों काल ध्वनित हों स्वर में/जागें सुप्त भुवन के प्राण ।
> गत विभूति,भावी की आशा/ले युगधर्म पुकार उठे,
> सिंहों की घन-अंध गुहा में/जागृति की हुँकार उठे ।''[5]

दिनकर की राष्ट्रीयता समकालीन भावबोध से संचालित है । यह उग्र राष्ट्रीयता है जिसमें तलवार, रक्त, क्रांति, अग्नि, जल, विष, तूफान जैसे शब्दों का प्रयोग सायस किया गया है । इन शब्दों के प्रयोग से राष्ट्रवाद को भारतीय संस्कृति के पौराणिक मिथकों से जोड़ने में सहायता मिलती है । रामवृक्ष बेनीपुरी ने लिखा है- ''हमारे शांति युग का संपूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में, इस समय दिनकर कर रहा है । क्रांतिवादी को जिन-जिन हृदय मंथनों से गुजरना होता है, दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है ।''[6]

दिनकर की राष्ट्रीयता देश-काल तथा सार्वभौम मूल्यों के रूप में उनके काव्य में है । स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान किसी रचनाकार से उसके संदर्भ में ही रचना की अपेक्षा की जाती है । तत्कालीन भारतीय जनता की दशा तथा मानसिक स्थिति को राष्ट्रीय उद्बोधन के माध्यम से ही व्यक्त तथा संप्रेषित किया जा सकता था । उनको ही व्यक्त तथा संप्रेषित किया जा सकता था । उनकी राष्ट्रीयता युद्ध काल की राष्ट्रीयता है । दिनकर की राष्ट्रीयता आक्रामक दिखती है किंतु यह ध्वंस्यजन्य नहीं है । यहाँ विनाश का नहीं सृजन के गीत गाए गए हैं । जड़ता के दुर्ग को नष्ट करने के लिए अवश्य उनका आह्वान है-

> ''नचे तीव्र गति भूमि कील पर/अट्टाहस कर उठें धराधर,
> उपटे अनल, फटे ज्वालामुख/गरजे उथल-पुथल कर सागर ।
> गिरे दुर्ग जड़ता का, ऐसा प्रलय बुलो प्रलयंकर/नाचो, हे नाचो, नटवर ।''[7]

दिनकर का मानना था कि निवृत्ति-मूलक अथवा कोमल मधुर भावनाओं का पोषण करने वाले दर्शन से आज हमारे राष्ट्र की समस्या नहीं सुलझ सकती । आध्यात्मिकता प्रधान राष्ट्र का तेज नष्ट हो जाता है । पराक्रम, पुरुषार्थ और सक्रियता अपनाए बिना केवल विनय और अहिंसा से राष्ट्र का निर्माण नहीं होता है ।

"उपशम को ही जाति धर्म कहती हैं,
शम, दम, विराग को श्रेष्ठ कर्म कहती है

दो उन्हें राम, तो मात्र नाम वे लेंगी,
विक्रमी शरासन से न काम वे लेंगी ।"[8]

समय की माँग को न पहचानकर जीवन के उदात्त गुणों और मानवीय मूल्यों का झंडा उठाकर जनता का उत्साह ठंडा करने वालों के प्रति दिनकर कटु हैं-

"गीता में जो त्रिपिटक निकाय पढ़ते हैं,
तलवार गला कर जो तकली गढ़ते हैं;

सारी वसुंधरा में गुरुपद पाने को,
प्यासी धरती के लिए अमृत लाने को;
जो संत सीधे पाताल चले हैं
(अच्छे हैं अब पहले भी बहुत भले हैं ।)"[9]

'कुरुक्षेत्र' दिनकर के राष्ट्रवाद का एक नया आयाम है । यह हिंदी का प्रथम युद्ध काव्य है । यहाँ दिनकर एक नई दृष्टि के साथ आए हैं । वर्तमान समस्या के शमन के लिए गांधीवाद में आस्था के बावजूद दिनकर आग और अंगारों को स्वीकार करते हैं । युद्ध एक अनिवार्य विकार है । मानव समाज में व्यक्तिगत, राजनीतिक और राष्ट्रीय स्तर पर जो विकारों की शिखाएँ धीरे-धीरे सुलगती है उसे क्षोभ, घृणा, ईर्ष्या और द्वेष प्रज्वलित करते हैं । विषम रोग के लिए तिक्त औषधि लेनी होती है । दिनकर ने युद्ध के विकल्प के रूप में 'समतावाद' की स्थापना को महत्व दिया है । यह समतावाद, वैपरित्य के सामंजस्य तथा समन्वय द्वारा जा सकता है । सामाजिक-आर्थिक विषमता को समाप्त करना जरूरी है क्योंकि एक विकासशील समाज ही राष्ट्र के निर्माण में अपनी स्पष्ट भूमिका निभा सकता है । दिनकर लिखते हैं-

"शांति नहीं तब तक जब तक/सुख भाग न नर का सम हो ।
नहीं किसी को बहुत अधिक हो/नहीं किसी को कम हो ।"[10]

दिनकर की राष्ट्रीयता समाज को विभाजित करने वाली शक्तियों की पड़ताल करती है । वह उन शक्तियों का विरोध करते हुए सुख के समान वितरण का जोर देते हैं । उन्होंने देखा था कि वैषम्य के भीतर ही राजतंत्र और तानाशाही जैसी शोषक शक्तियाँ उभरती है । संपत्ति का स्रोत जब अधिकार और शक्ति के स्रोत से जुड़ता हैं तब अहंकार पैदा होता है । इस अहंकार की समाप्ति के लिए विषमता को समाप्त करना दिनकर अनिवार्य मानते हैं । उनका मानना है कि साम्य भावना के द्वारा ही जीवन की मुक्ति संभव है ।

दिनकर की राष्ट्रीयता में एक पराधीन राष्ट्र के लिए पराधीनता से मुक्ति के लिए संघर्ष का संदेश संप्रेषित हुआ है । स्वतंत्रता को दिनकर ने जाति की लगन और व्यक्ति का जुनून माना है । संसार में वही जाति स्वतंत्र है जिसमें बिना नत हुए सहनशीलता और धैर्य धारण करने की क्षमता होती है । स्वतंत्रता निरन्तर समर है, सनातन रण है । इसकी रक्षा के लिए

किसी राष्ट्र को हर पल जागृत रहना होता है । रक्त बदले जो जाति आँसू बहाकर रह जाती है, विश्व के मानचित्र पर ऐसे राष्ट्र कभी स्वतंत्र नहीं रह सकते हैं ।

दिनकर की कविता की शुरूआत भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता संघर्ष के आलोक में हुई थी । इस दौर में भारतीय जनता राष्ट्रीय भावना को लेकर उद्वेलित थी । स्वतंत्रता की बलि-वेदी पर सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए समर्पण भाव से युवा तैयार हो चुके थे । लोगों ने स्वतंत्रता के लिए मन बना लिया था । क्रांति की अनुगूँज का उद्घोष वातावरण में घुल मिल चुका था । ऐसी परिस्थिति में युवा कवि दिनकर ने राष्ट्र को उद्वेलित करने वाली रचनाएँ की जो अत्यधिक लोकप्रिय हुई और राष्ट्रीयता का प्रतीक बन गई । दिनकर की ऐसी पंक्तियाँ क्रांति के लिए युवाओं को मानसिक रूप से तैयार करती थी-

> ''ले अंगड़ाई उठ हिले धरा/कर निज विराट स्वर में निनाद ।
> तू शैल काट, हुँकार भरे/फट जाए कुहा, भागे प्रमाद ।
> तू मौन त्याग, कर सिंहनाद/रे तपी आज तप का काल ।
> नवयुग शंख ध्वनि जगा रही/तू जाग, जाग मेरे विशाल ।''[11]

दिनकर स्वच्छंदतावादी कवि थे । वे बंधनों को स्वीकार नहीं करते । रूढ़ियाँ उनके मार्ग की बाधा नहीं बनती । स्वतंत्रता की भावना उनके काव्य का मूल है । राष्ट्र निर्माण उनका लक्ष्य था,जो कविता के लाक्षणिक प्रयोगों के माध्यम से स्पष्ट हुआ है । उनका राष्ट्रवाद सामाजिक समता के संघर्षरत् जनता को आश्वासन देता है कि इतिहास बदलेगा और नए युग में भारत प्रवेश करेगा । इसके लिए दिनकर भारतीयों को अपनी खोई 'आत्मा' को जगाने का आह्वान करते हैं ।

निष्कर्षत**:** दिनकर ने भारत के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की है । वह राष्ट्र के सम्मान तथा संस्कृति की रक्षा का मार्ग नैतिक मूल्यों को बनाए रखने में मानते हैं । भारतीयता की रक्षा के लिए वह एक हाथ में 'परशु' और दूसरे हाथ में 'वेद' की अपेक्षा करते हैं । उनका संपूर्ण काव्य राष्ट्रीयता की भावना का व्यंजक है । युग का प्रतिनिधित्व करते हुए कवि ने अपनी भावना का उद्रेक किया है । स्वदेश गौरव और देशाभिमान उनके व्यक्तित्व का हिस्सा है, जिसने राष्ट्रीयता के निर्माण को स्वरूप प्रदान किया है । अतीत में जाना और वहाँ से उन चरित्रों, तथ्यों को दिनकर ने उठाया है जो 'राष्ट्रीयता' के प्रतीक बन गए हैं । इतिहास के नायकों को गरिमा प्रदान कर रामधारी सिंह 'दिनकर' ने हिंदी कविता को व्यापक भाव-भूमि प्रदान की है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. रामधारी सिंह 'दिनकर', चक्रवाल (भूमिका), लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, प्रयागराज-211001, संस्करण-2020, पृ. 30
2. रामधारी सिंह 'दिनकर', सामधेनी (तिमिर में स्वर के बाले दीप, आज फिर आता है कोई), लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001, संस्करण-2016, पृ. 12

3. रामधारी सिंह 'दिनकर', संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001, संस्करण-2016, पृ. 52
4. रामधारी सिंह 'दिनकर', सामधेनी (जवानियाँ), लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001, संस्करण-2016, पृ. 74
5. रामधारी सिंह 'दिनकर', रेणुका (मंगल आह्वान), लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001, संस्करण-2012, पृ. 10
6. रामधारी सिंह 'दिनकर', हुंकार (भूमिका), राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2012, पृ. 04
7. रामधारी सिंह 'दिनकर', रेणुका (तांडव), लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001, संस्करण-2012, पृ. 08
8. रामधारी सिंह 'दिनकर', परशुराम की प्रतीक्षा (खंड-1), लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001, संस्करण-2012, पृ. 18
9. वही, पृ. 19
10. रामधारी सिंह 'दिनकर', कुरूक्षेत्र, राजपाल एण्ड संस, 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2013, पृ. 42
11. रामधारी सिंह 'दिनकर', रेणुका, लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग, प्रयागराज-211001, संस्करण-2012, पृ. 23

नवजागरण कालीन हिंदी साहित्य में वालकृष्ण भट्ट की देन

डॉ. पूर्णिमा आर.

हिंदी में गद्य साहित्य का वास्तविक विकास भारतेन्दु युग में हुआ । नए नए विचारों का यह युग राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यक क्षेत्र में नवजागरण का काल था । इस कालखंड में एक और ब्रजभाषा में काव्य रचना होती रही और दूसरी ओर सामाजिक, राजनीतिक क्षेत्रों में सक्रियता बढ रही थी । सामाजिक पुनर्जागरण के इस समय समाज में नये नये विचारों का प्रसार हो रहा था । धर्मान्धिता, जाति-पाँति, छुआछुत आदि के विरोध में लोगों में तीव्र प्रतिक्रिया पैदा होने लगी । 1868 के बाद नवजागरण के लक्षण साहित्य में भी स्पष्ट नज़र आये । इस नवजागरण के अग्रदूत थे भारतेन्दु बाबा हरिश्चन्द्र । भारतेन्दु स्वयं साहित्य-रचना करते थे और दूसरों को रचना के लिए प्रेरित भी करते थे । इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधाचरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी 'प्रेमघन', लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय है ।

बहुमुखी प्रतिभा के धनी - भारतेन्दु युगीन लेखकों में बालकृष्ण भट्ट अग्रणी है । हिंदी गद्य को अत्यधिक शुद्ध तथा परिमार्जित करके उसे साहित्य के उपयुक्त बनाने में वे सर्वथा सफल हुए । वे हिंदी के कुशल निबन्धकार, पत्रकार एवं संपादक थे ।

बालकृष्ण भट्ट का जन्म प्रयाग के एक प्रतिष्ठित परिवार में 3 जून 1844 में हुआ था । स्कूल में दसवीं कक्षा तक शिक्षा प्राप्त करने के बाद उन्होंने घर पर ही संस्कृत का अध्ययन किया । भट्टजी के पिता का नाम पं. वेणीप्रसाद था । माता पार्वती देवी ने अध्ययन के प्रति उनमें विशेष रुचि पैदा की । विदुषी माता के व्यक्तित्व का प्रभाव उनपर ज्यादा पडा था ।

वे अपने सिद्धान्तों एवं जीवन-मूल्यों में दृढ आस्था रखनेवाले थे । उन्हें उर्दु, फारसी, संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजीं भाषा का ज्ञान था । कुछ बरसों तक वे कायस्थ पाठशाला के संस्कृत अध्यापक रहे । कालान्तर में अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण उन्हें इस पद से त्याग-पत्र देना पडा । जीवीकोपार्जन के लिए उन्होंने कुछ समय तक व्यापार कार्य किया, परन्तु इसमें उनकी अधिक रुचि नहीं थी । व्यापार कार्य को छोडकर वे साहित्यसेवा में लगे रहे ।

अंग्रेज़ी शिक्षित लोगों में हिंदी का प्रचार करना वे अपना मुख्य उद्देश्य मानते थे । इस उद्देश्य से उन्होंने 'हिंदी प्रदीप' का संपादन किया । उनके पत्र में सरल और गंभीर विषयों के लेख छापे जाते थे ।

निबन्धकार भट्टजी - निबन्धकार के रूप में भी भट्टजी की प्रतिभा खूब चमकती है । वे भारतेन्दु युग के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार है । डाक्टर वार्ष्णेय पंडित बालकृष्ण भट्ट को 'हिंदी का सर्वप्रथम निबन्धकार'[1] स्वीकारते हैं । उनके निबन्ध सामयिक और सामाजिक है । सामयिक विषयों पर जितने अच्छे निबन्ध उन्होंने लिखे हैं, उतने किसी अन्य ने नहीं । अपने निबंधों के द्वारा हिंदी की सेवा करने में वे ज्यादा ध्यान देते थे । उनके निबंध सदा मौलिक और

भावनापूर्ण होते थे । 'भट्ट निबन्धावली' तथा 'भट्ट निबन्धमाला' उनके महत्वपूर्ण निबन्धों का संकलन है । साधारण से साधारण लगने वाले विषयों पर उन्होंने अनेक सारगर्भित निबन्ध लिखे । आँख, कान और नाक आदि विषयों पर उनके निबन्ध रोचक तथा भावपूर्ण हैं । ये निबन्ध सुरुचि संपन्न होने के साथ-साथ कल्पना की ऊँची उडान भी भरते हैं । सभी हास्य, व्यंग्य से परिपूर्ण हैं ।

'बातचीत' निबन्ध में उन्होंने वाक् शक्ति को ईश्वर का वरदान माना है । वे कहते हैं कि वाक् शक्ति अगर मनुष्य में न होती तो न जाने इस गूंगी सृष्टि का क्या हाल होता । वे कहते हैं कि बातचीत में वक्ता को स्पीच की तरह नाच-खराज जाहिर करने का मौका नहीं दिया जाता ।

ईमानदारी निबन्ध की रचना सन् 1900 में हुई । विचारात्मक शैली में रचित इस निबन्ध में लेखक के विचारों की गहनता और गद्यकाव्य की मधुरता देखने को मिलती है । इसमें ईमानदारी को इनसान का उत्तम गुण मानता है, जिसे अपनाकर वह जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है । प्रस्तुत निबन्ध में लेखक आत्मशुद्धि और चरित्र निर्माण की बात करते हैं, साथ ही साथ स्वावलंबन की भी ।

भारतीय पुरुष-वर्चस्ववादी समाज के विरोध में उन्होंने तीव्र प्रतिक्रया व्यक्त कीया । 'स्त्रियाँ' नामक उनका प्रसिद्ध निबन्ध इसकी श्रेष्ठ मिसाल है । इसमें उन्होंने लिखा- ''जहाँ कहीं वे पढाई-लिखाई जाती हैं, वहाँ स्त्रियाँ पुरुषों के ऊपर हो गई हैं । हमारे यहाँ के ग्रन्थकार और धर्मशास्त्र गढनेवालों की कुंठित बुद्धि में न जाने क्यों यही समाया हुआ था कि स्त्रियाँ केवल दोष की खान हैं गुण इनमें कुछ है नहीं ।''[2]

भट्टजी ने हास्य पर आधारित शिक्षादायक लेख भी लिखे हैं । भट्ट जी का गद्य गद्य न होकर गद्यकाव्य-सा प्रतीत होता है । वस्तुतः आधुनिक कविता में पद्यात्मक शैली में गद्य लिखने की परंपरा का सूत्रपात बालकृष्ण भट्ट ने किया ।

सामाजिक, सांस्कृतिक, सामयिक, धार्मिक, साहित्यक, राजनीतिक विषयों पर उन्होंने काफ़ी महत्वपूर्ण निबन्ध लिखे । विचित्र, असाधारण और काल्पनिक विषयों को भी उन्होंने निबन्ध लेखन के लिए चुना । हास्य और व्यंग्य का पुट उनके निबन्धों को आकर्षक बनाता है । तथ्य-निरूपण, मननशीलता और विवेचना की दृष्टि से भट्टजी के निबन्ध उच्चकोटि के हैं ।

उनके निबन्धों की भाषा सरल, स्निग्ध और अकृत्रिम है । मुहावरों का प्रयोग वे प्रायः कर लेते हैं । भाषा शुद्ध खड़ीबोली नही, संस्कृत के साथ-साथ उर्दु तथा अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग वे बराबर करते थे । व्याकरणपरक गलितियों से उनकी भाषा पूर्णतया मुक्त नहीं, फिर भी उनके वाक्य काफ़ी प्रभावपूर्ण, समयानुकूल और विषयानुकूल हैं । उनकी शैली में व्यंग्य और आत्मीयता है । उद्धरणों से उनके लेख सुसज्जित हैं । उन्होंने अलंकृत शैलीमें निबन्ध लिखे । भट्ट जी के निबन्धों में सरसता और साहित्यकता टपकती है । भाषा में विशेष भाव प्रकाशन क्षमता और स्वच्छन्दता पैदा करने के लिए उन्होंने पर्याप्त परिश्रम किया । भट्ट जी की भाषा उनकी अपनी भाषा है । वह आडंबर रहित है, हास्य रस का सुंदर प्रयोग इसमें हैं ।

नाटककार और उपन्यासकार के रूप में – नाटककार एवं और उपन्यासकार के रूप में उन्होंने अपनी दक्षता दिखाई । बालकृष्ण भट्ट ने जीवंत समस्याओं पर 'नई रोशनी का विष', 'जैसा काम वैसा परिणाम' तथा 'आचार विडंबन' नामक नाटक लिखे । बालविवाह पर इन्होंने 'बालविवाह' नाटक लिखा । पौराणिक कथाओं पर भी कुछ नाटकों की रचना हुई । वेणीसंहार, मृच्छकटिक और पद्मावती नामक अनूदित नाटक भी उन्होंने लिखे ।

भट्टजी के प्रकाशित पूर्ण उपन्यासों की संख्या दो है– 'नूतन ब्रह्मचारी'(1886) और 'सौ अजान एक सुजान' (1890) । उन्होंने कुछ अन्य उपन्यास भी लिखे हैं–रहस्य कथा (1879), गुप्त बैरी (1882), उचित दक्षिणा (1884), सद्भाव का अभाव (1889), हमारी घडी (1892) और रसातल यात्रा (1992) । ये उपन्यास हिंदी प्रदीप की फाईलों में आज भी देखे जा सकते हैं । हास्य, व्यंग्य का पुट इनके सभी उपन्यासों में पाया जाता है ।

नूतन ब्रह्मचारी उपन्यास का कथानक अत्यन्त सरल एवं स्वाभाविक है । छोटे बच्चे से लेकर बुजुर्ग भी इसे आसानी से समझ सकते हैं । यह मूलतः बालोपयोगी शिक्षाप्रद उपन्यास है । उपन्यास के मुख पृष्ठ पर ही लिखा है– ''नूतन ब्रह्मचारी स्वर्गीय बालकृष्ण भट्ट जी कृत सुन्दर और शिक्षाप्रद उपन्यास ।'' उपन्यास में तत्सम तथा आँचलिक शब्दों का प्रयोग किया गया है । मुहावरेदार भाषा के कारण उपन्यास ज्यादा सरल लगता है ।

'सौ अजान एक सुजान' नामक उपन्यास कृति को भट्ट जी एक प्रबन्ध कल्पना मानते हैं । यह भारतेन्दु युग की प्रमुख रचना है । भूमिका में बताया गया है– ''सौ अजान एक सुजान भी भट्ट जी की अनूठी कृति है । इसीलिए इसके कई संस्करण भी प्रकाशित हो चुके हैं । भट्ट जी की यह रचना अपनी मौलिकता और उत्कृष्टता के कारण सर्वप्रिय बन चुकी है । एक प्रबन्ध कल्पना के रूप में यह कृति अपने विषय की बेजोड चीज है ।''[3] कृति का परिचय देते हुए दुलारेलाल का कथन है– ''भट्ट जी की यह रचना व्यंग्यात्मक है और इसमें मानव–जीवन की सामाजिक परिस्थितियों का सुन्दर चित्रण पाया जाता है ।''[4] इसके प्रमुख तीन पात्र है– पंडितजी, सेठ हीराचन्द और चन्द्रशेखर (चंदु) । इसके कुल तेईस प्रस्ताव है । प्रत्येक प्रस्ताव का आरंभ एक उपदेश से होता है ।

पत्रकार के रूप में

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से प्रेरणा ग्रहण करके सितंबर 1877 ई. को भट्ट जी ने प्रयाग से हिंदी प्रदीप नामक मासिक पत्र का संपादन–प्रकाशन शुरु किया । एक व्यापक साहित्यक–साँस्कृतिक और सामाजिक चेतना को उद्धृत करना इस पत्र का ध्येय रहा । 'हिंदी प्रदीप' में सामाजिक, सांस्कृतिक विषयों पर नाटक, निबन्ध और उपन्यास लिखे जा रहे थे । भट्टजी की राष्ट्रीयता इस पत्रिका में छपे लेखों के ज़रिए प्रकट होती है । इस पत्र का संपादन वे लगभग तैंतीस वर्ष तक करते रहे । उन्होंने इस पत्र में स्वलिखित 300 निबन्धों को प्रकाशित किया । भट्ट जी अंग्रेजों के कठोर शासन के निडर आलोचक थे । अपनी पत्रकारिता को इस दिशा में उन्होंने सक्रिय किया । समय–समय पर शासकों की दुर्नीति का विरोध करने के कारण यह पत्र अंग्रेजों की आँखों के में खटकता था । देश की पराधीनता और अंग्रेजों की भयानक प्रवृत्ति पर उन्होंने 1878 ईसवीं में हिंदी प्रदीप में लिखा– ''अब स्वाधीनता

भाव मानो अस्त हो गया, हम जिधर ही दृष्टि फैलाते है उधर ही ब्रिटेन की रुद्रमूर्ती का दर्शन करते हैं । बोध होता है मानो श्वेतमूर्ति भीषण आकार से धनुष-बाण चढाये हम पर लक्ष्य बाँधे हुए हैं ।"

लार्ड लिटन के समय 14 मार्च 1878 ई. को विदेशी सत्ता ने वर्नाकुलर प्रेस एक्ट लागू किया था । यह देशी प्रेस की अभिव्यक्ति को बाँधने वाला था । हिंदी प्रदीप में इसका पुरजोर विरोध हुआ । बालकृष्ण भट्ट की प्रतिरोध-वृत्ति और निर्भीकता ने तत्कालीन पत्रकारों में साहस का संचार किया ।

'हिंदी प्रदीप' का आरंभिक अंक भारतेन्दु युग से पूर्णत प्रभावित है । द्विवेदी युग में प्रकाशित इसके अंकों में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा निर्देशित साहित्य विधाओं की झलक दृष्टिगत होती है । इस तरह भट्ट जी ने आधुनिक हिंदी साहित्य के दो महान युगों-भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग में उत्कृष्ट साहित्यक पत्रकारिता के माध्यम से अपनी गरिमामय उपस्थिति दर्ज की ।

'हिंदी प्रदीप' में यथा-कदा प्रकाशित होनेवाले सुन्दर लेखों का एक संग्रह 'साहित्य-सुमन' के नाम से 'गंगा-पुस्तकमाला' में प्रकाशित हो चुका है । उस संग्रह ने अपूर्व लोकप्रियता हासिल की है । हिंदी प्रदीप के अतिरिक्त भट्ट जी ने दो-तीन अन्य पत्रिकाओं का भी संपादन किया । भारतेन्दु युग की गद्य प्रधान कविताओं को लिखने में भट्ट जी ने अपना योगदान दिया ।

देशप्रेम और नवजागरण का सन्देश

भट्ट जी पुरातन मूल्यों की कमियों को फटकारते थे । उसी समय उसकी खूबियों को अपनाने में वे तैयार हो जाते थे । उनके रचनागत व्यक्तित्व में पुरातन और आधुनिकता का समावेश था । पश्चिम के नए विचारों का वे हमेशा समर्थन देते थे । वे अपने लेखों में समकालीन प्रासंगिकता की दृष्टि से शंकराचार्य, बुद्ध, गुरु नानक, कबीर आदि का मूल्यांकन करते हैं, पश्चिम की तरक्की देखकर भारत की तरक्की की बात करते हैं, कृषि प्रधान भारत में खेती की गिरी दशा को देखकर वे बेचैन हो जाते हैं । यहाँ के किसानों की कडी मेहनत की वे खूब प्रशंसा करते हैं । साथ ही साथ अमरिका जैसे विकासवान देशों की तुलना में हमारी खेती के औजार और खाद को वे घटा हुआ मानते हैं । 'वर्तमान महादुर्भिक्षा' नामक निबन्ध में वे कहते हैं- "अमेरिका के किसानों को इतनी मेहनत नहीं करनी पडती जैसा यहाँ के खेतिहर करते हैं और फायदा इनसे वे लोग बहुत अधिक थोडे ही मेहनत में उठाते हैं ।"[5]

भट्ट जी सच्चे अर्थ में देशभक्त थे । राजभक्ति को वे क्षणिक सुख मानते थे, जबकि देशभक्ति उनका परम ध्येय था । अपनी कृतियों के ज़रिए धर्म और अर्थ के नाम पर होने वाली लूट का वे सदा विरोध करते थे । विकास के नाम पर देशी संस्कृति को बरबाद करना वे नहीं चाहते थे । देशी विकासमान धंधा और कुटीर उद्योगों की प्रगति में उन्होंने देशी संस्कृति का विकास देखा । चरित्र-शोधन, आत्मत्याग, कौम, देशत्व रक्षा का उपाय जैसे निबन्धों के द्वारा उन्होंने भारत की युवा पीढी को देशोद्धार के लिए प्रेरित किया ।

हिंदी की प्रतिष्ठा का प्रयास – भट्ट जी ने नागरी लिपि के प्रयोग और हिंदी भाषा की प्रतिष्ठा पर बल दिया है । वे हिंदी भाषा की परिधि का विस्तार करना चाहते थे । इस उद्देश्य से उन्होंने हिंदी भाषा में प्रसंगानुकुल हिंदी-इतर शब्दों का मिश्रण किया है । 19वीं शती में हिंदी भाषा और नागरी अक्षरों की शिक्षा और न्यायालय में उसके प्रयोग को लेकर उन्होंने एक आन्दोलन चलाया था ।

हिंदी को राष्ट्रभाषा पुकारने में भट्ट जी का योगदान सराहनीय है । उनकी भाषा को दो वर्गों में बांटा जा सकता है । प्रथम वर्ग की भाषा है संस्कृत निष्ठ हिंदी और दूसरे वर्ग की भाषा है उर्दु, अरबी, फारसी आदि के चलते शब्दों से मिश्रित हिंदी । अंग्रेजी का प्राबल्य, हिंदी शब्द-कोष का दौर्बल्य और उर्दु भाषा का सर्वत्र प्रवेश देखकर हिंदी भाषा को व्यापक बनाने की चिन्ता से भट्ट जी ने हिंदी उर्दु मिश्रित भाषा का प्रचार करना शुरु किया । इसे आज हम खड़ीबोली कहते हैं । हिंदी शब्दों का प्रचार करने के लिए उन्होंने दुहरे-तिहरे प्रयोग (सम्राट, बादशाह, गुरु-रसूर-पैगंबर आदि) तक किए है । नए नए शब्दों के गठन में वे अपूर्व सामर्थ्य दिखाते थे । उदाहरणार्थ बूढापा के अनुसरण पर सुन्दरापा नामक शब्द उन्होंने स्वयं निर्मित किया ।

निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि बहुमुखी प्रतिभा के धनी बालकृष्ण भट्ट एक स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्तित्व के रुप में हमारे सामने उपस्थित होते हे । सनातन धर्म के पक्षपाती होते हुए भी भट्ट जी कभी अंध-परंपरा के पक्षपाती नहीं रहे । रूढिवादी कुंठाओ, मूढ परंपराओं, जातीय कुरीतियों आदि का उन्होंने घोर विरोध किया है । हिन्दु जाति की प्रगति में इन कुरीतियों को वे बाधक मानते थे । उनकी धर्म-निष्ठा सराहनीय थी । उनकी भाषा अनूठी है । रचनाओं में अनुभव, अध्ययन और सरलता की छाप है । आधुनिक खड़ीबोली के गद्य लेखकों में अपनी असामान्य प्रतिभा के बलबूते वे उच्च स्थान पर आसीन हैं ।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. रामचन्द्र तिवारी, हिंदी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वारणासी, 9वाँ संस्करण, 2014, पृ. 64
2. बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, संपादक – सत्यप्रकाश मिश्र, पृ. 33
3. भूमिका – सौ अजान एक सुजान, लेखक – स्व. बालकृष्ण भट्ट, सातवाँ संस्करण, संपादक श्री दुलारेलाल (सुधा-संपादक) गंगा-ग्रन्थागार, 36, लाटूश रोड, लखनऊ
4. बालकृष्ण भट्ट (1944) सौ अजान और एक सुजान (सातवाँ संस्करण) लखनौ ग्रंथागार, पृ. 7
5. बालकृष्ण भट्ट के श्रेष्ठ निबन्ध, संपादक – सत्यप्रकाश मिश्र, पृ. 55

छायावादी काव्य : स्वतंत्रता पुकारती

डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर

नवजागरण का केंद्रीय मूल्य स्वतंत्रता छायावाद (1918–1936) का मूल स्वर था । छायावाद की विविध प्रवृत्तियों के केंद्र में स्वाधीनता की चेतना विद्यमान थी । चाहे वह अज्ञात के प्रति जिज्ञासा हो या वैयक्तिकता की भावना । आत्मप्रसार की चेतना, प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा, स्वछंद कल्पना, प्रकृति प्रेम, नारी मुक्ति के भाव, विदेशी शासन का विरोध, सामन्तीय रूढ़ियों के विरुद्ध खिल़ाफत या मुक्त छंद का प्रयोग सब में स्वातंत्र्य भावबोध की पुकार है । प्रस्तुत आलेख में प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी जो शुद्ध छायावादी धारा के प्रतिनिधि रचनाकार हैं । इनके काव्य एवं गीतों में अभिव्यक्त स्वाधीनता की भावना के विविध रूपों का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है ।

डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में छायावाद की विविध प्रवृत्तियों की विश्वनीय व्याख्या करते हुए स्वाधीनता को केंद्र में रखते हुए लिखा है– ''छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से ।''[1] पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति और विदेशी पराधीनता से मुक्ति का भाव छायावाद को 1857 ई. के प्रथम स्वाधीनता संग्राम, भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग से जोड़ देता है । छायावाद की युगीन चेतना को रेखांकित करते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी का कथन है– ''छायावाद भक्तिकाव्य के बाद हिंदी का सबसे महत्वपूर्ण काव्यान्दोलन है । भक्तिकाव्य का आधार भक्ति आंदोलन था । छायावाद का स्वाधीनता आंदोलन । छायावादी युग के साहित्य में हिंदी प्रदेश का विषम यथार्थ और उस विषमता से रहित स्थिति का स्वप्न दोनों, सह-स्थित एवं अभिव्यक्त हैं । इसीलिये इस दौर में प्रेमचन्द, प्रसाद, निराला, रामचंद्र शुक्ल जैसी विभूतियां समकालीन हैं । विषम यथार्थ प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में चित्रित है तो स्वप्न छायावादी काव्य में । स्वप्निल स्वप्न नहीं, यथार्थी स्वप्न । पराधीन भारत का स्वातंत्र्य स्वप्न । स्वातंत्र्य अपनी पूर्ण अर्थ संपदा में, उसका एक आयाम कवि कल्पना है– निराला ने वीणावादिनी की स्तुति में लिखा था– ''प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव ।''[2] छायावाद के आधार स्तम्भ रचनाकार सूर्यकांत त्रिपाठी निराला वसन्त के सर्वश्रेष्ठ गीतकार थे । मां सरस्वती की प्रसिद्ध वंदना 'वर दे वीणावादिनी वर दे ।' निराला ने लिखा था । जो आज भी अधिकांश भारतवासियों की जबान पर है–

"वर दे वीणावादिनी वर दे ।
वर दे ।
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
        भारत में भर दे ।
काट अंध-उर के बंधन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर;
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
        जगमग जग कर दे ।

नव गति, नव लय, ताल-छंद
नवल कंठ, नव जलद-मन्द्र रव;
नव नभ के नव विहग-वृंद को
नव पर, नव स्वर दे ।
वर दे, वीणावादिनि वर दे ।"[3]

यह वंदना धार्मिक आशय से आगे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का प्रतीक है । सरस्वती माँ से निराला ऐसे भारत की परिकल्पना का वरदान मांग रहा है । जहाँ हर मनुष्य के अंदर स्वतंत्रता के अमृत मंत्र का प्रवाह हो । ऐसा भारत जहाँ के नर-नारी सामंतीय रूढ़ियों से मुक्त हो । वे निर्भीक हो । देशप्रेम की भावना से ओतप्रोत । पराधीन भारत में अंधकार को चीरकर प्रकाश की ऐसी निर्झरिणी का प्रवाह हो जिसमें अज्ञानता ज्ञान में, असमानता समानता में, परतंत्रता स्वतंत्रता में, भूखमरी भरपेट भोजन में, अन्याय न्याय में परिवर्तित हो जाए । इस मंगलकामना का सन्दर्भ भारतीय होते हुए भी इसमें समस्त विश्व की चिंता है । 'जगमग जग कर दे' का भाव वसन्त के विश्व मानवतावादी प्रसार का प्रतीक है । जो प्रकृति के साथ निराला की भी मौलिक विशेषता थी ।

ऐसा स्वाधीन भारत जिसमें नई गति, नई लय-ताल और छंद हो । यहां नव गति लोकतांत्रिक भारत की प्राप्ति की है । नव लय भाईचारे और गंगा-जमुनी तहजीब की, नव ताल सभी संस्कृति को 'महामानव समुद्र' के रूप में स्वीकारने की, नव छंद जीवन की सदाशयता और आचरण की शुचिता की । नवल कंठ अभिव्यक्ति की आजादी की । ऐसा भारत को जल से भरे हुए 'बादल' के समान हो । यहां बादल की सजलता संवेदनशील और मानवीय करुणा का रूप है । बादल अबाध गति और असीम होने का प्रतीक भी है । जो मानव की अनन्त सम्भावना का आशा भरा रूप है । ऐसा भारत जो वसन्त की तरह पतझड़ के बाद उल्लास के इंतजार से भरा हो । संघर्ष के बाद सफलता के उजास को महसूस करता हो ।

निराला का यह गीत वसन्त के प्रकृति दर्शन को भी सामने लाता है । एक स्तर पर यह अभिव्यक्ति निराला के भारत को आज के भारत के साथ मिलाकर देखने का और 'वीरों के वसन्त' अर्थात् क्रांतिकारियों को सलाम का रूप है । 'वसन्त' प्रकृति की जवानी के साथ हमें सदा देश की जवानी को सही दिशा दिखाने के लिए प्रेरित करने वाला ऋतु है । मां सरस्वती उपासना की मूल 'विद्या' का भी केंद्रीय लक्ष्य मुक्ति है ।

साहित्य के क्षेत्र में जो छायावाद का दौर है, राजनीति के क्षेत्र में वही गांधीवाद । प्रभाववादी आलोचक शांतिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद को 'गांधीवाद का काव्यानुवाद' कहा है । छायावाद पर गांधीवाद के प्रभाव के विषय में डॉ. मैनेजर पाण्डेय के विचार हैं- "उस पर गांधी के व्यक्तित्व और विचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव कम है, लेकिन उसमें राष्ट्रीय जागरण, परम्परा की स्मृति और स्वाधीनता के व्यापक भाव की जो अभिव्यक्ति है वह गांधी के व्यापक मुक्ति अभियान से जुड़ी हुई है ।"[4]

सन् 1914 में गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे । गांधी जी राष्ट्रीय आंदोलन के पुराने नेताओं की बुनियादी कमजोरी को बखूबी पहचाना था । परिणाम स्वरूप उन्होंने एक नया मार्ग अपनाया । दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद के ख़िलाफ संघर्ष करते हुए उन्होंने असहयोग और सत्याग्रह को नया अर्थ दिया । सत्याग्रह और असहयोग के अस्त्र से उन्होंने ब्रिटिश दासता के खिलाफ नई चुनौती पेश की । यह चुनौती भारत के स्वाधीनता सँघर्ष में नए रूपों में प्रकट हुई । गांधी के आगमन से स्वाधीनता आंदोलन की चेतना देश के कोने-कोने में पहुँची । अब राष्ट्रीय आंदोलन गोष्ठी और मांगपत्र से आगे निकलकर जनसामान्य के खुले प्रांगण में पहुंचा । अब राष्ट्रीय आंदोलन मध्य-वर्ग के सीमित दायरे से निकलकर किसान, मजदूर, स्त्री के बीच पहुँचकर अखिल भारतीय स्वरुप धारण किया । स्वाधीनता आंदोलन की चेतना नवजागरण से लैस है । स्वाधीनता आंदोलन के लक्ष्य लौकिक, यथार्थवादी, अधिक मूर्त एवं जन गण मन की वाणी बन गई । गांधी स्वाधीनता आन्दोलन की शक्ति को राजनीति के साथ समग्र जीवन तक ले जाने के हिमायती थे । अकारण नहीं छायावाद ने 'सम्पूर्ण सांस्कृतिक जागरण' का उद्घोष किया । इस काल में गांधी के प्रयास के संदर्भ में जवाहरलाल नेहरू लिखते हैं- ''गांधी जी ताजी हवा के उस प्रबल प्रवाह की तरह थे, जिसने हमारे लिए पूरी तरह फैलना और गहरी सांस लेना सम्भव बनाया । वह रोशनी की उस किरण की तरह थे, जो अंधकार में बैठ गई और जिसने हमारी आँखों के सामने से परदे को हटा दिया । उनकी भाषा वही थी जो आम लोगों की थी और वह बराबर उस जनता की ओर और उसकी डरावनी हालत की ओर ध्यान आकर्षित करते थे । राजनैतिक आजादी की एक नई शक्ल सामने आई और उसमें एक नया अर्थ पैदा हुआ ।''[5]

इस दौर की राजनीतिक -सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर विचार रखते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है- ''जिन दिनों हिंदी कविता नए रास्ते पर मुड़ने की तैयारी कर रही थी, उन्हीं दिनों प्रथम महायुद्ध के बादल घुमड़ रहे थे । सन् 1914 ई. में प्रथम महायुद्ध छिड़ा । युद्ध के बाद देखा गया कि श्वेत जातियों की बहुप्रचारित श्रेष्ठता का दावा झूठा था, राष्ट्रीयता के मोहन तंत्र से सारे देश को एक करने के प्रयत्न में कुछ थोड़े से धनकुबेरों का स्वार्थ ही प्रबल हेतु था और उपनिवेशों के लोगों को शासनक्षम बनाने की प्रतिज्ञाएं भौंड़े मजाक से अधिक वजनदार नहीं थी । भारतवर्ष ने इस मजाक की मर्म-व्यथा सबसे अधिक अनुभव की । उसकी सभ्यता बहुत पुरानी थी, उसकी संस्कृति बहुत उदार थी और उसके ऐतिहासिक अनुभव विशाल थे । प्रथम महायुद्ध के समाप्त होते न होते सारे देश में एक नई चेतना की लहर दौड़ गई । सन् 1920 ई. में महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारतवर्ष विदेशी ग़ुलामी को झाड़ फेंकने के लिए कटिबद्ध हो गया । असहयोग आंदोलन इसी प्रयत्न का राजनीतिक मूर्त रूप था । इसे सिर्फ राजनीति तक सीमित नहीं समझना चाहिए । यह संपूर्ण देश के आत्मस्वरूप समझने का प्रयत्न था और अपनी गलतियों को सुधार कर संसार की समृद्ध जातियों की प्रतिद्वंदिता में अग्रसर होने का संकल्प था । संक्षेप में एक महान सांस्कृतिक आंदोलन था ।''[6]

द्विवेदी जी ने आगे लिखा है- ''जनता का जो भाग पिछड़ा हुआ था, जो पर्दे में कैद था, जो अपमानित और उपेक्षित था, उसके प्रति सामूहिक रूप से सहानुभूति का भाव पैदा

हुआ । भारतवर्ष में सब प्रकार से नवीन जागरण का सूत्रपात हुआ । इस महान आंदोलन ने जनता के चित्त को बन्धनमुक्त किया । यही बन्धनमुक्त चित्त काव्यों, नाटकों और उपन्यासों में नाना भाव से प्रकट हुआ ।''[7]

छायावाद मुक्ति का काव्य है, जिसके कई रूप हैं । व्यक्ति स्वातंत्र्य से यह शुरू होता है । इसका प्रसार सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक पक्षों तक है । छायावाद स्वातंत्र्य बोध के एक रूप राष्ट्रीयता की भावना है ।

छायावाद राष्ट्रीयता से सम्पन्न काव्यान्दोलन था । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के विचार हैं- ''खेद और आश्चर्य की बात है कि हमारे कतिपय समीक्षकों ने इस अत्यंत सीधी और सच्ची बात को कभी समझने की चेष्टा नहीं की कि हमारे इस युग साहित्य की मुख्य प्रेरणा राष्ट्रीय और सांस्कृतिक है तथा इससे भिन्न वह कुछ और हो नहीं सकती थी । राष्ट्रीयता ने हमारे समस्त जीवन को अनेक रूपों में आन्दोलित कर रखा था और हमारे कवि और लेखक भी इस दुर्दमनीय प्रयास से बच नहीं सकते थे ।''[8]

छायावाद में राष्ट्रीयता की भावना पुनरुत्थान भाव, देशप्रेम के भावप्रवण रूप एवं उद्बोधन गीतों में व्यक्त हुई है । वस्तुत: छायावादी राष्ट्रीयता स्वातंत्र्य सँघर्ष से उपजी है । यह सँघर्ष सामाजिक-राजनीतिक स्वाधीनता के बोध को प्रखर करता है । छायावाद का दौर भारत की पराधीनता का दौर है । भारतवासी इस विषम यथार्थ से परिचित थे । वे इस परतंत्रता से मुक्ति के लिए राहें तलाश रहे थे । मुक्ति का प्रकाश भारतवासी को अपने इतिहास में दिखाई दिया । उनका इतिहास मात्र घटनाओं का ब्यौरा नहीं था वरन् जीता-जागता प्रेरणास्तम्भ था । प्रो. नामवर सिंह ने इतिहास के प्रेरणापुंज पर सटीक टिप्पणी की है- ''भारतवासियों ने वर्तमान पराधीनता के अपमान को भूलने के लिए अतीत के स्वर्ण-युग का सहारा लिया । वर्तमान की हार का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत से दिया । हीनता का भाव दूर हुआ । जो जाति वर्तमान में विभाजित थी, वह अतीत की पृष्ठभूमि में एक हो उठी । इस तरह अतीत के पुनरुत्थान ने सम्पूर्ण देश में एक जातीय अथवा राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात किया ।''[9]

जयशंकर प्रसाद ने राष्ट्रीय भावना को नया रूप दिया । 'चन्द्रगुप्त' और 'स्कन्दगुप्त' जैसे ऐतिहासिक नाटकों, 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण', 'भारत वंदना' जैसी कविताओं एवं 'पुरस्कार' जैसी कहानियों में राष्ट्रीयता की भावप्रवण अभिव्यक्ति मिलती है । प्रसाद के नाटकों के संवाद एवं उनके पात्रों द्वारा गाए गये गीतों में देशप्रेम का भावप्रवण रूप अद्वितीय है । 'स्कन्दगुप्त' नाटक में रणक्षेत्र में वीरों का आह्वान करते हुए हुए मातृगुप्त कहता है-

> ''हिमालय के आँगन में उसे, प्रथम किरणों का दे उपहार
> उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक-हार ।''[10]
>
> ''जियें तो सदा इसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष
> निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष ।''[11]

साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के बरक्स प्रसाद की इतिहास दृष्टि पूरे सर्जनात्मक संकल्प के साथ उपस्थित होती है । भारत असभ्य एवं संस्कृति रहित तथा परतन्त्र रहने वाला राष्ट्र नहीं वरन् मानवता की जन्मभूमि है । प्रसाद की सांस्कृतिक चेतना का मूल इसी स्वत्वबोध में छिपा है । उन्होंने अपने रचनाकर्म में विश्व मानवता की विराट भावना को स्वर दिया । द्विवेदी युगीन देश-प्रेम का स्वरूप बहुत कुछ इतिवृत्तात्मक हो चला था । छायावाद के विशाल भावप्रवण दृष्टिकोण ने उसके मानसिक क्षितिज का विस्तार किया । यह विस्तार नवजागरण की परंपरा के अगले सोपान को व्यक्त करता है । कार्नेलिया द्वारा 'चंद्रगुप्त' नाटक में गाए गए गीत में छायावादी देशप्रेम की व्यापकता दृष्टव्य है-

> "अरुण यह मधुमय देश हमारा ।
> जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ॥
> सरल तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर ।
> छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुंकुम सारा ॥
> लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे ।
> उड़ते खग जिस ओर मुँह किए, समझ नीड़ निज प्यारा ॥
> बरसाती आँखों के बादल, बनते जहाँ भरे करुणा जल ।
> लहरें टकरातीं अनन्त की, पाकर जहाँ किनारा ॥"[12]

इस गीत में प्रयुक्त प्रतीकों के विषय में नामवर सिंह का कथन है- "ये सभी प्रतीक क्रमशः भारत-भूमि के नव-जागरण के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हैं । क्षितिज और अनंत की लहरें राष्ट्रीयता के बीज से विकसित होती हुई अंतर्राष्ट्रीयता की सूचना देती हैं, तो हरियाली नवजीवन की और मंगल-कुंकुम बरसाने वाली उषा नव-जागरण की और चिड़ियों के इंद्रधनुष विविध कल्पनाओं की ओर संकेत करते हैं । छायावाद के इस उदात्त और भावप्रवण देशप्रेम के सम्मुख पूर्व-वर्ती युग का देश-प्रेम बिना रंग-भरे चित्र का रेखाचित्र मात्र है ।"[13]

छायावाद के रचनाकारों ने देश के स्वातंत्र्य चेतना को उद्बोधन एवं जागरण गीतों में व्यक्त किया है । नवजागरण की मूल प्रतिज्ञा समाज को वैचारिक स्तर पर सजग करना है । यह सजगता जीवन को समग्रता में देखती है । नवजागरण जीवन की समग्र निर्मिति के लिए अंधकार की समाप्ति कर जागरण का आह्वान करता है । स्वतंत्रता इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष है । 'चंद्रगुप्त' नाटक की पात्र अलका संपूर्ण देशवासियों को ललकारती है-

> "हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
> स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती
> अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
> प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो ।"[14]

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का जीवंत घोषणापत्र है यह आह्वान गीत ।

छायावाद के जागरण गीतों में स्वतंत्रता की प्रखर अभिव्यक्ति मिलती है । छायावादी जागरण गीतों के विषय में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के विचार हैं- "छायावादी काव्य में एक बड़ी संख्या में इन प्रभाती और जागरण गीतों की है, जिसमें ओर शक्ति और चैतन्य

का आह्वान है और दूसरे तथा समकालीन संदर्भ में राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष से जुड़े हैं। 'प्रथम प्रभात', 'आंखों से अलख जगाने को', 'अब जागो जीवन के प्रभात', 'बीती विभावरी जाग री' (प्रसाद), 'जागो फिर एक बार', 'प्रिय मुद्रित खोलो', 'जागा दिशा ज्ञान', 'जागो जीवन धनिको' (निराला), 'जाग बेसुध जाग', 'जाग तुझको दूर जाना' (महादेवी)। 'प्रथम रश्मि', 'ज्योति प्रभात' (सुमित्रानंदन पंत) जैसी अनेक जागरण कविताएं अनायास स्मरण हो आती है।''[15]

निराला परंपरा के गहरे बोध एवं सांस्कृतिक सूर्य को उदित करने वाले रचनाकार हैं। 'तुलसीदास' महाकाव्यात्मक औदात्य से संपन्न रचना है। 'तुलसीदास' के माध्यम से जागरण के जिस संदेश को व्यक्त किया गया है। वह स्वाधीनता के केंद्रीय मूल्य को प्रकट करने वाला है-

''जागो, जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीती अन्ध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल
बाँधो, बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, है तमजिज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिमाबल।''[16]

पराधीनता की अंध रात से उगता यह स्वाधीनता का प्रभात है। इस कविता में निराला ने भारत के सांस्कृतिक ह्रास का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। अपने प्रिय कवि तुलसी की जीवन गाथा के माध्यम से निराला ने समसामयिक परिस्थितियों में नई राह की खोज की। यह राह आत्मान्वेषण एवं स्वत्व की पहचान की है। तुलसी में ज्ञानोदय रत्नावली के माध्यम से होता है। 'तुलसी' की जागृति निराला के सहज आत्मविश्वास का सूचक है, गहरे अर्थों में भारत के आत्मविश्वास का प्रतीक। निराला की प्रसिद्ध पंक्ति इसका साक्ष्य स्वयं है-

''देश-काल के शर से बिंधकर
यह जागा कवि अशेष-छविधर
इनका स्वर भर भारती मुखर होयेंगी।''[17]

'जागो फिर एक बार' कविता में निराला भारतवासियों को आत्मगौरव का पाठ पढ़ाते हैं। भारत की सांस्कृतिक स्वाधीन परंपरा का रूप दिखाते हैं। भारत की धरती गुरु गोविंद सिंह की वीरता से अनुप्राणित है। निराला इस कविता में गुरु गोविंद सिंह की वीरता का बखान करते हैं। उन्होंने लिखा गुरु गोविंद सिंह ने सवा सवा लाख शत्रुओं से एक-एक सिख को बढ़ाकर विजय प्राप्त की थी। भारत 'गीता' के कर्मयोग को धारण करने वाला देश है। अनेक इतिहास प्रसिद्ध उदाहरणों के माध्यम से निराला पराधीन भारत में स्वाधीनता का अमृत प्रसारित करते हैं-

जागो फिर एक बार ।
समर में अमर कर प्राण,
गान गाये महासिन्धु-से

सिन्धु-नद-तीरवासी ।
सैन्धव तुरंगों पर
चतुरंग चमू संग;
''सवा-सवा लाख पर
एक को चढ़ाऊँगा,
गोविन्द सिंह निज
नाम जब कहाऊँगा ।''

किसने सुनाया यह
वीर-जन-मोहन अति
दुर्जय संग्राम-राग,
फाग का खेला रण
बारहों महीनों में ?
शेरों की माँद में,
आया है आज स्यार-
जागो फिर एक बार ।''18

कविता की अगली पंक्ति मुक्ति के उल्लास से अनुप्राणित है-

मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द-रूप।
महामन्त्र ऋषियों का
अणुओं-परमाणुओं में फूँका हुआ-
तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज-भर भी है नहीं,
पूरा यह विश्व-भार
जागो फिर एक बार ।"19

निराला शोषित कृषकों के पक्षधर थे । उन्होंने राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्र में इस चेतना को उभारा है -

''हँसते हैं छोटे पौधे लघुभार—
शस्य अपार,
हिल-हिल,
खिल-खिल
हाथ हिलाते,

तुझे बुलाते,
विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते ।

रुद्ध कोष, है क्षुब्ध तोष
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल ।
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर ।
चूस लिया है उसका सार,
हाड़-मात्र ही है आधार,
ऐ जीवन के पारावार ।''[20]

'विप्लव रव' देश के साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन तंत्र एवं देशी सामंती ढांचे दोनों के विरुद्ध आतंककारी है । यह आतंक (विप्लव) स्वाधीन भारत की प्राप्ति का प्रयत्न है । निराला ज्ञान का प्रकाश जमींदार वर्ग से निकालकर सर्वहारा तक ले जाने के लिए संकल्पित थे । यह ज्ञान ब्राह्मणों की शास्त्र की जकड़बंदी अर्थात् धर्म की गुलामी एवं जमींदारी शोषण दोनों से मुक्त है । निराला आह्वान करते हैं-

''जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ ।
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ ।''[21]

छायावाद के जागरण गीतों की परंपरा में एक स्वर महादेवी का भी है । महादेवी की गीतों की करुणा का संबंध आत्म से अधिक लोकव्यापी धरातल पर स्थित है । छायावाद के दौर में लिखे गए राष्ट्रीय भावना से संपन्न रचनाकर्म के विषय में महादेवी का कथन है - ''राष्ट्रीय भावना को लेकर लिखे गए जय-पराजय के गान स्थूल धरातल पर स्थित सूक्ष्म अनुभूतियों पर जो मार्मिकता ला सके हैं । वह किसी और युग के राष्ट्रगीत दे सकेंगे या नहीं इसमें संदेह है ।''[22]

महादेवी ने देशवासियों को आत्म-केंद्रित घेरे से बाहर निकालकर संपूर्ण भारत के विषय में चिंतन के लिए प्रेरित किया । महादेवी आह्वान करती है-

''चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना ।
जाग तुझको दूर जाना ।''[23]

भारत की पराधीन स्थिति का दर्द सुमित्रानंदन पंत अपने ढंग से व्यक्त करते हैं । पंत की प्रसिद्ध कविता 'भारतमाता' इसका साक्ष्य है-

"भारतमाता
ग्रामवासिनी ।
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल,
गंगा यमुना में आँसू जल,
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी ।"[24]

इस कविता की पूरी यात्रा भारत के अतीत की महानता,वर्त्तमान की दुर्दशा और भविष्य की मंगलकामना से आपूरित है । छायावादी रचनाकारों ने 'स्वाधीनता' के अमृत मंत्र को भारत के विशाल जनसमुदाय तक ले जाकर राष्ट्रीय आंदोलन को जनवाणी बनाया । आजादी के स्वप्न को आंदोलनधर्मी बनाकर कैसे यथार्थ में बदला जा सकता है इन सम्भावनाओं का सुखद संधान किया । प्रकृति के प्रतीकों के द्वारा समाज और राष्ट्र को प्रकृति की तरह स्वाधीन भाव से सम्पन्न करने के संकल्प को प्रज्ज्वलित किया । छायावाद ने विदेशी गुलामी, सामन्तीय गुलामी और मानसिक गुलामी की छाया से मुक्त भारत की रूपरेखा को गहरी संवेदनशीलता के साथ शब्द दिये । छायावादी कविता का पाठ हमें देश प्रेम को अतिरिक्त प्रदर्शन के बिना मौलिक जीवनबोध से अपनाने की सीख देता है । यह काव्य शक्ति को स्वयं में तलाशने की जीवंत प्रक्रिया से हमें जोड़ती है- 'शक्ति की करो मौलिक कल्पना' ।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, पाँचवा संस्करण-1990, पृष्ठ-17
2. आजकल पत्रिका, स्वर्ण जयंती अंक-1994, प्रकाशन विभाग, सीजीओ काम्पलेक्स लोधी रोड़, नई दिल्ली-110003, पृष्ठ-4
3. राग-विराग, सं.-रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन महात्मा गांधी मार्ग, सिविल लाईन प्रयागराज, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश-211001, नवम संस्करण-1984, पृष्ठ-19
4. मैनेजर पांडेय, संकलित निबन्ध, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, बसंत कुंज, नई दिल्ली-110070, पहला संस्करण, पृष्ठ-247
5. हिंदुस्तान की कहानी, जवाहरलाल नेहरू, सस्ता साहित्य मंडल, प्रथम मंजिल, एन-77, क्नॉट पलेस, नई दिल्ली-110001, संस्करण-2012, पृष्ठ-415
6. हिंदी साहित्य उद्भव और विकास - हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, छठा संस्करण-1990, पृष्ठ-236
7. वही, पृष्ठ-237

8. आधुनिक साहित्य – आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती भंडार प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–1965, पृष्ठ–22
9. छायावाद – नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, पाँचवा संस्करण–1990, पृष्ठ–73
10. स्कन्दगुप्त – जयशंकर प्रसाद, अनीता प्रकाशन, 1680/8, नई सड़क मार्ग, रोशनपुरा, चाँदनी चौक, नई दिल्ली–110006, पृष्ठ–155–156
11. वही, पृष्ठ–156
12. चन्द्रगुप्त – जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, संस्करण, पृष्ठ–108
13. छायावाद – नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, पाँचवा संस्करण–1990, पृष्ठ–78
14. चन्द्रगुप्त – जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, 1–बी नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली–110002, संस्करण–1994, पृष्ठ–157
15. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास – रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, सिविल लाईन, प्रयागराज, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश–211001, सोलहवां संस्करण–2002, पृष्ठ–113
16. निराला संचयिता – रमेशचन्द्र शाह, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरिया गंज, नई दिल्ली–10002, द्वितीय संस्करण–2010, पृष्ठ–85
17. वही, पृष्ठ–86
18. राग–विराग, सम्पादक – रामविलास शर्मा, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, सिविल लाईन, प्रयागराज इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश–211001, नवम संस्करण–1984, पृष्ठ–58
19. वही, पृष्ठ–59–60
20. वही, पृष्ठ–56
21. वही, पृष्ठ–137
22. सात भूमिकाएं – महादेवी, सम्पादक – दूधनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण–2013, पृष्ठ–46
23. महादेवी साहित्य भाग–1, सम्पादक – निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरिया गंज नई दिल्ली–110002, संस्करण–2007, पृष्ठ–280
24. आजादी की अग्निशिखाएँ, चयन एवं संयोजन – शिवकुमार मिश्र, इंडियन फार्मर्स फर्टिलाइजर को–आपरेटिव लिमिटेड, नहरू प्लेस, नई दिल्ली–110019, द्वितीय संस्करण–1998, पृ. 108

दक्खिनी हिंदी साहित्य के विभिन्न आयाम

डॉ. प्रवीणकुमार चौगुले

प्रास्ताविक – दक्खिनी हिंदी वर्तमान खड़ीबोली का ही एक रूप है । प्रारम्भ में विभिन्न क्षेत्रों में खड़ीबोली के तीन नाम प्रचलित थे– हिन्दवी, हिन्दी और दक्खिनी । दक्षिण के मुसलमान जिस हिन्दी या हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं, उसे दक्खिनी हिन्दी या केवल दक्खिनी अथवा दखिनी नाम दिया गया है । कुछ विद्वान इसको सरल दक्खिनी उर्दू अथवा हिन्दुस्तानी भी कहते हैं । दक्खिनी हिंदी बड़ौदा, बरार, कोचीन, कुर्ग, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश), मद्रास, मैसूर, ट्रावनकोर और मध्य प्रदेश के कुछ भागों में बोली जाती रही । डॉ. बाबूराम सक्सेना ने दक्खिनी हिंदी के विषय में पर्याप्त गंभीर अध्ययन और विवेचन किया है । उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि खड़ीबोली के विकास और संवर्धन में दक्षिणी रियासतों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण योग देकर उसे मुगल साम्राज्यकालीन राष्ट्रभाषा का रूप देने का प्रयत्न किया था ।

'दक्खिनी' नामकरण – 'दक्खिनी' नाम के पिछे ऐतिहासिक कारण है । अलाउद्दीन खिलजी से लेकर मोहम्मद तुगलक तक ने किसी–न–किसी रूप में दक्षिण पर अधिकार बनाए रखा । परंतु फिरोजशाह के समय में दक्षिण इस प्रभाव से पूर्णतः मुक्त हो गया । वहाँ छोटी–छोटी रियासतें कायम हो गईं । इनके संस्थापक प्रमुख रूप से उत्तर भारत के मुसलमान सरदार ही रहे । दक्षिण की भाषाएँ उनके लिए अपरिचित थीं । वे उत्तर भारत की अपनी भाषा हिंदी का ही प्रयोग करते रहे । ये छोटे–छोटे राज्य हिंदी के साहित्यकारों को संरक्षण देते रहे । इय युग की और एक विशेषता यह थी कि इस समय में भारतीय मुसलमान ही नेतृत्व में थे , फिर भी स्थानीय राजपूत, जाट, बनिया, कायस्थ आदि जातियों के हिंदुओं की संख्या भी कम नहीं थी । ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों में पूर्वी पंजाब और पछाँह के गूजरों की संख्या अधिक थी, क्योंकि दक्खिनी हिंदी को उसके कवि लोग 'भाका' या 'भाखा' बोलते थे और 'गूजरी' नाम भी देते थे । उसके बाद 17वीं शताब्दी में जब औरंगजेब ने पुनः दक्षिण पर विजय प्राप्त की, तब वे साहित्यकार तितर–बितर हो गए । उनकी भाषा वहीं बनी रही । हैदराबाद में निजामशाही की स्थापना हो जाने पर इन साहित्यकारों को पुनः प्रश्रय प्राप्त हो गया । इस भाषा का संबंध प्रमुख रूप से दक्षिणी राज्यों से था, इसी कारण इसे 'दक्खिनी' नाम से पुकारा गया । उस समय यह भाषा धर्म–प्रचार एवं व्यापार की भाषा बन गई थी और व्यापारियों एवं दरवेशों की भाषा बन जाने के कारण उत्तर भारतीयों और दक्षिण भारतीयों की सम्पर्क भाषा भी बन गई ।

'दक्खिनी' का विकास – तत्कालिन युग में हिंदू संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश में साहित्य रचते थे और साहित्य के क्षेत्र में मुसलमानों ने सर्वप्रथम इस बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया । मुस्लिमम संत और फ़कीर अपने धर्म–प्रचार का कार्य इसी भाषा में करते थे । 13वीं शताब्दी में मुसलमान संतों ने इसी भाषा में कविताएँ लिखीं । अमीर खुसरो इन्हीं में से एक थे । यह क्रम 15वीं शताब्दी तक चलता रहा । जन–साधारण के समझने लायक किस्से–कहानियाँ विदेशी हिंदी में ही लिख देते थे । इन दिनों हिंदी ही उत्तर भारत की

व्यापक बोलचाल की भाषा थी । यह विदेशी परम्परा खड़ीबोली को साथ लेकर 14वीं शताब्दी में दक्षिण गई । वहाँ मुस्लिम फौजों, संतों और दरवेशों के माध्यम से यह पनपी । दक्षिणी प्रदेशों में फैले हुए मुसलमानों के लिए यह हिंदी ही उत्तर भारत के साथ परंपरागत संबंध स्थापित करने का एकमात्र साधन थी । इसीलिए दक्षिण की सभी सल्तनतों ने इसकी वृद्धि में योग प्रदान किया । दक्खिनी हिंदी देवनागरी और फ़ारसी दोनों लिपियों में लिखी जाती थी । फारसी लिपि में लिखनेवाले कवियों में ख्वाजा बंदेनवाज, शाहमीराँजी, निजामी, वजही, गवासी, हाशमी, बहरी, वली औरंगाबादी आदि हैं, तो देवनागरी में लिखनेवाले कवियों में गोरखनाथ, दामोदर पंडित, नामदेव, ज्ञानेश्वर, गोंदाबाई, जनाबाई, संत एकनाथ, तुकाराम, श्री. माणिक प्रभु, मार्तंड माणिक प्रभु आदि हैं । 18वीं शताब्दी तक दक्खिनी के सभी साहित्यकार मुसलमान हुए थे, लेकिन आसफ़जाही के राज्य में मोहनलाल मेहताब, लाला लक्ष्मीनारायण शफीक आदि कुछ हिंदुओं ने भी दक्खिनी में रचनाएँ कीं । 20वीं शताब्दी तक हैदराबाद ही इस भाषा का एकमात्र पोषक रह गया और इस समय तक यह भाषा अपना स्वाभाविक रूप छोड़कर उर्दू का रूप धारण कर चुकी थी ।[1] 'दक्खिनी' की अपनी विशेषताएँ लुप्त होने लगीं और उन पर फ़ारसी का गहरा रंग चढ़ गया । इस प्रकार 20वीं शताब्दी तक आते-आते इस भाषा ने उर्दू का रूप धारण कर लिया, फिर भी कतिपय कविगण दक्खिनी को अपनाते रहे और इन कवियों में हलम और अजमत के नाम उल्लेखनीय हैं ।

दक्खिनी हिंदी साहित्य के विभिन्न आयाम - दक्खिनी हिंदी साहित्य के संदर्भ में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'दक्खिनी हिंदी काव्य धारा' और डॉ. बाबूराम सक्सेना की 'दक्खिनी हिंदी' विशेष उल्लेखनीय कृतियाँ हैं । इसके साथ ही नासिरूद्दीन हाश्मी, डॉ. सैयद मुहीउद्दीन कादिरी 'जोर', श्री. अब्दुल कादिर सर्वरी, डॉ. श्रीराम शर्मा, डॉ. राजकिशोर पाण्डेय, श्री बृजबिहारी तिवारी आदि के प्रयास से दक्खिनी का हिंदी साहित्य पर्याप्त मात्रा में प्रकाश में आया है ।

दक्खिनी हिंदी साहित्य का आदिकाल (1400-1500 ई.) - दक्खिनी हिंदी के प्रथम कवि ख्वाजा बन्देनवाज (1343 ई.) माने जाते हैं, जो फीरोजशाह बहमनी के शासन काल में हो गए हैं । इन्हें बन्देनवाज (भक्तवत्सल) और गेसूदराज (लंबे बालों वाला) के नाम से पहचाना जाता है । 'चक्कीनामा' (पद्य), मेराजनामा (गद्य) से पारा (गद्य) इनकी किताबें हैं । उनकी कुछ रिसाले (गद्यग्रंथ) हैं- 'रिसाला सेहवारा', 'मीराजुल आशिकेन' और 'शिकारनामा', जिनमें भक्ति की विवेचना है । इसके अतिरिक्त 'रूबाईयाँ', 'हकीकत रामकली', 'नआत', 'मुखम्मस', 'दुररे असरार' आदि रचनाओं का भी उन्होंने सृजन किया । दक्खिनी के कवि शाहमीराँजी मक्का से धर्मप्रचार के लिए भारत आए थे, जिन्होंने 'खुशनामा' और 'शहादतुल हकीकत' रचनाएँ लिखी । दक्खिनी के और एक उल्लेखनीय कवि हैं निजामी, जिन्होंने 'कदमराव अउर पद्म' नामक रचना का लेखन किया । यह एक ऐहिक प्रेमजीवन पर आधारित मस्नवी खण्डकाव्य है । तत्कालीन सल्तनत में मराठों की क्या स्थिति थी, यह कदमराव और पद्मिनी की इस कहानी से स्पष्ट होता है । इस काव्य में तत्सम और तद्भव शब्दों की बहुलता है । दक्खिनी हिंदी साहित्य के आदिकाल के लेखकों में अशरफ़, बुरहानुद्दीन जानम, एकनाथ, शाहअली, मुल्ला वजही आदि प्रसिद्ध हैं । इनकी भाषा में हिंदी शब्दों का बाहुल्य है ।

दक्खिनी हिंदी साहित्य का मध्यकाल (1500–1657 ई.) – मध्यकाल के प्रसिद्ध रचनाकारों में मुहम्मद कुल्ली, अब्दुल, अमीन, तुकाराम, अब्दुल्ला कुतुब, रूस्तमी, निशाती आदि आते हैं । 17वीं सदी दक्खिनी का सुवर्णकाल मानी जाती है । इस कालखंड के वजही, हसन शौकी, गवासी और नुस्त्राती आदि कवियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । दक्खिनी हिंदी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ 'सबरस' के लेखक हैं वजही, जिसे उनकी मौलिक कृति नहीं मानी जाती, किंतु वह अपने कवित्वपूर्ण गद्य के कारण विशेष महत्व रखती है । इसकी कथा 'किस्से की असल' पर आधारित है । इसमें रूपक के द्वारा 'तसव्वुफ़' की बातें बयान की गई हैं । इसे छोड़कर वजही का और एक काव्य-ग्रंथ है 'कुतुबमुश्तरी', जिसमें बंगाल की राजकुमारी मुश्तरी और अपने संरक्षक इब्राहीम कुतुबशाह के उत्तराधिकारी मुहम्मद कुल्ली कुतुब के काल्पनिक प्रेम का वर्णन किया गया है । मुहम्मद कुल्ली ने दक्खिनी को फ़ारसी के प्रभाव से मुक्त रखा । गोलकुंडा के कवि मुल्ला गवासी का 'सबरस' नामक गद्यग्रंथ सन 1557 में लिखा गया और पर्शियन और नागरी लिपियों में संपादित और प्रकाशित हो चुका है । गवासी के तीन काव्यग्रंथ – मस्नवियाँ, बीस कसीदे, एक सौ अड़तीस गजलें और कई संकीर्ण कविताएँ हैं । गवासी की एक मस्नवी 'मैना सतवंती' प्रकाशित है और अन्य मस्नवियाँ 'सैफुल्मुलूक' और 'तोतीनामा' फ़ारसी लिपि में प्रकाशित हुई हैं । इब्राहिम आदीलशाह दूसरा स्वयं कवि, संगीतकार, रसिक और सहिष्णु व्यक्ति थे । उनकी रचना 'नौ रस' विख्यात है । इब्राहिम आदीलशाह का चरित्रलेखन दिल्ली निवासी कवि अब्दुल ने किया है । वे अपनी भाषा का उल्लेख 'हिंदूई' नाम से करते हैं । आगे वे कहते हैं, मैं दिल्ली का रहनेवाला हूँ और अरबी-फ़ारसी भाषाओं से मेरा कोई संबंध नहीं है ।

दक्खिनी हिंदी साहित्य का उत्तरकाल (1657–1840 ई.) – इस काल के लेखकों में नुस्त्राती, तबई, गुलाम अली, वली दकनी, वली वेल्लोरी, हाशिम अली आदि प्रसिद्ध हैं । वली की भाषा में हिंदी शब्दों का बाहुल्य है । दक्खिनी के बहुत सारे कवियों ने अरबी-फ़ारसी छंदों को अपनाया था, किंतु इनकी भाषा में हिंदी ही प्रधान रही । वली पहले दक्खिनी में ही काव्य-सृजन करते थे, इसलिए लोग उन्हें 'बाबए रेख्त:' कहते थे । वली का असली नाम महंमद वलीउल्ला था, जिसे वली दकनी के नाम से भी जाना जाता है । दक्खिनी की परंपरा के अंतिम कवि के रूप में भी इनका नाम आता है । वली की कविता का एक उदाहरण दृष्टव्य है –

"बिरागी जो कहाते हैं उसे घर बार करना क्या ।
हुई जोगिन जो कोई पी की उसे संसार करना क्या ॥
जो पीवे पिर्त (प्रीत) का पानी उसे क्या काम पानी सों ।
जो भोजन दुख का करते हैं उसे आधार करना क्या ॥"[2]

साथ ही वली ने अपनी माशूका का वर्णन इन शब्दों में किया है –

"तुझ चाल की कीमत सों नहीं दिल है मेरा वाकिफ़
ऐ नाज भरी चंचल टूक भाव बताती जा ।
इस रैन अंधेरी में मत भूल पडू तिस सों

टूक पाव के विछुओं की आवाज सुनाती जा ।
मुझ दिल के कबुतर को पकड़ा है तेरी लट ने
यह काम धरम का है टूक इसको छुड़ाती जा ॥''

वली ने दिल्ली यात्रा की थी और उसके प्रभाव से दिल्लीवालों ने फ़ारसी छोडकर हिंदी में लिखना शुरू किया । वली के बारे में मशहूर शायर मीर तकी 'मीर' ने लिखा है –

''खूगर नहीं कुछ यू ही हम रेखत: गोई के
माशूक जो था अपना बाशिंद: दकिन का था ।''[3]

नुस्त्रती की कई रचनाएँ उपलब्ध हैं, जिसमें 'गुलशने हक', 'अलीनामा' और 'तारीखे इस्कंदरी' विशेष प्रसिद्ध है । इनके साथ उनकी कुछ ग़ज़लें 12 कसीदें और एक मर्सिया भी उपलब्ध है । 'अलीनामा' ऐतिहासिक काव्यग्रंथ है, जिसमें युद्ध का वर्णन मिलता है । 'तारीखे इस्कंदरी' यह 554 बैतों का छोटासा किंतु महत्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रंथ है । नुस्त्रती की रचनाओं में महाराष्ट्र, छत्रपति शिवाजी, महाराष्ट्र के गढ़ तथा किलों का वर्णन मिलता है । शाह तुराब की रचना 'मनसमझावन' समर्थ रामदास के 'मनाचे श्लोक' की तर्ज पर लिखी हुई है । इस रचना पर मराठी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । साथ ही इस काल के प्रमुख रचनाकारों में काजी महमूद बहरी एवं शाहमियाँ तुराब भी उल्लेखनीय हैं ।

1840 के बाद आधुनिक काल में दक्खिनी समन्वय की भाषा बनी । इस काल में संपर्क भाषा के रूप में दक्खिनी रही, किंतु राजकाज की भाषा के रूप में उर्दू ही कार्यरत थी । श्री माणिकप्रभु इस काल के लोकप्रिय कवि हुए । धार्मिक तथा सामाजिक समन्वय स्थापित करने हेतु उन्होंने दत्तभक्ति का नया संप्रदाय 'सकलमत संप्रदाय' की स्थापना की । इस काल के अन्य कवियों में श्री मार्तण्ड प्रभु, श्री मनोहर प्रभु, सुलेमान खतीब आदि कवियों की अनेक श्रेष्ठ कविताएँ भी लिखी गईं ।

दक्खिनी हिंदी की कहावतें – दक्खिनी हिंदी की कुछ अपनी कहावतें भी हैं, जिन पर प्रांतीय भाषाओं का प्रभाव स्पष्ट है । कुछ कहावतें इस प्रकार हैं –

1. अपना सुंदर दूसरों का जंगली बंदर ।
2. मुँह का मीठा हाथ का झूठा ।
3. खिला तो फूल नहीं तो धूल ।
4. सौ गज वारूँ एक गज न फाडूँ ।
5. जैसा सूत वैसी फेंटी, जैसी माँ वैसी बेटी ।
6. किसी को तवे में दीखे, किसी को आरसी में ।

दक्खिनी हिंदी की पहेलियाँ – दक्खिनी हिंदी साहित्य की कुछ कमाल की पहेलियाँ इस प्रकार हैं –

1. इत्ते सरके टिल्लूमियाँ
   गजमर की दुम
   भाग गए टिल्लूमियाँ
   सपड़ गई दुम
   – (सूई)

2. हरी गुंबज सुफेद खाने
   उसमें बैठे सिद्दी दिवाने
   – (सीताफल)

3. आहाकी थैली में ऊहँ के दाले
   – (मिर्च)[4]

दक्खिनी हिंदी का नाट्य-साहित्य – भोसला वंश के मालोजी के पौत्र एकोजी के पुत्र महाराज शाहजी (सन 1684-1712) ने हिंदी में 'राधाबनसी धर विलास नाटक' और 'विश्वातीत विलास नाटक' नाम से दो 'यक्षगान' लिखे हैं । इन हिंदी 'यक्षगानों' की चार पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हैं, जिनमें तीन तेलुगु लिपि में हैं, तो एक देवनागरी लिपि में । इन यक्षगानों की विशेषता यह है कि हिंदी भाषा को कर्नाटक रागरागिनियों में निबद्ध करने का सफल प्रयास इनमें हुआ है ।

महाराष्ट्र की नाटक कंपनियों ने सन 1880 और 1885 में आंध्र प्रदेश में भ्रमण कर टूटी-फूटी हिंदी में ही क्यों न हो नाटक विधा एवं हिंदी भाषा के प्रति रूचि पैदा कराने का काम किया । मछिलीपट्टणम के 'नेशनल थिएट्रिकल सोसायटी' ने 1886 से प्रारंभ कर 10-15 वर्षों तक हिंदी नाटकों को अभिनीत करवाया । इन हिंदी या हिन्दुस्तानी नाटकों के प्रणेता थे श्री. नादेल्ल पुरूषोत्तम कवि । इस महापुरूष ने सन 1886 से 1888 तक 32 हिंदी नाटक लिखे हैं । पर दुर्भाग्यवश अब 6 नाटक संपूर्ण रूप में और 8 नाटकों के गीत मात्र उपलब्ध हैं । ये सभी नाटक तेलुगु लिपि में लिखे गए हैं । इन नाटकों की पाण्डुलिपियाँ इस समय उस्मानिया विश्वविद्यालय के शोधकर्ता तथा वरंगल आर्ट्स कॉलेज के प्राध्यापक श्री. भीमसेन 'निर्मल' के पास हैं ।[5] अभी इन नाटकों पर शोधकार्य चल रहा है और आशा है कि निकट भविष्य में दक्खिनी हिंदी के गद्य साहित्य की एक विस्तृत कड़ी का सुष्ठु रूप दृष्टिगत होगा और इसके साथ ही हिंदी नाटक साहित्य के अज्ञातप्राय पक्ष पर प्रकाश पड़ेगा ।

'दक्खिनी' से 'उर्दू' : शैली परिवर्तन – 'दक्खिनी' की शैली भारतीय परंपरा से प्रभावित थी । उत्तर भारत में उन दिनों हिंदू-मुस्लिम या भारतीय-ईरानी एक नई मिली-जुली सभ्यता की नींव ड़ाली गई थी । दक्खिन में बसे हुए उत्तर भारतीय पंजाबी और पछाँही मुसलमान, जो अपनी क्षात्र, प्रचार एवं अधिकार शक्ति के कारण वहाँ के समाज के लोग बने, उत्तर भारत से जिस लोक-साहित्य को अपने साथ ले गए थे, उसी के आधार पर, इस्लामी सूफ़ी-दर्शन और रहस्यवाद का रंग उस पर चढ़ाकर, एक अभिनव साहित्य-शैली का प्रवर्तन करने लगे । धीरे-धीरे उसका रूप फ़ारसी परंपरा के अनुरूप हो गया । शैली की दृष्टि से विवेचन करें तो वली औरंगाबादी की दिल्ली यात्रा के पूर्व की शैली सरल, शुद्ध एवं खड़ीबोली का प्रारम्भिक रूप है । इसमें अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग कम है । संस्कृत के तद्भाव रूप ही प्रायः प्रयुक्त हुए हैं और साथ ही देशी शब्दों की बहुलता है । किंतु वली साहब की दिल्ली यात्रा के पश्चात् शैली का दूसरा रूप आरम्भ होता है । वह अरबी-फ़ारसी के रंग से सराबोर थी । उसकी मौलिकता एवं स्वतंत्रता जाती रही । धार्मिक पक्षपात के जोश में वली साहब द्वारा चलाई गई विदेशी शब्द प्रधान यह शैली खूब पनपी और कालान्तर में

'दक्खिनी' ने 'उर्दू' का रूप धारण कर लिया । डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्जया के अनुसार– ''हम दक्खिनी हिंदी साहित्य को उर्दू तथा हिंदी के खड़ीबोली से संबंधित साहित्य का आदि रूप कह सकते हैं । यह साहित्य धारा वर्तमान हिंदी और उर्दू साहित्य का उत्पत्ति स्थान है । उत्तर भारत से दक्खिन में जाकर यह प्रौढ़ बना फिर समग्र उत्तर भारत पर, दिल्ली की भाषा के सहारे इसका प्रभाव फैला ।''[6]

गवासी के साहित्य में हिंदी के शब्द अधिक पाए जाते हैं और इस समय के समस्त ग्रंथों के बारे में ऐसा ही कहा जा सकता है । लेकिन वली तक आते-आते इस भाषा पर फ़ारसी का रंग चढ़ा दिया गया और वली की इसी प्रवृत्ति के कारण उन्हें 'उर्दू का बाबा आदम' की पदवी से विभूषित किया गया और जन-साधारण की भाषा 'रेखता' हिंदी से फारसी-गर्भित बन कर उर्दू के रूप में प्रतिष्ठित हो गई ।[7]

निष्कर्ष – निष्कर्षतः उपर्युक्त विवेचन में दक्खिनी हिंदी साहित्य के विभिन्न आयाम स्पष्ट हो जाते हैं । 13वीं शती से 19वीं शती तक जनभाषा के रूप में इसे लोगों ने स्वीकारा था और इस भाषा ने लगातार अपना अस्तित्व बनाए रखा था । कई राजाओं ने इसे कामकाजी भाषा के रूप में स्वीकृत किया था । निश्चय ही दक्खिनी भाषा एवं साहित्य का महत्व अक्षुण्ण है । दक्खिनी हिंदी साहित्य उर्दू तथा हिंदी के खड़ीबोली से संबंधित साहित्य का आदि रूप ही है । समाज को हमेशा संतों, महापुरूषों एवं साहित्यकारों से मार्गदर्शन मिलता रहता है । इन साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से सांप्रदायिक एकता पर बल दिया । भक्ति, प्रेम, एकता की भावना को लेकर इन रचनाकारों ने समाज का प्रबोधन किया । दक्खिनी हिंदी के साहित्यकारों के विचार, उनके उपदेश जनता को सही दिशा में मार्गक्रमण हेतु प्रेरित करते हैं । और इसीलिए उनके विचारों की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है ।

संदर्भ

1. डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, (आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, द्वितीय संस्करण, 1978) पृ. 113.
2. रजत जयन्ती ग्रन्थ, (वर्धा, मोहनलाल भट्ट, मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति : प्रथम संस्करण, मई, 1962) पृ. 68.
3. संपा. डॉ. बळीराम भुक्तरे, डॉ. मंगल कप्पीकेरे, दक्खिनी हिंदी, (कानपुर, पूजा प्रकाशन, प्रथम संस्करण, जुलाई, 2015) पृ. 45.
4. रजत जयन्ती ग्रन्थ, (वर्धा, मोहनलाल भट्ट, मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति : प्रथम संस्करण, मई, 1962) पृ. 68-69.
5. वही, पृ. 70, 73.
6. वही, पृ. 67.
7. डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, हिंदी भाषा और साहित्य का इतिहास, (आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर : द्वितीय संस्करण, 1978) पृ. 115.

गुजराती साहित्य के भारतेंदु - कवि नर्मद

डॉ. उर्मिला पोरवाल

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिन्दी साहित्य जगत के एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जिन्होंने गद्य की लगभग समस्त विधाओं से लेकर कविता, नाटक और पत्रकारिता तक हिन्दी का नक्शा बदलकर रख दिया । इसका सबसे बड़ा प्रमाण है भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाम पर ही हिन्दी साहित्य में एक युग का नामकरण, भारतेंदु युग । रोचक बात यह है कि यह हिन्दी साहित्य के इतिहास का पहला युग है जिसका नामकरण किसी रचनाकार के नाम पर हुआ ।

देशकाल वातावरण पर विचार किया जाए तो भारतेंदुजी के जीवनकाल का समय था सन् 1850–1885 तक । 1850 के आसपास के भारत में भ्रष्टाचार, प्रांतवाद, अलगाववाद, जातिवाद और छुआछूत जैसी समस्याएं अपने चरम पर थीं । इसी समय अंग्रेजी हुकूमत ने भारत में मजबूती से अपने पाँव पसार लिए थे । अतः भारतेंदु का समय भारतीय संस्कृति और पश्चिमी संस्कृति के संक्रमण का काल था । अब प्रश्न उठता है कि संक्रमण काल क्या है ? सरल शब्दों में कहें तो यह एक सांस्कृतिक आदान-प्रदान की प्रक्रिया है । यही नवजागरण चेतना है ।

देखा जाए तो उस समय का भारतीय समाज जहाँ एक ओर आध्यात्म जैसी अच्छाईयों के साथ ही धर्मिक संकीर्णता, अंधविश्वास, जातिवाद जैसी बुराइयों की जंजीरों से जकड़ा हुआ था तो वहीं दूसरी ओर पश्चिमी देश वैज्ञानिकता, तार्किकता, मानवतावाद जैसी अच्छाइयों से समृद्ध थे ।

हरिश्चंद्र बाबू को ये समस्याएं एवं बुराइयों की जंजीरें कचोटती थीं, इसलिए उन्होंने इन समस्याओं को अपने नाटकों, प्रहसनों और निबंधों का विषय बनाया, वे उन चुनिंदा शुरुआती लोगों में से थे जिन्होंने साहित्यकारों से आह्वान किया कि वे इस दुनिया की खूबियों-खामियों पर लिखें न कि परलोक से जुड़ी व्यर्थ की बातों पर अपनी मंडली के साहित्यकारों की सहायता से उन्होंने नए-नए विषयों और विधाओं का सृजन किया । कुल मिलाकर उन्होंने पुरानी प्रवृत्तियों का परिष्कार कर नवीनता का समावेश करने की कोशिश की । भारतेंदु जी के साहित्य में यह स्पष्ट रूप से दिखता है कि वो नवजागरण चेतना के पक्षधर थे और चाहते थे कि हम पश्चिम की अच्छाइयों को अपनाएँ । अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' में उन्होंने लिखा भी है-

''देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआ चला आता है ।''

नवजागरण चेतना को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि जब दो भिन्न संस्कृतियों का संक्रमण होता है तो दूसरी संस्कृति की अच्छाइयों को ग्रहण करने और अपनी संस्कृति की बुराइयों को छोड़ने की प्रक्रिया ही नवजागरण चेतना है । सर्वविदित है कि आधुनिकता नवजागरण का ही परिणाम है, और भारतेंदु युग से हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का उदय होता है । आधुनिकता परलोक की जगह इहलोक को, भावुकता की जगह वैज्ञानिकता को और आस्था की जगह तर्क को अधिक महत्व देती है । भारतेंदु ने विषयवस्तु के स्तर पर हिन्दी साहित्य में आधुनिकता का समावेश किया ।

भारतेंदु जी ने मात्र 34 वर्ष चार महीने की छोटी सी आयु में दुनिया को अलविदा कह दिया था, लेकिन इतनी कम उम्र में ही उन्होंने हिन्दी साहित्य के चहुँमुखी विकास में इतना अतुलनीय योगदान दिया कि आश्चर्य होता है कि कोई इंसान इतनी छोटी सी जीवन यात्रा में इतना कुछ कैसे कर सकता है, हमें मालूम हो या न हो लेकिन यह सच है कि आज का हिन्दी साहित्य जिस मुकाम पर खड़ा है उसकी नींव का ज्यादातर हिस्सा भारतेंदु हरिश्चंद्र और उनकी मंडली ने खड़ा किया । उनके साथ 'पहली बार' वाली उपलब्धि जितनी बार जुड़ी है, उतनी बहुत ही कम लोगों के साथ जुड़ी, इसलिए कई आलोचक उन्हें हिंदी साहित्य का महान 'अनुसंधानकर्ता' भी मानते हैं । भारतेंदु ने न केवल नई विधाओं का सृजन किया बल्कि वे साहित्य की विषय-वस्तु में भी नयापन लेकर आए और आलोचक इनको आधुनिक हिन्दी साहित्य का पितामह कहने से खुद को नहीं रोक पाए । आधुनिक हिन्दी के पितामह जिनकी जिंदगी लंबी नहीं बड़ी थी ।

गुजराती भाषा की शास्त्र सम्मत बात करें तो यह भाषा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में से एक है और इसका विकास शौरसेनी प्राकृत के परवर्ती रूप 'नागर अपभ्रंश' से हुआ है । गुजराती भाषा का क्षेत्र विस्तार देखें तो गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छ के अतिरिक्त महाराष्ट्र का सीमावर्ती प्रदेश तथा राजस्थान का दक्षिण पश्चिमी भाग आता है । भाषा का मानकीकरण करें तो कोई भी बोली भाषा की उपाधि तभी प्राप्त करती है जबकि उसका संपूर्णतया विकसित व्याकरण हो और व्याकरण युक्त परिमार्जित परिवर्धित भाषा का रचनात्मक पक्ष क्रियान्वित होकर अपना व्यक्तिगत इतिहास और साहित्य धीरे-धीरे निर्मित करता जाता है । गुजराती साहित्य की बात करें तो इस साहित्य में मुख्यत: दो युग माने जाते हैं- मध्यकालीन युग और अर्वाचीन युग ।

मध्यकालीन युग में प्राचीन गुजराती साहित्य का इतिहास विशेष समृद्ध नज़र नहीं आता, इसलिए गुर्जर या श्वेतांबर अपभ्रंश की कृतियों को गुजराती की आद्य कृतियाँ माना जा सकता है । ये प्राय: जैन कवियों की लोकसाहित्यिक शैली में निबद्ध रचनाएँ हैं । रास, फाग तथा चर्चरी काव्यों का प्रभूत साहित्य इसमें हमें उपलब्ध होता है, इसके बाद 13वीं 14वीं सदी की कुछ गद्य रचनाएँ मिलतीं हैं, जो एक साथ प्राचीन गुजराती और प्राचीन राजस्थानी की संक्रांतिकालीन स्थिति का परिचय देती हैं । वस्तुत: 16वीं सदी तक अर्थात मीराबाई के समयकाल तक, गुजराती और पश्चिमी राजस्थानी एक अविभक्त भाषा थी । इनका विघटन इसी सदी के आसपास शुरू हुआ था । वैसे तो प्राचीन गुजराती में कुछ गद्य कृतियाँ भी मिलती हैं, लेकिन रचनाओं का अवलोकन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि मध्ययुगीन गुजराती में गद्यशैली का प्रौढ़ विकास नहीं हो पाया था । बहीखाते से ऊपर के स्तर का गद्य गुजराती साहित्य में अनुपलब्ध था ।

यहाँ यह भी प्रमाणित होता है कि अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरह ही ईसाई पादरियों का गुजराती भाषा एवं साहित्य के विकास में भी हाथ रहा । 19वीं सदी के प्रथम चरण में बाइबिल का गुजराती गद्य में अनुवाद प्रकाशित हुआ और ड्रमंड ने 1808 ई. में गुजराती का सर्वप्रथम व्याकरण लिखा । इस प्रकार मध्यकालीन युग में गुजराती साहित्य की विकासशील बाल्यावस्था दृष्टिगत होती है ।

गुजराती साहित्य में नई चेतना का प्रादुर्भाव जिन लेखकों से हुआ, उनमें पादरी जर्विस, नर्मद, नवलराय तथा भोलानाथ आते हैं । लेकिन गुजराती अर्वाचीन चेतना के अग्रदूत के रूप में नर्मद या नर्मदा शंकर जी उभर कर हमारे समक्ष प्रस्तुत होते हैं । गद्य की दिशा में उन्होंने जो पथ प्रदर्शित किया उसी का अनुसरण दयाराम आदि परवर्ती साहित्यकारों ने किया । गुजराती अर्वाचीन साहित्य में कवि नर्मद ठीक वैसे ही मान सम्मान और महत्व रखते हैं जैसे हिन्दी साहित्य में भारतेंदु । जिस प्रकार हिंदी साहित्य में आधुनिक काल के आरंभिक अंश को 'भारतेंदु युग की' संज्ञा दी जाती है, उसी प्रकार गुजराती में नवीन चेतना के प्रथम कालखंड को 'नर्मद युग' कहा जाता है, क्यूंकि गुजराती साहित्य के आधुनिक युग का शुभारंभ कवि नर्मदाशंकर 'नर्मद' से ही होता है । समय की दृष्टि से भी ये भारतेंद्रु के समसामयिक (1833–1886 ई.) थे तथा उन्हीं की तरह सर्वतोमुखी प्रतिभा से समन्वित थे । आधुनिक गुजराती काव्य को नए साँचे में ढालने वाले पहले कवि नर्मद ही हैं जिन्होंने नए सांस्कृतिक जागरण, राष्ट्रीय भावना और सुधारवादी उदात्तता को अपने समय में वाणी दी । इनकी वैचारिक काव्यशैली के आगे पुराने भक्त कवि सामान्य दिखाई पड़ते हैं । नर्मद पाश्चात्य काव्यशैली से पूरी तरह परिचित थे । भारतेंदु की तरह ही वे कर्मठ साहित्यिक थे, जिन्होंने अनेक नए कवियों और लेखकों को प्रेरित और संगठित किया । संपादन और आलोचना के क्षेत्र में भी नर्मद का महत्वपूर्ण योगदान रहा । साथ ही वे गुजराती भाषा के प्रथम निबंधकार, नाटककार और आत्मचरित्र लेखक माने गये । नर्मद के समय ही गुजराती पत्रकारिता का भी उदय हुआ था । नर्मद ने सामाजिक बुराइयों का विरोध करने के लिए 'दांडियो' नाम का एक पत्र निकाला ।

हरिश्चंद्र की तरह ही वे युगप्रवर्त्तक साहित्यकार थे । उन्होंने गुजराती साहित्य को गद्य, पद्य सभी दिशाओं में समृद्धि प्रदान की, सभी विधाओं की रचनाओं द्वारा गुजराती साहित्य का भंडार भर दिया । उन्होंने गद्य में नर्मगद्य, नर्मकोश, नर्मकथाकोश, धर्मविचार जूनृं नर्मगद्य की रचना की । नाटक में सारशाकुंतल, रामजानकी दर्शन, द्रौपदी दर्शन, बालकृष्ण विजय, कृष्णकुमारी आदि की रचना भी की और आवश्यकता होने पर अनुवाद भी किया । कविता में नर्म कविता, हिंदुओनी पडती रचीं । उनकी कविता कहीं कहीं कृत्रिम और गांभीर्यहीन लगती है पर उनमें आवेश का बोध सर्वत्र मिलता है ।

बलराम जैसे मनीषी विवेचकों के मत से उनकी कविता काव्यगुणों में भले ही उत्कृष्ट सिद्ध न हो पर उनके युगनिर्माता व्यक्तित्व को वह पूरी तरह अभिव्यक्त करती है, इसमें संदेह नहीं । 'जय जय गरबी गुजरात', 'सूरत सेनानी मूरत', 'नव करशो कोई शोक', 'सहु चलो जीतवा जंग', 'रण तो धीरानुं धीरानुं' तथा 'दासपणुं क्यां सुधी' इत्यादि काव्यरचनाएँ इसी प्रकार की हैं और उनसे नर्मद के शूर स्वभाव का पूरा परिचय मिलता है । 1500 पंक्तियों का काव्य हिंदूओनी पड़ती उनकी कवित्वशक्ति का अविस्मरणीय उदाहरण है । उसमें उद्बोधन का स्वर सबसे प्रबल है और वह उनकी प्रतिनिधि काव्यकृति कही जा सकती है ।

जय जय गरवी गुजरात (अर्थ : 'गर्व करने योग्य गुजरात की जय हो !') सन 1873 में लिखकर कवि नर्मद ने एक एक नई प्रसिद्धि पाई । आज भी यह बहुत प्रसिद्ध कविता

है, गुजरात सरकार के समारोहों में इस कविता का 'राज्य गान' के रूप में गायन किया जाता है । आत्मकथा मारी हकीकत को तो गुजराती की पहली आत्मकथा होने का गौरव प्राप्त है । महाकाव्य और महाछंदों के स्वप्नदर्शी कवि नर्मद का व्यक्तित्व गुजराती साहित्य में अद्वितीय था और आज भी है । गुजराती के प्रख्यात साहित्यकार मुंशी ने उन्हें 'अर्वाचीनों में आद्य' कह कर सम्मानित किया ।

कवि नर्मद का कृतित्व गुजराती साहित्य के लिए नीव की ईट है तो उनका व्यक्तित्व भी कुल खानदान के लिए मील का पत्थर था । गुजराती के कवि विद्वान एवं महान वक्ता कवि नर्मद का पूरा नाम नर्मदाशंकर लालशंकर दवे था लेकिन रचनाएँ उन्होंने 'नर्मद' नाम से ही लिखी, इसलिए गुजराती साहित्य में नर्मद नाम से प्रसिद्ध हुए, उनका जन्म सूरत के ब्राह्मण परिवार में 24 अगस्त, 1833 ई. को हुआ था । नर्मद के पिता लालशंकर नागर ब्राह्मण थे और मुंबई में मसिजीवी होकर निवास करते थे । फलतः प्राथमिक शिक्षा सूरत में हुई लेकिन नर्मद की माध्यमिक शिक्षा मुंबई के एल्फिंस्टन इन्स्टिट्यूट में संपन्न हुई । उस समय की प्रथा के अनुसार 11 वर्ष की उम्र में ही नर्मद का विवाह हो गया था । सूरत की प्रारंभिक शिक्षा के बाद जब वे मुम्बई में अध्ययन कर रहे थे तभी अपने श्वसुर के आदेश पर गृहस्थी संभालने के लिए उन्हें वापस सूरत में 15 रुपए मासिक वेतन की नौकरी स्वीकार करनी पड़ी । पत्नी के देहावसान के बाद वे फिर मुंबई आए और अपूर्ण शिक्षा को पूर्ण कर पहले शिक्षक बने, फिर साहित्य और पत्रकारिता की दिशा में प्रवृत्त हो गए ।

22 वर्ष की उम्र में उन्होंने पहली कविता लिखी । तब साहित्य के विभिन्न अंगों को समृद्ध करने का क्रम आरंभ हो गया था । कुछ समय तक उन्होंने मुम्बई में अध्यापन का काम किया, पर वहाँ का वातावरण अनुकूल न पाकर उन्होंने उस काम को त्याग दिया और 23 नवंबर, 1858 को अपनी कलम को सम्बोधित करके बोले ''लेखनी अब मैं तेरी गोद में हूँ ।''

24 वर्षों तक वे पूरी तरह से साहित्य सेवा में ही लगे रहे । पहले उनकी रचना के विषय ज्ञान भक्ति वैराग्य आदि हुआ करते थे । उन्होंने 'मसिजीवी' होकर लेखनी द्वारा 'असिधाराव्रत' का एकनिष्ठता के साथ निर्वाह किया । इस काल में उन्हें कभी-कभी विषम आर्थिक संघर्ष करना पड़ा किंतु साहित्यसाधन से वे उदासीन नहीं हुए । उनके मन में धारणा थी कि गुजराती भाषा में महाकाव्य की रचना की जाए । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने 'वीरसिंह' तथा 'रुदनरसिक' नामक महाकाव्य लिखे पर वे अपूर्ण ही रह गए । उन्होंने 'वीरवृत्त' का सफल प्रयोग किया । पिंगल की दिशा में भी उनका कार्य प्रशंसनीय रहा । प्रकृति स्वतंत्रता आदि विषयों पर रचनाएँ आरंभ करने का श्रेय भी नर्मद को ही जाता है ।

'नर्मद' भारतेंदु के समान एक समाज सुधारक भी थे । उन्होंने 'बुद्धिवर्धक सभा' की स्थापना की थी । अपने साहस और स्वदेशप्रेम से युक्त ओजस्वी भाषणों से उन्होंने पर्याप्त जाग्रति उत्पन्न की । जागरूक योद्धा की तरह देश में व्याप्त आलस्य, संदेह और रूढ़ियों के उच्छेदन में संलग्न हो गए । नर्मद जो कहते, उस पर स्वयं भी अमल करते थे । उन्होंने एक विधवा से विवाह किया और सामाजिक बुराइयों का विरोध करने के लिए 'दांडियो'

नाम का एक पत्र निकाला । गुजराती साहित्य के अमूल्य रत्न नर्मद की मृत्यु 26 फरवरी, 1886 को मुम्बई में हुई । जिस प्रकार भारतेंदु युग से पहले ब्रजभाषा का बोलबाला था । भारतेंदु ने गद्य की भाषा खड़ी बोली निर्धारित की । आगे चलकर द्विवेदी युग में यदि भाषाई द्वैत समाप्त हुआ तो उसकी पूर्णपीठिका भारतेंदु के योगदान को माना जाता है । आज जो खड़ी बोली हम बोलते हैं, वह भारतेंदु की ही देन है । भारतेंदु का मानना था कि-

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को सूल ॥

कवि नर्मद गुजराती साहित्य से जुड़े थे लेकिन राष्ट्रभाषा के प्रति उनका लगाव और सम्मान कम नहीं था । उन्होने ही 1880 के दशक में सबसे पहले हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का विचार रखा था । वर्तमान में वीर नर्मद दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय गुजरात के सूरत नगर में स्थित एक सार्वजनिक विश्वविद्यालय है । पहले इसका नाम 'दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय' था, इसकी स्थापना 19670में हुई थी । जिसे 2004 में गुजराती के महान कवि नर्मद के नाम पर समर्पित कर दिया गया ।

निष्कर्षत**:** भारतेंदु हरिश्चंद्र के समान ही कवि नर्मद का व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी था, उन्होंने आधुनिक गुजराती साहित्य की लगभग सभी विधाओं में योगदान दिया विशेष कर गद्य साहित्य में, आधुनिक गुजराती साहित्य के सभी विधाओं के बीज इनकी रचनाओं में मिल जाते हैं । इन्होंने अपने को किसी एक विधा तक सीमित नहीं रखा था, अपनी पत्रिकाओं में विविध विषयों पर लिखे अपने लेखों से उन्होंने अन्य लेखकों को भी प्रेरित किया, आलोचकों के अनुसार उनके साथीयों की लेखनी पर नर्मद का स्पष्ट प्रभाव दिखता था । उन्होंने दिखाया कि कैसे साहित्य से इतर विधाओं में भी आम-जीवन से जुड़े विषयों पर लिखा जा सकता है । इन वजहों से नर्मद का गुजराती साहित्य में अपना विशेष स्थान है और वे गुजराती साहित्य के भारतेंदु हैं ।

संदर्भ ग्रंथ

मध्यकालीन गुजराती साहित्य — एक अवलोकन (प्रा. हीरजी पा. सिंच)

"राष्ट्रीय शायर" **:** झवेरचंद मेघाणी

साहित्य परिक्रमा का गुजराती साहित्य विशेषांक- कुछ मेरे प्रिय गुजराती लेखक और पुस्तकों के बारे मे..

भारत दुर्दशा - भारतेंदु हरिश्चंद्र ।

संत ज्ञानेश्वर : तत्त्वज्ञान और चिंतन

डॉ. भरत भीमराव जाधव

प्रस्तावना – महाराष्ट्र में विभिन्न धर्मों और जातियों के लोग मिलजूल कर एक साथ रह रहे हैं । इसका मुख्य कारण यह है कि विभिन्न संप्रदायों के अवलोकन करने के बाद अंततः हमे यह पता चलता है की, ये सभी संप्रदाय मनुष्य को आत्म–साक्षात्कार की ओर ले जाते हैं । यद्यपि प्रत्येक संप्रदाय का पंथ अलग है, लेकिन अंतिम लक्ष्य ईश्वर और मोक्ष प्राप्त करना है । महाराष्ट्र में शैव और वैष्णव दो प्रमुख संप्रदाय हैं । कुछ लोग शिव यानि शंकर की पूजा करते हैं । कुछ लोग वैष्णव यानी विष्णु की पूजा करते हैं । 'वारकरी संप्रदाय' एक महत्वपूर्ण संप्रदाय के रूप में जाना जाता है जो आदिशक्ति और परमात्मा की एकता का प्रतीक है । महाराष्ट्र में 'शाक्त संप्रदाय', 'नाथ संप्रदाय', 'दत्त संप्रदाय', 'समर्थ संप्रदाय' जैसे कई संप्रदाय हैं । इनमें से कुछ संप्रदाय समय के साथ गायब हो गए । लेकिन वारकरी संप्रदाय तेजी से बढ़ रहा है ।

''संत कृपा झाली । इमारत फळा आली ।
ज्ञानदेवे रचिला पाया । उभारिले देवालया।
नामा तयाचा किंकर । केलेल्या हा विस्तार ।
जनार्दनी एकनाथ । खांब दिला भागवत ।
तुका झालासे कळस ॥''

इस बहिनाबाई के अभंग की तरह कई संतों ने वारकरी संप्रदाय के विस्तार का महान कार्य किया है । वारकरी संप्रदाय को संत 'भागवत धर्म' कहते हैं । जो भगवान को सब कुछ अर्पण कर देता है वही भागवत संप्रदाय के दर्शन और नैतिकता को 'भागवत' धर्म समझता है । माना जाता है कि वारकरी संप्रदाय की नींव ज्ञानेश्वर ने रखी थी, लेकिन वारकरी संप्रदाय की यात्रा ज्ञानेश्वर से पहले ही शुरू हो गई होगी क्योंकि ज्ञानेश्वर के माता–पिता पंढरपुर के विट्ठल के वारकरी भक्त थे । ज्ञानेश्वर के माता–पिता को कड़ी मेहनत और पाखंड के कारण मरना पड़ा । निवृतिनाथ, ज्ञानदेव, सोपानदेव और मुक्ताबाई को लगातार उत्पीड़न सहना पड़ा । कहना पड़ेगा कि वारकरी संप्रदाय के प्रबल तत्वज्ञान/दर्शन की स्थापना इन्हीं सभी आधारों पर हुई थी ।

संत ज्ञानेश्वर का जन्म और लेखन कार्य – संत ज्ञानेश्वर का जन्म शके 1197 में हुआ था, जबकि उन्होंने शके 1218 में समाधि ली । ज्ञानेश्वर को 22 साल की उम्र अवधि मिली । महाराष्ट्र में तेरहवीं शताब्दी में रामदेवराय यादव का शासन था । इस अवधि के दौरान बौद्ध धर्म, जैन धर्म, लिंगायत, वीरशैव, महानुभाव संप्रदाय प्रमुख थे । हेमाद्री पंडित की पुस्तक 'चतुर्वर्ग चिंतामणि' कर्मकांडों से भरपूर थी । ऐसे समय में आम लोगों को भक्ति का सच्चा मार्ग बताने की तत्काल आवश्यकता थी । इस काल में लोगों की अज्ञानता दूर करने के लिए संत ज्ञानेश्वर ने अपने लेखन के माध्यम से भक्ति और निस्वार्थ कर्म योग का परिचय दिया । ज्ञानेश्वर ने मराठी साहित्य में 'ज्ञानेश्वरी' पुस्तक लिखी । उन्होंने 'अमृतानुभव', 'चांगदेव पासष्ठी', 'हरिपाठाचे अभंग', 'विराण्या' और 'गौळणी' पर भी विस्तार

से लिखा है । एक भक्त के रूप में, उन्होंने अपने अद्वैत दर्शन के माध्यम से अमृत का अनुभव दिया । प्राचीन ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए थे । साधारण लोगों को इसे पढ़ने की अनुमति नहीं थी । उन्होंने धर्मशास्त्र को समृद्ध बनाने का संकल्प लिया ताकि पारलौकिक धन सभी जन तक पहुंचे । उन्होंने संस्कृत में अपने दर्शन को सरल महाराष्ट्रीयन प्राकृत भाषा में व्यक्त किया । भगवद गीता, जिसे मानव जीवन के विज्ञान के रूप में जाना जाता है, वास्तविक भगवान कृष्ण द्वारा वर्णित है । श्रीकृष्ण और अर्जुन के संवाद से अध्यात्म और नैतिकता का पता चलता है । यही ज्ञानेश्वर ने वर्णन किया है । अमृतानुभव 804 श्लोकों वाला ग्रंथ है । आप इस पुस्तक को दार्शनिक आध्यात्मिकता के उद्धरण के रूप में देख सकते हैं । 'चांगदेव पासष्ठी' 65 छंदों की एक कविता है और आप इसे एक अक्षर कविता के रूप में भी संदर्भित कर सकते हैं । इसमें दर्शन के मूल सिद्धांतों को सूत्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया है । ''यह एक योगी पुरुष की दूसरे योगी पुरुष को दिया ज्ञान है और इसमें वेदांत का सार प्रकट होता है । 'चांगदेव पासष्ठी' एक भावुक, एकात्मक, सुंदर और पारलौकिक दर्शन कविता है ।'' ऐसा बी. एन. पाटील कहते हैं । (बी. एन. पाटील: 2009, 253) हरिपाठ के सत्ताईस अभंगों में दर्शन और आत्म-साक्षात्कार का वर्णन किया गया है । उन्होंने भगवान की भक्ति के सरल, सहज, गौरवशाली नाम का वर्णन किया है ।

देवाचिये द्वारी । उभा क्षणभरी । तेणे मुक्ति चारी । साधियेल्या ॥
हरी मुखे म्हणा । हरी मुखे म्हणा । पुण्याची गणना कोण करी ॥
असोनि संसारी । जीवे वेगू करी । वेदशास्त्री उभारी बाह्य सदा ॥
ज्ञानदेव म्हणे व्यासांचीये खुणे । द्वारकेचा राणा । पांडवा घरी ॥

जो भक्त भगवान के द्वार पर सच्चे मन से खड़ा होता है और नाम का स्मरण करता है उसे सीधे भगवान कृष्ण मिलने आते है । इतना सरल सीधा-सा तरीका उन्होंने प्रस्तुत किया है । 'अतींद्रिया परी भोगविन । इंद्रिया करवी । हृदयी भोगी (संत ज्ञानेश्वर 9.134) ऐसा ज्ञानदेव कहते हैं । 'मैं दुनिया को खुश कर दूंगा' उनका यह भी कहना है कि तीनों जगत के लोग खुश रहेंगे । इसीलिए 'यारे यारे लहानथोर । याती भलत्या नारी नर । न करावा विचार । सानथोर ॥' कहा जाता है कि ज्ञानेश्वर ने वारकरी संप्रदाय की नींव रखी जिसने सभी जातियों और धर्मों के पुरुषों और महिलाओं के लिए भक्ति का मार्ग खोल दिया । ज्ञानेश्वर के आध्यात्मिक विचार व्यक्ति के हितों तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि समाज के व्यापक हित तक हैं । (म. वा. धोंड : 1980, 77) ज्ञानेश्वर के इस व्यापक सामाजिक हित का सार ज्ञानेश्वरी के अठारहवें अध्याय के 'पसायदान' में लिखा है । आप उनके व्यक्तित्व में ज्ञान, जुनून और तर्क, सृजन व्यापार, मानव व्यवहार का सूक्ष्म अवलोकन, भक्ति ब्रह्मांड की एकता और पशु प्रजातियों के लिए अपार करुणा का सुंदर संगम देख सकते हैं । ज्ञानेश्वर ने द्वैत भक्ति का सिद्धांत प्रतिपादित किया है । ज्ञानेश्वरजी ने भक्ति को ज्ञान और कर्म योग के साथ जोड़कर भक्ति की उपाधी दी । पत्थर कहा । (म. वा. धोंड : 1980, 61)

'कि भक्ति सुखालागी । आपणचि जाला दो भागी ।
वाटुनीया अंगी । सेवक ही वाणी ।

येरा नाव मी ठेवी । मजा भजतेया ओज बरवी ।
न भजतेया दावी । योगीया जो ॥ (संत ज्ञानेश्वर 12.186, 87)

इससे ज्ञानेश्वरजी ने भक्ति मार्ग का एक अलग ही अविष्कार दिखाया है । ज्ञानेश्वरजी ने कर्म योग को भक्ति से जोड़ा है । भक्ति से भगवान की प्राप्ति होती है और भगवान भक्त को मोक्ष प्रदान करते हैं । श्री विट्ठल ज्ञानेश्वर के आराध्य देवता हैं । विट्ठल को भगवान कृष्ण का अवतार माना जाता है । इसलिए विट्ठल की भक्ति एक प्रकार से भगवान कृष्ण की भक्ति है ।

तत्वज्ञान दर्शन – ज्ञानदेव अर्थ से शब्द तक आए हैं । इस अर्थ को समझने के लिए पाठक को शब्दों से अर्थों की ओर जाना पड़ता है । तत्व की स्थिति के आधार पर, एक तत्व के चारों ओर कई प्रकार के वलय होते हैं । इसलिए ज्ञाज्ञानेश्वरजी की दार्शनिक स्थिति को समझना जरूरी है । सिद्धांत की व्याख्या शास्त्रकार, उपनिषद, स्मृति आदि के संदर्भ में की जाती है । ज्ञानेश्वरजी ने गीता को एक प्रकार के 'शास्त्र' के रूप में वर्णित किया है । वे कहते हैं 'गीता शास्त्र साधले अम्हा' । इंद्रियों से परे ब्रह्मांडीय तत्व आंखों को दिखाई नहीं देता है, जिसके लिए व्यक्ति को इंद्रियों से परे अनुभव करना पड़ता है । संत वह है जिसने सत्य के अस्तित्व का अंत प्राप्त कर लिया है । भक्ति का अर्थ है अलग न होना । सिद्धांत यह है कि किसी भी समय किसी भी स्थिति में स्थापकत्व नहीं बदलती है, सभी जगह में जिसका अस्तित्व बरकरार है । दुनिया जन्म लेने की जगह है और मरने की जगह है । सांख्य का अर्थ है ज्ञान । नास्तिक का अर्थ है अस्तित्व अमान्य है । माया और आत्मा सांख्यशास्त्र के दो प्रमुख सिद्धांत हैं । भक्ति के रूप में 'मैं आत्मा हूं, मैं ब्रह्मा हूं ।' ज्ञान न्यायसंगत ज्ञान है, अर्थात ईश्वर का परोक्ष अनुभव । ज्ञानेश्वर ज्ञानेश्वरी में ज्ञानमीमांसा, अधिकार और नैतिकता पर चर्चा करते है । ब्रह्मा निर्गुण हैं और ईश्वर सगुण हैं । जीव को ब्रह्म से एक हो जाना चाहिए । एकीकरण की यह प्रक्रिया क्रमिक है, इसलिए वे 'क्रममुक्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं । संत ज्ञानेश्वर ने मायावाद, चिदविलास वाद, प्रतिवाद को बहुत ही सुन्दर तरीके से सुलझाया है । मन चंचल है, इसे अध्ययन और तप की सहायता से स्थिर किया जा सकता है, जबकि कर्म की नैतिकता कर्ता की शुद्ध बुद्धि पर निर्भर करती है । कर्म निष्काम हो, ऐसे निष्काम कर्म से मनुष्य शुद्ध होता है । मनुष्य स्वयं को नैतिक मानक बना सकता है । चूँकि आत्मानन्द की प्राप्ति नीति की परम उपलब्धि है, मनुष्य को चाहिए कि वह दोषों का त्याग कर सदाचारी बने । ईश्वर की भक्ति सदाचारी बनने का एक शानदार तरीका है ।

जब साधक स्थिर चेतना की स्थिति को प्राप्त करता है, तो उसे पता चलता है कि आनंदमय परमात्मा हर जगह है । सर्वोच्च आत्मा की सार्वभौमिक चेतना दुनिया में व्याप्त है । संत ज्ञानेश्वर ने इसे 'संसार को आपना घर' माना और उस घर की खुशी के लिए पसायदान यानी प्रसाद दान मांगा । भगवान तक पहुंचने के तीन रास्ते हैं, ज्ञान का मार्ग, कर्म का मार्ग और भक्ति का मार्ग । जीव शिव इनमें से किसी भी तरह से एकता के लिए कार्य करता है । कर्म सिद्धांत और धर्म सिद्धांत की व्याख्या करते हुए, ज्ञानेश्वर ने कर्म और धर्म

के बीच एक उचित संबंध बनाया है । उन्होंने कर्म को अपना धर्म कहा है । उनकी एक ईमानदार राय थी कि सभी को अपने निर्धारित कर्म करने चाहिए, अर्थात अपने धर्म का ध्यान रखना चाहिए । आज हमने धर्म की परिभाषा ही बदल दी है । 'धारयेति धर्म' - धारण करने वाले का धर्म है । इसमें उचित कर्म होना बहुत जरूरी है । हम इसे आसानी से भूल गए हैं । कर्म के बारे में अपना-अपना काम करना हर किसी का धर्म है । 'विश्व स्वधर्म सूर्ये पाहो ।' जो जे वांछील तो ते लाहो प्राणीजात । यह उन इच्छाओं को पूरा करने की प्रक्रिया है जिन्हें धर्म के आयास से सिद्ध किया जा सकता है ।

ईश्वर के प्रति अनन्य भक्ति होनी चाहिए, मनुष्य को उसकी शरण में जाना चाहिए ईश्वर की कृपा के बिना संसार में मनुष्य का स्थान शून्य है । ईश्वर का नामजप करना अद्वितीयता से परास्त करना है । यह भक्ति अद्वैत भक्ति है । उसी समय जीव शिव की एकता संभव है । यदि साधक दिव्य अनुभव प्राप्त करना चाहता है कि भगवान सनिध्य का अनुभव दिव्य और सहज है, तो भक्ति का मार्ग एक बहुत अच्छा विकल्प है । के.डी. संगोरम कहते हैं- ''दार्शनिक सिद्धांत की सच्चाई और जीवन शक्ति दिव्यता और सफलता प्राप्त करने के लिए जीवन की शक्ति पर निर्भर करती है ।'' (के. डी. संगोराम प्रस्तावना, 1978, 7) भावेविण नकळे निसंदेह । गुरु विना अनुभव कैसा मिळे ॥ निस्संदेह भाव के बिना अनुभव के गुरु कैसे प्राप्त करें ॥ (संत ज्ञानेश्वर : हरिपाठ, 5) यदि इन सभी दिव्य अनुभवों को प्राप्त करना है तो गुरु बनना होगा, इसलिए संत ज्ञानेश्वर अपने बड़े भाई संत निवृत्तिनाथ को अपना गुरु मानते थे । उन्होंने इस सार्वभौमिक गुरुदेव निवृति से पसायदान मांगा । जिस प्रकार 'आत्म-साक्षात्कार' ही एकमात्र सत्य और लक्ष्य है, वह मानवता की एकता का मूल सिद्धांत भी है । विश्व कल्याण के लिए मानवता की एकता महत्वपूर्ण है । वास्तव में सभी जीवों को मिलजुल कर रहना चाहिए । पूरे संसार में केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि सभी जीव-जंतु एक साथ होने चाहिए । हम इसे ज्ञानेश्वर के दर्शन के मूल के रूप में देख सकते हैं ।

सारतत्व सिद्धांत की अवधारणा - वस्तु का स्वरूप और उसका सारतत्व एक ही है । यद्यपि आत्मा और शरीर अलग-अलग हैं, लेकिन उनमें एकता है । क्योंकि यदि आत्मा और शरीर को अलग कर दिया जाए, तो किसी का अस्तित्व नहीं दिखाया जा सकता है । इसलिए, चेतना वस्तु में ही निहित है, ग्रीक दार्शनिक और पश्चिमी दार्शनिक कहते हैं । हेगेल कहते हैं- ''वास्तविक तर्कसंगत है और तर्कसंगत वास्तविक है ।'' (कुलकर्णी पद्मा : 1978, 26) प्रत्येक वस्तु का ब्रह्मांड की व्यवस्था में इस आधार पर एक अनूठा स्थान है कि सत् और चित् के बीच संघर्ष की कोई संभावना नहीं है । अणुओं से लेकर कीड़े तक, चींटियों से लेकर बड़े जानवरों तक, सत और चित की अवधारणा का पालन किया जाता है । इसलिए ब्रह्मांड की अवधारणा ठोस रूप में जीवित रहती है । ज्ञानेश्वरजी का मानना था कि व्याष्टि और समष्टि अभिन्न हैं, यही वजह है कि उन्होंने चिदविलास की अवधारणा का अनुसरण किया । जे पिंडी ते ब्रम्हांडी की तरह, भगवान कृष्ण की ब्रह्मांडीय दृष्टि ज्ञानेश्वरी के 14 वें अध्याय में ओवी नंबर 120 से 128 में होती है । अर्जुन को यह कहते हुए कि भगवान कृष्ण का मैं और दृश्य जगत एक है, ज्ञानेश्वर ने इसे ज्ञानेश्वरी मे निरूपण किया है । एक ओर वे महसूस करते है कि ब्रह्मांड हरिहर ऐक्य और जीव शिव ऐक्य के माध्यम से

बनाया गया है । ज्ञानेश्वर सोचते हैं कि 'अहं ब्रह्मास्मि' का अर्थ है कि भक्त को पता चलता है कि मैं एक ब्रह्म हूँ, अर्थात अद्वैत प्राप्त होता है । ज्ञानेश्वर को शैव और वैष्णववाद, ज्ञान और भक्ति, सगुण और निर्गुण, माया और चिदविलास, द्वैत और अद्वैत, प्रवृत्ति और निवृत्ति, व्यक्ति और समाज, श्रेयस और प्रेयस को एक साथ लाने में कोई कठिनाई नहीं हुई । समन्वय करने की यह प्रवृत्ति यूरोपीय काट और भारतीय दर्शन के समान प्रतीत होती है, प्रोफेसर रानडे कहते हैं । (आर. डी. रानडे : 1978, 116)

संत ज्ञानेश्वर ने संपूर्ण समाज और भक्ति दर्शन को खूबसूरती से समझाया है ।

ज्ञानमीमांसा - ज्ञानेश्वरी व्यावहारिक ज्ञान को संसार का ज्ञान कहते हैं । जबकि यह सांसारिक ज्ञान विज्ञान है, उन्होंने तार्किक ज्ञान के लिए 'ज्ञान' की अवधारणा को लागू किया है । विज्ञान में, संज्ञेय और संज्ञेय ज्ञान के बीच एक संबंध है । साधक भगवान की भक्ति के माध्यम से भगवान और ज्ञान का अनुभव कर सकता है । ज्ञान सापेक्ष है । यदि आत्मा शिव के साथ एक होना चाहती है, तो उसे ज्ञान और भक्ति का संगम देखना होगा । मनुष्य ज्ञान शास्त्र से सत्ता शास्त्र तक जा सकता है । आपको जीव से अलग किए बिना शिव को एक करना होगा । यह ज्ञानेश्वर द्वारा बताया गया दर्शन है । लोकमान्य तिलक कहते हैं, "ज्ञानेश्वरी ने स्वयं अपनी पुस्तक के अंत में कहा है कि- ''उन्होंने गीताभाष्य पर टिप्पणी करते हुए अपनी भाष्य रचना की है । इस गीत को एक अलग पाठ के रूप में माना जाना चाहिए । चूंकि ज्ञानेश्वर महाराज स्वयं योगी थे, इसलिए पतंजलि योग का अध्ययन गीता के छठे अध्याय में आया है ।'' (म. वा. धोंड : 1980, 39)

''मच्छिंद्राने बोध गोरक्षाची केला । गोरक्ष वोळला गहिनीप्रती ।
गहिनी प्रसादे निवृत्ती दिधला । निवृत्ती वोळला ज्ञानाप्रती ।''

यद्यपि ज्ञानेश्वर में नाथ संप्रदाय की परंपरा थी, ज्ञानेश्वर ने वारकरी संप्रदाय का प्रचार और प्रसार किया । हठ योग, ज्ञान योग, संन्यास, नाथपंथ में ईश्वर प्राप्ति की इच्छा ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी, चांगदेव-पासष्टी, अमृतानुभव आदि में देखी जा सकती है । इन सबका प्रभाव निश्चित रूप से ज्ञानेश्वर के लेखन और दर्शन पर पड़ा है । डॉ. पेंडसे का कहना है कि सप्तसिंधु ज्ञानेश्वर के अद्वैत सागर में गुरु परंपरा से विभिन्न उपनिषद, गीता, गौड़पादकारिका, योगवशिष्ठ, शंकर दर्शन, कश्मीरी शैववाद और नाथपंथ दर्शन आए हैं । इससे आप दर्शन पर ज्ञानेश्वर के प्रभाव का मूल्यांकन कर सकते हैं ।

ज्ञानेश्वर की रचनाओं को समग्र रूप से देखें तो ज्ञानेश्वर के दर्शन में सुगम महात्म्य, भक्ति महात्म्य के साथ-साथ कर्म योग और ज्ञान योग का सुंदर संगम देखा जा सकता है ।

संदर्भ ग्रंथ

1. निष्काम कर्म योग की अवधारणा को ज्ञानेश्वरी और अमृतानुभव ग्रंथों में खूबसूरती से समझाया गया है ।
2. ज्ञानेश्वरजी ने भक्ति के मार्ग को सिधे शब्दों में सिद्ध कर दिया है कि आम आदमी समझेगा और आनंद उठाएगा ।

3. ज्ञानेश्वर द्वारा वर्णित 'स्वधर्म' की अवधारणा से हमें धर्म का उन्नत रूप देखने को मिलता है ।
4. हठ योग, कुंडलिनी योग, नाथ संप्रदाय में संन्यास ने ज्ञाज्ञानेश्वरजी के दर्शन को प्रभावित किया है ।
5. संस्कृत भाषा के ज्ञान का वर्णन ज्ञानेश्वर ने महाराष्ट्री प्राकृत भाषा में किया है ।

संदर्भ

1. संत ज्ञानेश्वर, ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, चांगदेव पासष्टी
2. कुलकर्णी पद्मा, ज्ञानेश्वरांचे तत्वज्ञान एकेडमी ऑफ कम्पेरेटिव फिलॉसॉफी अँड रिलीजन, बेळगाव, 1978
3. पाटील बी. एन., प्राचीन महाराष्ट्र वांगमय वैभव, प्रशांत प्रकाशन, जलगाँव, 2009
4. धोंड म. वा., ज्ञानेशवरी स्वरूप, तत्वज्ञान आणि काव्य, मैजेस्टिक बुक स्टाल, मुंबई, 1980
5. संगोरम के. डी., प्रस्तावना कुलकर्णी पद्मा, ज्ञानेश्वरांचे तत्वज्ञान एकेडमी ऑफ कम्पेरेटिव फिलॉसॉफी अँड रिलीजन, बेळगाव, 1978
6. आर. डी. रानडे, वेदांता कल्मिनेशन ऑफ इंडियन थॉट, 1978

संदर्भ ग्रंथ

1. संत ज्ञानेश्वर, ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव, चांगदेव पासष्टी
2. कदम बाबा त. ब., ज्ञानदेवांचे तत्वज्ञान, ज्ञान प्रधान शास्त्र प्रकाशन अहमदनगर, 1997
3. खुपेरकर बाळाचार्य, विज्ञानेश्वर वांग्मयाचा सांगोपांग आयास, पुणे विद्यापीठ पुणे, 1963
4. कुलकर्णी पद्मा, ज्ञानेश्वरांचे तत्वज्ञान एकेडमी ऑफ कम्पेरेटिव फिलॉसॉफी अँड रिलीजन, बेळगाव, 1978
5. पाटील बी. एन., प्राचीन महाराष्ट्र वांगमय वैभव, प्रशांत प्रकाशन, जलगाँव, 2009
6. धोंड म. वा., ज्ञानेशवरी स्वरूप, तत्वज्ञान आणि काव्य, मैजेस्टिक बुक स्टाल, मुंबई 1980
7. संगोरम के. डी., प्रस्तावना कुलकर्णी पद्मा, ज्ञानेश्वरांचे तत्वज्ञान एकेडमी ऑफ कम्पेरेटिव फिलॉसॉफी अँड रिलीजन, बेळगाव, 1978
8. आर. डी. रानडे, वेदांता कल्मिनेशन ऑफ इंडियन थॉट, 1978

अखंड धूसर के भाषिक पैरोकार : काका कालेलकर

डॉ. पियूष द्विवेदी

हिंदी साहित्य के तमाम विधाओं के हस्ताक्षर के रूप में काका कालेलकर को जाना जाता है । कालेलकर साहब कविता, कथा, नाटक, ललित निबंध के साथ-साथ आत्मकथा, यात्रा साहित्य पर अधिकार पूर्वक लिखते थे । जबकि उनकी गणना आज भी बड़े शिक्षा शास्त्रियों में होती है । मूल रूप से कर्नाटक के रहने वाले कालेलकर जी ने जिसकी भाषा कोंकणी थी, जीवन भर हिंदी की ईमानदारी पूर्वक सेवा की । इसके इतर कालेलकर साहब गुजराती, अंग्रेज़ी, मराठी और संस्कृत भाषा के भी मर्मज्ञ थे । सहजता और सरलता के प्रतिमूर्ति कालेलकर जी ज्ञान की इच्छा से, केवल भारत वर्ष के कोने-कोने में ही नहीं गए बल्कि अनेक देशों में ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यात्रा की । उन तमाम देशों में भारत तथा भारत के लोगों को लेकर विदेशियों के मन में किस प्रकार का भाव है, इसका वर्णन कालेलकर जी ने सांगोपांग ढंग से अपने यात्रा साहित्य में किया है । विदेशी सरज़मीं पर काका साहब के सारगर्भित वक्तव्य आज के ज्ञान पिपासु के लिए संजीवनी का कार्य करेगा ।

कालेलकर जी के हृदय में हिंदी भाषा को लेकर अगाध श्रद्धा थी । इसका उदाहरण हिंदी में उनकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएँ है । मराठी, गुजराती में सपने देखने वाला व्यक्ति का स्वभाषा में साहित्य सेवा न करके हिंदी भाषा में लिखना, सृजन करना हिंदी भाषा के प्रति समन्वय वादी भावना को दर्शाता है । कालेलकर जी हिंदी भाषा की सेवा का अर्थ भारत भूमि की सेवा को मानते है । भारत भूमि से बाहर भी हिंदी को ही अपने जीवन का आधार बनाते है और हिंदी में रचना करते है । राम-कृष्ण की इस पवित्र धरती का सम्मान ही काका कालेलकर का सम्मान था । सम्पूर्ण कालेलकर साहित्य में राष्ट्र की मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा की बात की गई है । एक ही चश्मे से दो दृष्टिकोण विकसित करने वाले कालेलकर जी ने यात्रा साहित्य की दो पुस्तकों का सृजन किया है । हिमालय की यात्रा और प्रवास (विदेश) की यात्रा । हिमालय की यात्रा में कालेलकर जी ने जहाँ भारतीय जगत को देखा है वहीं प्रवास यात्रा में सम्पूर्ण विश्व को सांस्कृतिक दृष्टिकोण से देखने के हिमायती हैं । अपने प्रवासी यात्रा साहित्य में पूर्वी अफ़्रिका की यात्रा के दौरान का एक संस्मरण रेखांकित करते हुए काका कालेलकर जी ने जो लिखा है उस पर आज के वामी विचारकों को ध्यान देना चाहिए । स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात एक पानी के जहाज़ के नाम को लेकर उनके मन में खीज दिखाई देती है । वो लिखते है-

''हमारी यात्रा के प्रारंभ में ही अगर कोई चीज मुझे अखरी हो, तो वह थी उस कंपनी का नाम, जिसके जहाज में हमने यात्रा की । हिन्दुस्तान के स्वतंत्र हो जाने के बाद भी यह कंपनी अपना नाम 'ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेविगेशन कंपनी' क्यों रखे ? नाम में थोड़ा-सा परिवर्तन कर दे तो भी बस है । 'ब्रिटेन-इंडिया स्टीम नेविगेशन कंपनी' कहे, तो हमें कोई एतराज नहीं । लेकिन अब हम अपनी खुदकी इन्डो-अफ्रीकन स्टीम नेविगेशन कंपनी क्यों न खड़ी करें ? पुरानी कंपनी के साथ अमुक साल का करार किया हो, तो कम से कम

इतना तो देखना ही चाहिये कि उस कंपनी के अधिकारी हमारे लोगों के साथ घमंड और तिरस्कार का बरताव न करें ।

''अगर करार का पालन ठीक-ठीक न किया जाय, तो करार रद्द कर देना चाहिये ।''[1]

शिक्षाविद् कालेलकर जी पर भारतीय दर्शन एवं आध्यात्मिक शक्तियों का प्रभाव परिलक्षित होता है । काका साहेब ने विदेश दौरा के प्रारम्भ में ही उपर्युक्त बात को स्पष्ट कर दिया है । काका कालेलकर भारत से बाहर भी अपनी संस्कृति, मान, मर्यादा, प्रतिष्ठा, उत्सव को नहीं भुलते हैं । अपना देश, अपनी मिट्टी से एक ख़ास लगाव है यात्रिक को । अपनी संस्कृति से गहरा जुड़ा है गद्यकार । अफ्रीका यात्रा के दौरान काका कालेलकर बिना किसी झिझक के उन सभी यात्रियों के मध्य जो न जाने कितने देशों से होंगे, कौन सी भाषा बोलते होंगे और समझते होंगे, सूर्योदय के समय हाथ जोड़कर संस्कृत श्लोक बोलते हुए नमस्कार करते हैं । यात्रा के प्रारम्भिक दौर का वर्णन करते हुए कालेलकर जी ने लिखा है-

''एक तरफ़ इस प्रभात का विकास देखने को मन ललचाता था, तब दूसरी ओर जहाज के डोलने से सिर मे चक्कर आने लगे थे । एक घड़ी के लिए ये मौजें रुक जायें और जहाज स्थिर हो जाये तो क्या ही अच्छा हो, ऐसा मन में आया । लेकिन समुद्र की लहरें और मनुष्य के मनोरथ कभी भी रुकते हैं क्या ? ऊबकर आराम कुरसी पर लुढ़कने का मैं सोच ही रहा था, इतने में बाल सूर्य का गुंबद पानी में नहाकर बाहर निकला । उगते सूर्य के बिम्ब पर एक विशिष्ट तरलता होती है; मानो सूर्य ये ठंडे पानी में से कांपते-कांपते बाहर निकल रहा है । और पानी में जो प्रकाश बिखरा हुआ है, जान पड़ता है वह सूर्य का अंगराग ही धुला हुआ है । सूर्य का बिम्ब पूरा-पूरा बाहर निकलते ही मैंने अपनी प्रार्थना कर ली-

ध्येयः सदा सवितृ-मण्डल-मध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासन-संनिविष्टः ।
केयूरवान मकर-कुण्डलवान्? किरीटी
हारी हिरण्मय-वपुर धृत-शंख-चक्रः ?

जीवत राम को ऐसा गांभीर्य कभी सहन नहीं होता । वे एकदम बोल उठे ''बस करो, कैसी वानर भाषा बोल रहे हो ?'' मैंने कहा, ''आपकी भूल है । यह आपकी भाषा नहीं, संस्कृत है । विनोद में भक्ति की उत्कट भावना तहस-नहस हो गई ।''[2]

काका कालेलकर जी अखंड भारत के हिमायती थे । क्योंकि वो ब्रह्मदेश और लंका को दो देश नहीं, अपितु भारत के दो सुंदर अंग मानते थे । समरसता का भाव उनके विचारों में उनके व्यवहार में परिलक्षित होता है । काका साहब जब भी भारत से बाहर जाते थे, वो अग़ल बग़ल के सभी देशों को भारतीय गणराज्य का अंग मानते थे । क्योंकि पड़ोसी देशों की संस्कृति, खान-पान, भाषा और लोगों की कद-काठी भारत के लोगों से लगभग-लगभग मिलता-जुलता है । वैमनस्यता और सत्ता उपभोग के लोभ में हमारे पूर्व के राज नेताओं ने न जाने कितनी बार भारत को खंड-खंड किया । इसका दुष्परिणाम आज भी एक दूसरे

पड़ोसी देशों को भुगतना पड़ता है । फिर भी काका कालेलकर पड़ोसी देशों में भारतीय खुशबू की पहचान कर लेते है । ये एक जाने-माने शिक्षाविद् की सोच है जो खंडित भारत में अखंडित भारत की परिकल्पना करता है ।

''ऐसा नहीं कि इससे पहले मैंने कभी समुद्र यात्रा की ही नहीं थी । स्वदेश कभी छोड़ा नही था, ऐसा भी नहीं कह सकता । कलकत्ता से तीन दिनकी यात्रा करके रंगून पहुँचा था और उसी रास्ते लौटा भी था । एक बार बम्बई से कराची और कराची से बंबई भी जहाज से ही गया था । और एक बार तो बंबई से कोलम्बो की समुद्र यात्रा भी पूज्य गांधीजी के साथ की थी । लेकिन किसी वक्त यह भावना मन में नही आई थी कि स्वदेश छोड़कर दूर जा रहा हूँ । क्योंकि यह भावना बचपन से ही बंधी हुई थी कि ब्रह्मदेश और लंका, दोनों हमारे ही देश के दो सुन्दर अंग है । इसलिए वहां के लोगों की रहन-सहन में बहुत ज्यादा फर्क होते हुए भी उस समय यह विचार नहीं आया कि मैं परदेश जाता हूँ या गया हूँ ।

इस वक्त हमारे यहां का पासपोर्ट वगैरह लेना और पूर्व अफ्रीका की सरकार से परमिट लेना जरूरी होने से यह भावना मन पर जबरन बैठा दी गई कि मैं परदेश जा रहा हूँ ।''[3]

काका कालेलकर की बौद्धिक प्रकृति बहुमुखी थी । काका साहब जिस विषय पर बोलते या लिखते थे, लगता था उस विषय पर उनका सर्वाधिकार सुरक्षित है । बेझिझक किसी विषय पर धारा प्रवाह वक्तव्य देते थे । उनके ऊपर गांधीजी का जितना प्रभाव था उतना ही महामना पंडित मदन मोहन मालवीय के विचारों का । वे दोनों को शिक्षा जगत का सिरमौर मानते थे । काका कालेलकर को यात्रा करना अच्छा लगता था । वे पूरी दुनिया को जानना चाहते थे इसके लिए पहले तो भारत भ्रमण किया तत्पश्चात् विदेशों की यात्रा की । उन्होंने शिक्षा जगत और ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ हिंदुस्तान ही नहीं बल्कि हिंदूस्तान से बाहर की दुनिया की परिक्रमा की और भारत को भारत के उदाहरण से वैश्विक स्तर पर स्थापित करने की कोशिश की । भारत को वैज्ञानिक और बहुपक्षीय दृष्टिकोण से देखने का एक उदाहरण अंकित कर रहा हूँ । पूर्वी अफ्रीका में काका कालेलकर ने अपने भाषण से अफ्रीकन को प्रभावित किया । इसका एक बानगी देखिए ।

''अफ्रीकन लोगों से मिलने के लिए मैं पहले से ही उत्सुक था, लेकिन वे कहीं दिखाई नहीं पड़ते थे । युनाइटेड केनिया क्लब में उन्हें देखने का मौका मिला । वहां गोरे भी आये थे और अफ्रीकन लोग भी थे । और बातों के साथ-साथ मैंने उनसे वंश व्यवस्था के प्रश्न 'रेशियल एडजस्टमेन्ट' के बारे में दो शब्द कहें, जिसका उन पर बहुत अच्छा असर पड़ा ।

मैने कहा : आर्य, अनार्य, द्रविड़, आदिवासी, शक, हूण, चीनी, पारसी, पठान, मुग़ल, पोर्तुगीज, फ्रेंच, यहूदी, अंग्रेज वगैरह अनेक जातियाँ भारत में आकर बसी है । मानो सारे मानव वंशों को भारत में इकट्ठे करने की ईश्वर की योजना ही हो । ये सब लोग आपस में मिलकर सहयोग से कैसे रहें, इसके अनेक प्रयोग हमने हजारों वर्षों से अपने देश में किये हैं । इस सम्बद्ध में हमने कुछ गंभीर भूले भी की हैं, जिनके लिए हमें कुछ कम नुकसान

नही उठाना पड़ा । हमने डेढ़-भंगियों के मोहल्ले खड़े किये । ऊंच-नीच का भाव पैदा किया और बढ़ाया । बहिष्कार का शस्त्र आजमाया और अंत में देखा कि कभी-कभी मूल रोग से भी आजमाया हुआ इलाज ही अधिक घातक सिद्ध होता है । परंतु हमारे ऋषि-मुनियों ने तो शुरू में हमें एक संजीवन मंत्र दिया था कि कितने ही प्रयोग करो, परन्तु हिंसा का आश्रय न लो । हमारी आस्तिकता ने सर्प-सत्र जैसे घातक प्रयोग तुरंत रोक दिए । आज हमारे यहां चमड़ी के भेद के कारण अलग जातियां कायम नहीं की जाती । स्वतंत्र होते ही हमने अस्पृश्यता को दफ़ना दिया । हरिजनों के लिए हमारे कुएं और भोजनालय, हमारी पाठशालाएँ और हमारे मन्दिर पूरी तरह खुल गये हैं । हमारे इस अनुभव से अफ्रीका में बसने वाले तीनों महाद्वीपों के लोग बहुत कुछ सीख सकते है ।''[4]

काका कालेलकर जी जितने बड़े शिक्षाविद् थे उससे अधिक हिंदी प्रेमी थे । हिंदी भाषा की वृद्धि के लिए काका साहब ने अपनी मातृभाषा गुजराती, कोंकणी में साहित्य सृजन न करके हिंदी में सृजन किया । हिंदुस्तान के अवाम को ध्यान में रखकर कालेलकर जी कार्य करते थे । वे भारत को शिक्षा का गढ़ मानते थे इसीलिए विदेशी विद्यार्थियों को भारत में पढ़ने के लिए ज़ोर देते थे । उनकी पढ़ाई में कोई बाधा न पहुँचे इसलिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था पर ज़ोर देते थे । न केवल हिंदी भाषा की पढ़ाई विदेशी छात्र कर सकेंगे बल्कि कई अन्य विषयों से भी रूबरू हो सकेंगे । एक दूरद्रष्टा की यही पहचान है । काका कालेलकर विदेशी बच्चों को राष्ट्रभाषा सिखने पर बल देते थे । इसके पीछे का वैज्ञानिक कारण यह था कि सम्पूर्ण विश्व में हिंदी और भारत की पैठ हो । कालेलकर ग्रंथावली भाग-2 के 'उस पार के पड़ोसी' में लिखते है-

''स्वतंत्र हिंदुस्तान ने मित्रता की निशानी के तौर पर और पड़ोसी धर्म के एक अंग के रूप में, अफ्रीकी विद्यार्थियों को हिन्दुस्तान में जाकर पढ़ने के लिए चार छात्र-वृत्तियाँ दी है । इसी तरह यहाँ रहने वाले भारतीयों ने और बारह छात्रवृत्तियां अफ्रीकियों के लिए दी हैं । अफ्रीकी लोग जानते है कि यह सब श्री अप्पा साहब के प्रयत्न से हुआ है । अब जो खादी विधा सीखना चाहते हों, उनके वर्धा के चरखा-मंच ने छः छात्रवृत्तियाँ देने का निश्चय किया है । और हिन्दुस्तान जाकर जो राष्ट्रभाषा सीखना चाहें, उनके लिए हिंदुस्तानी प्रचार सभा की तरफ़ से तीन छात्रवृत्तियां देने की मैंने घोषणा की । ऐसी सक्रिय कारवाईयों के कारण ही यहाँ के अमरीकी लोग हिंदुस्तान के प्रति सद्भाव और आशा की दृष्टि से देखने लगे हैं ।''[5]

काका कालेलकर जी भारत को आईना की तरह प्रस्तुत करते हैं । भारत ने लोगों को जीने का सलीका बताया । आत्मनिर्भर बनने के लिए अफ्रीकियों को मंत्र दिया । जिससे उनका दैनिक जीवन सुधर सके । किस प्रकार छोटे-मोटे धंधे से बड़ा कार्य खड़ा किया जा सकता है ये भारतीयों ने अफ्रीका के लोगों को बताया । जहाँ के लोगों को तन ढकने के लिए वस्त्र नसीब नहीं था, नंगे बदन अफ्रीका के जंगल में घूमते थे उनके लिए भारतीयों ने वस्त्र (पैजामा) की व्यवस्था की । यानी नैतिकता से लेकर संस्कृति और संस्कार का परिष्कार अफ्रीकियों में किया गया । काका साहब अपने यात्रा वृतांत में लिखते है-

''परंतु हम लोगों के सम्पर्क में यहां के लोग बहुत कुछ सीखे भी हैं । उन्होंने बढ़ई और दर्जी वगैरा के छोटे-मोटे धंधे सीखे । रुई की खेती उन्होंने सफलतापूर्वक बढ़ाई । जहाँ अंग्रेज पहुँच भी न सकें, ऐसे दूर दूर के जंगली इलाकों में हम लोगों ने हिम्मत के साथ जाकर दुकानें खोली और अपने बाल बच्चों को ले जाकर जंगल के अफ्रीकियों के बीच बस गये । कुछ जंगली लोगों को एक-एक शिलिग मे एक-एक पायजामा देकर हम लोगों ने उन्हें अपनी नग्नता ढंकना सिखाया । अपनी आमदनी बढ़ाते हैं । अगर हम लोग बदली हुई परिस्थिति को पहचान कर अफ्रीकियों की जागृति में मददगार बनें, अपना लोभ कम कर दें और अफ्रीकियों को अनेक प्रकार से शिक्षित बनायें, तो हमारा यहाँ रहना सफल हो ।

कुछ लोगों ने मुझे खानगी में कहा : ''आपकी बात हम शिरोधार्य करने को तैयार हैं । यहाँ के लोगों के लिए हम भरसक प्रयत्न करते रहेंगे । परन्तु हमारा अनुभव कहता है कि यहाँ के लोग बिलकुल कृतघ्न हैं । उनके लिए कितना भी करे, तो भी समय पर आँख बदलते उन्हें देर नही लगती । मैं उनसे कहता हूँ कि यह बात सच निकली, तो भी मुझे उसमें जरा भी आश्चर्य नहीं होगा । जिनका देश लूटा गया है, जिन्हें परावलम्बी और भयभीत दशा में हमेशा रहना पड़ता है, मध्य-काल ने जिन्हें पकड़कर गुलाम बनाकर बेचा जाता था, उनके लिए कृतज्ञता भी कई बार आत्मघातक सिद्ध होती है । हमारे यहां भी मुसलमानों और हरिजनों के लिए ऐसी ही शिकायतें हम सुनते थे । मराठी में 'गुलाम' शब्द बदमाश या अकल-मंद के अर्थ में इस्तेमाल किया जाता था । कभी निदा के तौर पर और कभी कद्र के रूप में । यह बताता है कि गुलामों कों वदमाशी सीखे बगैर छूटकारा नही था । एक बार इन लोगों कों स्वावलम्बी बन जाने दीजिये, फिर देखिए उनमें धीरे-धीरे इन्सानियत के तमाम लक्षण प्रगट हो जाएँगे ।''[6]

काका कालेलकर की सोच भारतीय संस्कृति और संस्कार से ओतप्रोत थी । भारतीय गौरव बोध से आप्लावित काका साहब सम्पूर्ण विश्व में शिक्षा से लेकर संस्कार तक का प्रसार करना चाहते थे । यहीं कारण है कि आज दूसरे देश भारत की ओर विश्वास और अपनत्व की दृष्टि से देख रहे हैं । भारत के साथ अन्य देशों के रिश्ते आज अच्छे हो रहे हैं । धार्मिक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से पड़ोसी देशों में हमारा पैठ बढ़ रहा है । काका कालेलकर जी इसी इच्छा और अदम्य साहस के साथ भारत के भाल पर कांति देखना चाहते हैं । सम्पूर्ण विश्व में भारत का डंका बजे । जिसको पूरी दुनिया तिलक करें ऐसी परिकल्पना महान शिक्षाविद् काका कालेलकर की थी ।

संदर्भ ग्रंथ

1. हमारे उस पार के पड़ोसी, काका कालेलकर ग्रंथावली, भाग-2, प्रवास (विदेश), गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, नई दिल्ली, पृष्ठ-46
2. ब्रह्मदेश का प्रवास, काका कालेलकर ग्रंथावली, भाग-2, प्रवास (विदेश), गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, नई दिल्ली, पृष्ठ-8

3. हमारे उस पार के पड़ोसी, काका कालेलकर ग्रंथावली, भाग–2, प्रवास (विदेश), गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, नई दिल्ली, पृष्ठ–55
4. हमारे उस पार के पड़ोसी, काका कालेलकर ग्रंथावली, भाग–2, प्रवास (विदेश), गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, नई दिल्ली, पृष्ठ–71
5. हमारे उस पार के पड़ोसी, काका कालेलकर ग्रंथावली, भाग–2, प्रवास (विदेश), गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, नई दिल्ली, पृष्ठ–77
6. हमारे उस पार के पड़ोसी, काका कालेलकर ग्रंथावली, भाग–2, प्रवास (विदेश), गांधी हिंदुस्तानी साहित्य सभा, नई दिल्ली, पृष्ठ–78

साठोत्तरी हिंदी काव्य परंपरा में महाराष्ट्र के कवियों का योगदान

डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता

सारांश – प्राचीन व मध्यकाल में महाराष्ट्र के सन्त कवियों का उद्देश्य हिन्दी भाषा सीखना नहीं था बल्कि धर्म प्रचार, समाज जागृति करना और भेदभाव मिटाना था । इससे मराठी और हिन्दी भाषा का आदान–प्रदान होता था । उस समय इन सन्त कवियों की भाषा सधुक्कड़ी, मराठी मिश्रित हिन्दी, दक्खिनी हिन्दी रही है । भाषा की दृष्टि से खण्डकाव्य में ओमप्रकाश शिव के खण्डकाव्य पर मराठी भाषा का प्रभाव है । गीतों में छगन पंचे 'छगन' व डॉ.अनिल कुडिया की भाषा पर मराठी का प्रभाव है । मुक्त छंद में डॉ.मालती शर्मा, आसावरी काकडे, प्रकाश कांबले व हिरामण लांजे 'रमानंद' के काव्य पर मराठी भाषा का प्रभाव दिखाई देता है । महाराष्ट्र में साठोत्तरी हिन्दी काव्य में खण्डकाव्य लिखने वाले जीवितराम सेतपाल ने 'नेतापुराण' दोहा छंद में लिखकर एक नया प्रयोग किया, यह हिन्दी साहित्य के लिए अनमोल देन है । परमात्मानन्द पाण्डेय ने 'सुरबाला' को रूबाई छंद में लिखकर नया प्रयोग किया । डॉ.मनोज सोनकर ने हिन्दी ग़ज़ल को इक्कीस मात्रिक छंदों में ग़ज़ल लिखकर नया प्रयोग किया, यह हिन्दी साहित्य के लिए अनमोल देन है ।

खण्डकाव्य – हिन्दी काव्य–परम्परा में खण्डकाव्य लिखने वाले आधुनिक कवि मैथिलीशरण गुप्त कृत जयद्रथवध, पंचवटी; रामनरेश त्रिपाठी कृत पथिक, मिलन व स्वप्न; जगन्नाथदास रत्नाकर कृत गंगावतरण; सियारामशरण गुप्त कृत मौर्य–विजय व अनाथ; सुमित्रानन्दन पन्त कृत ग्रंथी; रामकुमार वर्मा कृत चित्तौर की चिता; नरेश मेहता कृत संशय की रात और नरेन्द्र शर्मा कृत सुवर्णा आदि है । महाराष्ट्र में बहुत कम हिन्दी खण्डकाव्य लिखे गए हैं– जैसे परमात्मानन्द पाण्डेय कृत 'सुरबाला', ओमप्रकाश शिव कृत 'भस्मासुर दहाड़ रहा है', जीवितराम सेतपाल कृत 'नेतापुराण' । परमात्मानन्द पाण्डेय मतवाला ने 'सुरबाला' खण्डकाव्य 'रूबाई छंद' में लिखकर हिन्दी साहित्य के लिए बहुत बडा योगदान दिया है । इन्होंने खण्डकाव्य के माध्यम से दुविधाग्रस्त युवावर्ग को आशावादी संकल्प की दृढता देने का महत्वपूर्ण कार्य किया है । कवि ने सौन्दर्य को कायम रखते हुए साहित्य में नवचैतन्य की रचना की है । मानवता का इतिहास हिंसा की हथेली पर नाचता है, जैसे–

> ''हिंसा में प्रतिपल जीता है मानव का मन यह मतवाला ।
> हिंसा का पूजक है यह मानव प्रतिहिंसा भडकाने वाला ।
> खुले द्वार उन्नति के सारे हिंसा के प्रतिकारों से ।
> हिंसा का पूजक है यह मानव प्रतिहिंसा भड़काने वाला ।

गीति काव्य – हिन्दी गीति काव्य–परम्परा में विद्यापति की गीतिका, तुलसीदास की गीतावली, सूरदास के कृष्णगीत, श्रीधर पाठक की प्रारम्भ, महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'विधि–विडम्बना' आदि प्रमुख रचनाएँ हैं । महाराष्ट्र की साठोत्तरी काव्यधारा में बहुत कम गीतकार हुए हैं । डॉ. अशोक सिंह सोलंकी के गीतों में बच्चों के लिए शिक्षा, उपदेश और मनोरंजन है । माया गोविन्द के गीतों में श्रृंगार व वैराग्य है । माया गोविन्द के गीतों की भाषा ब्रज है ।

''मोहल्लेवालों का सिर दुखाते हैं
गरीब देश के बेरोजगार नौजवान
अपनी गऱीबी कुछ इस प्रकार दिखाते हैं ॥''

ग़ज़ल – हिन्दी काव्य परम्परा में ग़ज़ल लिखने वाले प्रमुख कवि–अमीर खुसरो, दुष्यन्त कुमार, सोम ठाकुर, देवेन्द्र शर्मा 'इंद्र', शेरजंग गर्ग, वन्दना कुंअर बेचैन व गोपालदास 'नीरज' आदि हैं । महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में ग़ज़लें बहुत कम लिखी गई हैं । महाराष्ट्र के बहुत से ग़ज़लकारों ने उर्दू ग़ज़ल में प्रचलित रदीफ, काफिया, वनज आदि की सूक्ष्म तकनीकी कसौटियों से हटकर छंद विधा की तकनीक पर आधारित ग़ज़लें ही अधिक लिखी हैं । डॉ. मनोज सोनकर ने इक्कीस मात्रिक छंदों में ग़ज़लें लिखकर हिन्दी साहित्य में बहुत बड़ा योगदान दिया है ।

मुक्तक – हिन्दी मुक्तक काव्य परम्परा के प्रमुख कवि केशव की 'रतन बावनी'; भूषण की 'शिवा बावनी'; अग्रदास की 'उपदेश', 'उपखाण बावनी'; बिहारी की 'सतसई'; देव कृत भव विलास; चिन्तामणि कृत कविकुल कल्पतरू; जनकराज किशोरी शरण की 'सिद्धान्त चौंतीसी' व 'बारहखड़ी' और जायसी की 'अखरावट' आदि रचनाएँ हैं । महाराष्ट्र में कम कवियों ने मुक्तक संग्रह लिखे हैं । मुक्तकों में समसामायिकता है इसलिए वह प्रासंगिक है ।

''पत्थर थे चिकने थे, कहने को अपने थे
आजकल उनमें नोकें उभर आई हैं
फूलों से सपने थे, बादल थे, झरने थे
उनमें विषकन्या की झांई उतर आई है ।''

हाइकू – हिन्दी हाइकू काव्य परम्परा में हाइकू कवि इस प्रकार हैं– डॉ. सत्यभूषण वर्मा, सुधा गुप्ता, डॉ. प्रभा शर्मा, सुश्री जीवनलता, सुश्री शैला सक्सेना, डॉ. सरोजिनी अग्रवाल, सुश्री आभा पूर्वे, डॉ. सुधा गुप्त आदि । महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में हाइकू जैसी नयी विधा पर काव्य रचना की गई है । इसमें सभी सामाजिक, राजकीय, प्राकृतिक विषयों पर काव्य रचा गया है । महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में हिन्दी हाइकू काव्य लिखने वाले कवि डॉ. मनोज सोनकर हाइकू के काव्य में प्रकृति, आन्तरिक जगत् के साथ सामाजिक चेतना का चित्रण किया है ।

लम्बी कविता – हिन्दी लम्बी काव्य परम्परा के प्रमुख कवि निराला की 'राम की शक्ति पूजा, अज्ञेय कृत नदी के द्वीप, बलदेव बंशी की 'रैन बसेरा', रमेश कुंतल मेघ की 'पुनर्जन्म बार–बार', सुरेश ऋतुपर्णा की प्रत्यावर्तन, नागार्जुन की 'हरिजन गाथा' और डॉ. नगेन्द्र मोहन की 'प्रिय बहन' आदि रचनाएँ हैं । महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में सिर्फ तीन कवियों ने लम्बी कविताएँ लिखी हैं । डॉ. पद्मजा घोरपड़े ने मनोविश्लेषणात्मक, डॉ. मदनमोहन तरूण ने मिथकीय और डॉ. दामोदर खडसे ने श्रृंगारिक लम्बी कविता लिखकर हिन्दी साहित्य में योगदान दिया है । डॉ. पद्मजा घोरपड़े ने एक लम्बी कविता लिखी है । इस लम्बी कविता में स्वप्न जगत् और मनोविज्ञान है । इसमें भूतकाल एवं वर्तमान काल में घटित होने वाली घटना, संवाद, संघर्ष, रहस्य व जीवन विषयक दर्शन आदि का संकेत है ।

गद्यकाव्य – हिन्दी गद्यकाव्य परम्परा के प्रमुख कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर कृत साधना, रायकृष्णदास कृत 'छायापथ', 'पगला' व 'संपाल', वियोगी हरि कृत 'श्रद्धाकण', चतुरसेन शास्त्री कृत अन्तस्तल, रामकुमार वर्मा कृत 'हिमहास', दिनेश नन्दिनी डालमिया कृत 'जीवन कण' एवं 'जीवन धूलि' और रघुवीर सिंह कृत 'गेहूँ और गुलाब' आदि रहे हैं । महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी धारा के गद्यकाव्य लिखने वाले कवि बहुत कम हैं । इन महाराष्ट्र के गद्य कवियों का हिन्दी के प्रचार प्रसार में बड़ा योगदान है । माया गोविन्द के गद्यकाव्य में समाज में बिखरी असंगतियों में जीना सिखाना बड़ा योगदान है ।

मुक्तछन्द काव्य – हिन्दी मुक्तछन्द काव्य लिखने वाले प्रमुख कवि अमृता प्रीतम की 'पानी की लकीर', अरूण कमल की 'अपनी केवल धार', कृष्ण मिश्र की 'जवानी जागा करती है', जगदीश गुप्त की 'डूबते इतिहास का गवाह' आदि । महाराष्ट्र के मुक्तछन्द के कवियों में डॉ. ऋचा शर्मा ने मुक्तछन्द काव्य में सामाजिक यथार्थ कृषकों एवं श्रमिकों का आर्थिक दोहन, आतंकवाद, महिलाओं का यौन शोषण, साम्प्रदायिकता, वोट-बैंकों की व्यूह-रचना, बेरोजगारी, महँगाई, घूसखोरी, मूल्य-हीनता, बनावटीपन, मुखौटाधारी, संस्कृति नारी विमर्श, नारी जीवन से जुड़े अनेक प्रश्न आदि का चित्रण किया है । डॉ. पद्मजा घोरपड़े के मुक्तछन्द में प्रकृति की दृश्य-अदृश्य, श्रव्य-अश्रव्य, इन्द्रियग्राह्य-इन्द्रियातीत, स्थिति गतियों पर मानवीय संवेदनाओं का सहज वर्णन किया है । महाराष्ट्र में गाँव की यात्राओं में लोकसंस्कृति दिखाई देती है, इसका चित्रण 'यात्राएँ' कविता में किया है । जैसे-

> ''पा जाता है अनायास एक अहसास.....
> यही अहसास, यात्राओं में छुअन की तरह साथ होती है
> प्रार्थनाघरों में गूंजती घंटानाद-सी
> घुमड़ती है वह मेरे भीतर-बाहर
> कैसे बताऊं कि प्रार्थनाएँ किस तरह
> कवच बनकर मुझे अखण्ड रखती हैं ।''

काव्यगत विषयों के आधार पर महाराष्ट्र के कवियों का योगदान –

समाज विषयक काव्य लिखने वाले महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी कवियों का योगदान

हिन्दी साहित्य में समाज विषयक काव्य लिखने वाले कवि कबीर, श्रीधर पाठक, नागार्जुन, रांगेय राघव, भवानी प्रसाद मिश्र आदि हैं । महाराष्ट्र के समाजपरक काव्य लिखने वाले कवि इस प्रकार हैं- रामसनेही कनौजिया 'स्नेही' की समाज विषयक कविताओं में समाज में ऊँच-नीच भेदभाव की समस्या आतंकवाद, मदिरा की समस्या, महँगाई, भ्रष्टाचार आदि विषयों का वर्णन किया है । नरेन्द्र परिहार 'एकांत' समाज विषयक कविताओं में आरक्षण, सामाजिक समस्या, भ्रष्टाचार, विदर्भ आदि का चित्रण हुआ है । डॉ. अनिल कुडिया 'नगरी' ने समाज विषयक काव्य में महाराष्ट्र के निम्न और उपेक्षित समाज का चित्रण किया है । भीख मांगने वाले, चोरी, मजदूरी करते लाखों करोडों निरपराध, लावारिस, शोषित छोटे बच्चों की पीड़ाओं का वर्णन किया है । जैसे-

''शापित हैं, जवान ये होते नहीं
खिलौनों और चॉकलेट के लिए रोते नहीं
सरकारी वादे कभी पूरे होते नहीं,
गन्दगी के कीड़े नाली में सड़ते हैं
जिन्दगी के स्कूल में पढते हैं
जिन्दा रहने के लिए रोज जिन्दगी से लड़ते हैं ।''

हिन्दी काव्य परम्परा में राजनीति विषयक काव्य लिखने वाले प्रमुख कवि राधाकृष्णदास, नागार्जुन, रघुवीर सहाय व धूमिल आदि कवि हैं । महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में राजनीति विषयक काव्य लिखने वाले कवि कम हैं । डॉ. हणमंतराव पाटील के राजनीतिक काव्य में नेता की कथनी करनी में भेद आदि का चित्रण किया है । रामसनेही कनौजिया 'स्नेही' के राजनीतिक काव्य में कुशासन, भ्रष्टाचार, राजनैतिक विडम्बनाएँ, कुर्सी और वोट की राजनीति आदि का वर्णन किया है ।

हिन्दी देशप्रेम काव्य परम्परा के प्रमुख कवि मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, श्रीधर पाठक, महावीर प्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शंकर शर्मा आदि हैं । महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में देशप्रेम विषयक काव्य लिखने वाले कवि इस प्रकार हैं- नरेन्द्र परिहार 'एकांत' के देशप्रेम विषयक काव्य में विश्वबन्धुत्व, इन्सानियत, स्वतन्त्रता, समता, लोकतन्त्र, सामाजिक सम्पन्नता, आदर्शवाद व महान नेताओं का गुणगान आदि के माध्यम से देश का उत्थान करने का प्रयास किया है । डॉ. इंदु पाण्डेय, डॉ. बलभीमराज गोरे व रवि रश्मि 'अनुभूति' के देशभक्ति काव्य में राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति, एकता आदि का चित्रण है ।

हिन्दी वीर काव्य परम्परा के प्रमुख कवि भूषण कृत 'छत्रपति शिवाजी' आदि की रचनाएँ हैं । महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में वीरता पर सम्पूर्ण कृति नहीं लिखी गई लेकिन अपने काव्य संग्रह में वीरता युक्त कुछ कविताएँ लिखने वाले कवि निम्न हैं- जीवितराम सेतपाल के काव्य में वीर जवानों के शौर्य व शहादत का चित्रण है । वामन हतागले के वीरता युक्त काव्य में जवानों का शौर्य, वीरों की शहादत, अहिंसावादी वीर आदि का वर्णन हुआ है । विनोदकुमार उइके 'दीप', रजनी पाथरे राजदान, रामसनेही कनौजिया 'स्नेही' व डॉ. दयानन्द शर्मा 'मधुर' के वीरता युक्त काव्य में बहादुर सैनिकों का शौर्य गान है ।

हिन्दी काव्य परम्परा में भक्ति विषयक काव्य लिखने वाले कवि कबीर, तुलसी, सूरदास, जायसी, रैदास, नानकदेव, हरिदास, निरंजनी, दादू दयाल, सुन्दरदास, नाभादास, देव, भारतेन्दु, बाबू हरिश्चन्द्र आदि हैं । महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में भक्ति विषयक काव्य लिखने वाले कवि कम हैं । इन कवियों ने भक्ति विषयक सम्पूर्ण रचना नहीं लिखी है । माया गोविन्द के भक्ति काव्य में कृष्ण भक्ति व भगवान कृष्ण को पति रूप में पाने की इच्छा व्यक्त की है । वामन हतागले व डॉ. दयानन्द शर्मा 'मधुर' के भक्ति विषयक काव्य में माँ शारदे का गुणगान है । सुदर्शन चूहडराम शर्मा 'रथांग' के काव्य में कृष्ण भक्ति का वर्णन है ।

माया गोविन्द व डॉ. हणमंतराव पाटील के श्रृंगार विषयक काव्य में लौकिक तथा अलौकिक श्रृंगार है । डॉ. हणमंतराव पाटील के काव्य में अलौकिक श्रृंगार का संकेत मिलता है । डॉ. हणमंतराव पाटील निर्गुण ब्रह्म, माया गोविन्द सगुण कृष्ण का प्रेम प्राप्त करना चाहती हैं । डॉ. दयानन्द शर्मा 'मधुर', रामसनेही कनौजिया 'स्नेही', आसावरी काकडे, बलदेव निर्मोही, डॉ. वर्षा पुनवटकर, विनोदकुमार उइके 'दीप', सुदर्शन शर्मा 'रथांग', हिरामण लांजे 'रमानंद', डॉ. दामोदर खडसे, परमात्मानन्द पाण्डेय, डॉ. कान्तिदेवी लोधी, रजनी पाथरे 'राजदान', डॉ. शशिकान्त शर्मा, डॉ. ऋचा शर्मा, डॉ. इन्दु पाण्डेय, गीतेश गीत, छगन पंचे 'छगन', वामन हतागले, प्रकाश कांबले, नरेन्द्र परिहार 'एकांत', डॉ. सागर खादीवाला आदि का श्रृंगार लौकिक है ।

हिन्दी काव्य परम्परा में स्त्री विषयक काव्य लिखने वाले कवि विद्यापति, घनानन्द, मीरा, जयशंकर प्रसाद, सुभद्राकुमारी चौहान, मैथिलीशरण गुप्त व निर्मल वर्मा आदि रचनाकार हैं । डॉ. ऋचा शर्मा के स्त्री विषयक काव्य में कवयित्री की पुरूष के विरोध में मुहिम नहीं है और न परिवार व्यवस्था को चोट पहुँचाने की बात है । कवयित्री सिर्फ़ स्त्री जीवन को आघात पहुँचाने वाले या उसे कुण्ठित करनेवाले, उसके विकास में बाधा आने वाली हर एक समस्याओं का हल ढूँढना चाहती है ।

हिन्दी काव्य परम्परा में बालजगत् विषयक काव्य लिखने वाले कवि सूरदास, पं. श्रीधर पाठक, रमेश तैलंग, स्वर्ण सहोदर, द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी, सोहनलाल द्विवेदी आदि हैं । डॉ. ठाकुर अशोक सिंह सोलंकी ने बच्चों पर अच्छे संस्कार, शिक्षा, मनोरंजन आदि की अभिव्यंजना की है । गीतेश गीत, नरेन्द्र परिहार 'एकांत', रवि रश्मि 'अनुभूति' व अनिल मालोकर के बालजगत् काव्य में बाल मजदूरी की समस्या और बालकों के शोषण का चित्रण है । सुदर्शन शर्मा 'रथांग', मालती शर्मा, डॉ.वर्षा पुनवटकर के बालजगत् काव्य में बच्चों के मनोरंजन का वर्णन किया है । आत्माराम टोबरे ने महाराष्ट्र के गाँव के बच्चों का वर्णन किया है । जैसे-

''बकरियों का जत्था हांकता
एक देहाती छोरा अपनी धुन में
एक फिल्मी गीत गुन-गुना रहा था ।
और बीच-बीच में हुई-र हा करके
अपने देश का गौरव गीत में
बडी लगन से सुना रहा था ।''

हिन्दी काव्य परम्परा पर प्रादेशिक रंग (त्योहार) पर लिखने वाले कवि नागरीदास कृत फाग-विलास, होरी की माँझ, फागविहार, गिरिधरदास कृत दनुजारि स्तोत्र व शिव स्तोत्र, जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' कृत 'जीवन संगीत' आदि हैं । महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में एक भी सम्पूर्ण रचना इस विषय में नहीं लिखी, लेकिन अपने काव्य में एक-दो कविता लिखी है । वे कवि इस प्रकार है- नरेन्द्र परिहार 'एकांत', ओमप्रकाश शिव, छगन पंचे 'छगन', डॉ. मनोज सोनकर, आत्माराम टोबरे, रवि रश्मि अनुभूति ने संस्कृति विषयक काव्य

में भारतीय त्योहारों का वर्णन किया है जैसे–दीपावली, होली आदि । डॉ. दामोदर खडसे व आसावरी काकडे ने संस्कृति विषयक काव्य में यात्रा वर्णन के माध्यम से लोक संस्कृति को दिखाया है । आसावरी काकडे ने महाराष्ट्र में यात्रा के नाम पर अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, बलि प्रथा का वर्णन किया है । जैसे–

''न जाने कहाँ–कहाँ से आए यात्री
उस वृक्ष की घनी छाँव में
कुछ समय के लिए पनाह लेते हैं ।''

हिन्दी काव्य परम्परा में व्यंग्य काव्य लिखने वाले प्रमुख कवि गोपालप्रसाद व्यास और बेदुम बनारसी आदि रचनाकार है, महाराष्ट्र के साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में सिर्फ़ दो कवियों की सम्पूर्ण व्यंग्य रचना है– जीवितराम सेतपाल व अनिल मालोकर । बाकी कवियों ने अपने रचना में कुछ व्यंग्य विषयक कविता लिखी हैं । जीवितराम सेतपाल के व्यंग्य विषयक काव्य में राजनीति विकृतियों को उजागर किया है । अनिल मालोकर ने वर्तमान राजनैतिक मानसिकता एवं मूल्यों के पतन पर आम आदमी की प्रतिक्रिया के प्रतिबिम्बों का व्यंग्यात्मक चित्रांकन किया ।

हिन्दी काव्य परम्परा में हास्य–व्यंग्य विषयक काव्य लिखने वाले कवि ईश्वरीप्रसाद शर्मा, हरिशंकर शर्मा, प्रतापनारायण मिश्र, पाण्डेय बेचेन शर्मा 'उग्र', कृष्णदेव प्रसाद गौड उपनाम 'बेढब बनारसी', अन्नपूर्णानन्द, कान्तानाथ पाण्डेय 'चोंच' और शिवरत्न शुक्ल आदि रचनाकार हैं । महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में हास्य–व्यंग्य विषयक काव्य संग्रह लिखने वाले सिर्फ़ दो कवि डॉ.जर्रा काझी व अनिल मालोकर हैं । लेकिन अपने काव्य संग्रह में कुछ हास्य–व्यंग्य कविताएँ लिखने वाले कवि भी हैं ।

हिन्दी काव्य परम्परा में प्रकृति विषयक काव्य लिखने वाले कवि सुमित्रानन्दन पन्त, जयशंकर प्रसाद, निराला, केदारनाथ अग्रवाल, जगमोहन सिंह आदि रचनाकार हैं । महाराष्ट्र में प्रकृति विषयक सम्पूर्ण काव्य संग्रह एक भी नहीं लिखा गया । लेकिन अपने काव्य संग्रह में कुछ कविताएं प्रकृति विषयक लिखी हैं । वे कवि इस प्रकार हैं– सभी कवियों ने प्रकृति के आलम्बन व उद्दीपन रुप का चित्रण किया है । डॉ. पद्मजा घोरपड़े, डॉ. मालती शर्मा, सरोज व्यास, डॉ. दामोदर खडसे, रवि रश्मि' अनुभूति', डॉ. वर्षा पुनवटकर आदि ने प्रकृति का प्रतीकात्मक रूप में वर्णन किया है ।

दोहा – हिन्दी काव्य परम्परा में दोहा लिखने वाले प्रमुख कवियों कबीर कृत कबीर के दोहे, रैदास कृत रैदास के दोहे, तुलसीदास कृत दोहावली और दुलारेलाल कृत दुलारे–दोहावली आदि रचनाएँ लिखी हैं । महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में जीवितराम सेतपाल ने खण्डकाव्य 'नेता पुराण' को दोहा छंद में लिखकर एक नया प्रयोग किया । यह हिन्दी साहित्य के लिए बहुत बड़ा योगदान है ।

कुण्डलिया छंद – महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में कुण्डलिया छंद लिखने वाले एक कवि हैं– अविनाश बागडे । इन्होंने दहशत, कमजोरों की मदद करना, विश्व शान्ति, प्रेम से रहना अहिंसा आदि विषयों पर कुण्डलिया लिखी हैं ।

सोरठा छंद – हिन्दी काव्य परम्परा में सोरठा लिखने वाले कवि रहीम कृत श्रंगार सोरठा आदि । महाराष्ट्र में सोरठा छंद लिखने वाले कवि दो हैं– गोवर्धन शर्मा ने सामाजिक व पारिवारिक समस्या पर, रक्षक भक्षक आदि विषयों पर सोरठे लिखे हैं । रामसनेही कनौजिया 'स्नेही' ने सामाजिक विषय पर सोरठे लिखे हैं ।

कवित्त छंद – हिन्दी काव्य परम्परा में कवित्त छंद लिखने वाले प्रमुख कवि नागरीदास कृत 'रास के कवित्त' व 'छूटक के कवित्त', सेनापति कृत 'कवित्त रत्नाकर', तुलसीदास कृत 'कवितावली' आदि हैं । महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में इस छंद में लिखने वाली एक कवयित्री है– माया गोविन्द । इन्होंने त्योहार, भक्ति कृष्ण की रासलीला, श्रंगार आदि विषयों को लेकर कवित्त लिखी हैं ।

सवैया छंद – हिन्दी काव्य परम्परा में सवैया छंद लिखने वाले प्रमुख कवि घनानन्द, रसखान, आलम, भूषण, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, लक्ष्मणसिंह, नाथूराम 'शंकर', जगदीश गुप्त आदि हैं । महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में लिखने वाली एक कवयित्री है माया गोविन्द । इन्होंने कृष्ण भक्ति, प्रेम रस, कृष्ण आदि विषयों में सवैया लिखे हैं । अतः हम कह सकते हैं कि महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा में लिखने वाले कवियों का योगदान अनमोल है ।

निष्कर्ष – महाराष्ट्र की साठोत्तरी हिन्दी काव्यधारा के कवियों के काव्य में विषयों की विविधता तथा नवीनता मिलती है । डॉ.अनिल कुडिया ने महाराष्ट्र के निम्न और उपेक्षित लोगों का वर्णन किया है । हिरामण लांजे 'रमानंद' ने महाराष्ट्र के किसानों का वर्णन किया है । डॉ. पद्मा पाटील ने महाराष्ट्र के बालविवाह व बालविधवा को 'पहचान' काव्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है । डॉ. मालती शर्मा ने महाराष्ट्र की देवदासी प्रथा का चित्रण करके एक बडा योगदान दिया है । बालजगत् काव्य में आत्माराम टोबरे ने 'गाँव का बच्चा' काव्य के माध्यम से महाराष्ट्र के देहाती बालक का चित्रण किया है । संस्कृति विषय की दृष्टि से महाराष्ट्र की संस्कृति को 'यात्रा' काव्य के माध्यम से डॉ. दामोदर खडसे, आसावरी काकडे व हिरामण लांजे 'रमानंद' ने दिखाकर हिन्दी साहित्य के लिए बडा योगदान दिया है ।

सन्दर्भ सूची

1. मशाल उठाओ, अनिल कुड़िया 'नगरी', कल्पतरु, 592–बी, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली–110032, वर्ष–2004, पृ. 48
2. देहरी के आर पार, कांतिदेवी लोधी, क्षितिज प्रकाशन, खड़की, पुणे–411003, मई–2005, पृ. 40
3. जीना चाहता है मेरा समय, दामोदर खडसे, पवन प्रकाशन, दिल्ली–110094, वर्ष–2005, पृ. 63
4. मशाल उठाओ, अनिल कुड़िया 'नगरी', कल्पतरु, 592–बी, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली–110032, वर्ष–2004, पृ. 01

5. टूटते एहसास, आत्माराम टोबरे, आत्मरंग प्रकाशन, अमरावती–444601, 21 फरवशी वर्ष 1987, पृ. 48
6. मौन क्षणों का अनुवाद, आसावरी काकडे, कॉन्टिनेन्टल प्रकाशन, विजयनगर, पुणे–411030, 15 अगस्त, वर्ष 1997, पृ. 38

गुजरात की समकालीन हिंदी ग़ज़ल

डॉ. ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'

हिन्दी में ग़ज़ल – ग़ज़ल अरबी में उत्पन्न होकर फ़ारसी में पनपकर हिन्दी और उर्दू में आई । हिन्दी में इसे आयातित विधा मानकर सदियों तक उपेक्षित रखा गया परंतु उर्दू में इसे खूब सँवारा गया । 'मीर', 'गालिब', 'मोमिन', 'जौक', 'दाग़', 'जिगर', 'फ़ैज', 'फ़िराक', 'साहिर' जैसे अनेक शायरों ने ग़ज़ल के गुलशन को महकाया और इनके शेरों की ताजग़ी को हिन्दी के पाठकों ने भी महसूस किया । हिन्दी में भी खुसरो के बाद कुछ कवियों जैसे भारतेन्दु, प्रसाद, निराला, प्रतापनारायण आदि ने ग़ज़लें कहीं परंतु संख्या में बहुत कम और असर में कमजोर । बलबीरसिंह रंग, बालस्वरूप राही, शमशेर और दुष्यंत आदि ने हिन्दी में पहली बार पाए की ग़ज़लें कहीं । आपतकाल और भ्रष्ट तंत्र से त्रस्त देश ने दुष्यंत की ग़ज़लों को हाथो-हाथ लिया । दुष्यंत क्या लोकप्रिय हुए हिन्दी में मानो ग़ज़लों की बाढ-सी आ गई । आजकल हिन्दी काव्य-क्षेत्र में जिस विधा में सर्वाधिक रचनाओं का सृजन हो रहा है वह विधा है ग़ज़ल-विधा । कोई भी पत्रिका उठा लीजिए उसमें ग़ज़लें भरपूर होती हैं । कवि-सम्मेलनों में भी ग़ज़ल खूब चल रही है । जिस ग़ज़ल-सुंदरी ने सदियों से उर्दू के शाइरों को अपने मोहपाश में बाँधा हुआ है आज उसका जादू हिन्दी के कवियों के सर चढ़कर बोल रहा है । न्यूनाधिक हर हिन्दी कवि ग़ज़ल-विधा में हाथ आजमा रहा है । जो गीतकार थे वे भी ग़ज़ल लिख रहे हैं और कुछ पूर्णरूपेण ग़ज़ल को ही समर्पित हैं ।

ग़ज़ल पढ़ने-सुनने में बडी दिलकश लगती है परंतु कहने में कठोर अनुशासन की माँग करती है । महबूब से गुफ्तगू का नाम ग़ज़ल है ऐसा माना जाता है । इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि प्रेम-श्रृंगार की बातें करना ही ग़ज़ल है । ग़ज़ल के शेर का भाव या विषय कुछ भी हो सकता है, परंतु कहन में महबूब से गुफ्तगू जैसी नफ़ासत की दरकार है । मेरे विचार में ग़ज़ल शेरियत या तग़ज्जुल से भरपूर शेरों का समूह है जो एक ही जमीन (बहर, रदीफ़, काफ़िये का विधान) में कहे गए हों । ग़ज़ल का हर शेर भाव की दृष्टि से स्वतंत्र इकाई होता है अर्थात् हर शेर एक कविता, एक कहानी होता है ।

गुजरात में हिन्दी ग़ज़ल – हिन्दी में बहुतायत में ग़ज़लें अवश्य लिखी जा रही हैं परंतु अधिकतर कवियों ने ग़ज़ल के बाह्याकार को ही ग्रहण किया है । कम ही कवि ऐसे हैं जिन्होंने ग़ज़ल के मर्म को सही अर्थों में समझा है । लेकिन हाल के दिनों में हिन्दी में दुरुस्त ग़ज़ल लिखने वालों की संख्या बढी है जो एक अच्छा संकेत है । हिन्दी ग़ज़ल की जो स्थिति पूरे देश में है, कमोबेश वही स्थिति गुजरात में भी है । यहाँ भी गजल बहुत तादाद में लिखी जा रही है लेकिन सही ग़ज़ल कहने वाले कम ही हैं । देशभर की हिन्दी ग़ज़ल की ही तरह गुजरात की हिन्दी ग़ज़ल भी हुस्नो-इश्क, शराब-जाम, विसाल, हिज्र से बाहर आ चुकी है । इस ग़ज़ल के केन्द्र में हैं समाज, शोषित-वंचित वर्ग, राजनैतिक पाखंड, आम आदमी की समस्याएँ, बाजारीकरण, मानवीय मूल्यों का क्षरण, विज्ञान, पर्यावरण, देशप्रेम, मानवीय जिजीविषा । अर्थात् गुजरात की हिन्दी ग़ज़ल परम्परा का निर्वाह करते हुए युगीन यथार्थ के साथ कदम से कदम मिलाकर चल रही है । गुजरात के कई ग़ज़लकार हिन्दी

ग़ज़ल के राष्ट्रीय फलक पर अपनी पहचान बना चुके हैं और हिन्दी ग़ज़ल को एक सम्मानित स्थान दिलाने में लगे हैं । आइये अब कतिपय हिन्दी ग़ज़लकारों के संक्षिप्त परिचय के माध्यम से गुजरात की हिन्दी ग़ज़ल का जायजा लेने का प्रयास करते हैं ।

गुजरात के हिन्दी ग़ज़लकार – सुल्तान अहमद गुजरात की हिन्दी ग़ज़ल का ही नहीं वरन देशभर की हिन्दी ग़ज़ल का एक बहुत बड़ा नाम है । इन्होंने जहाँ अपनी ग़ज़लों के माध्यम से हिन्दी काव्य-संसार को समृद्ध किया वहीं अपने ग़ज़ल संबंधी आलेखों और पुस्तकों के माध्यम से हिन्दी ग़ज़ल के स्वरूप-निर्धारण में महती भूमिका निभाई है । इनके तीन ग़ज़ल संग्रह –'मुट्ठी में बंद ज्वालामुखी', 'नदी की चीख' और 'नदी हाशिए पर' शीर्षकों से प्रकाशित हुए हैं । सुल्तान अहमद की ग़ज़लों के बारे में ग़ज़लकार नूर मुहम्मद 'नूर' कहते हैं "उनकी ज़्यादातर ग़ज़लें पढ़ने से तअल्लुक रखती हैं । दिल और दिमाग दोनों एक साथ इन ग़ज़लों में धड़कते हैं । आदमी और उसके जीवन के खुरदुरे यथार्थ, उसके समाज और देश के बाहरी-अंदरूनी हालात की इबारतें हैं ये ग़ज़लें । ग़ज़ल में आई भाषा एक और उपलब्धि है, इन ग़ज़लों की । दरअस्ल यह वही भाषा है जिसकी तलाश अपनी ग़ज़लों के लिए हर हिन्दी ग़ज़लकार को करनी चाहिए ।"(समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, खंड-1, सं. हरेराम समीप, पृ-409) । प्रसिद्ध ग़ज़लकार और आलोचक ज्ञानप्रकाश विवेक लिखते हैं- "सुल्तान अच्छी ग़ज़लों के ही नहीं अच्छी बहरों के भी ग़ज़लकार हैं । वे उर्दू शायरी की परम्परा का निर्वाह करते हुए शेर कहते हैं । कुछ इस अंदाज से कि ग़ज़लें हिन्दी की भी लगती हैं और उर्दू की भी । सुल्तान एक खास मिजाज के ग़ज़लकार हैं । विनम्रता और सादगी उनकी ग़ज़लों के विन्यास को करखत और सखत होने से बचाती हैं । यहाँ बौखलाहट के स्वर नहीं हैं ।"(हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा, सं. हरेराम समीप, पृ-334) डॉ. आलोक गुप्ता सुल्तान अहमद की ग़ज़लों के बारे में कहते हैं- "सुल्तान अहमद की कविता की एक विशेषता यह है कि उसने अत्यंत आवश्यक विषयों को ही काव्य-वस्तु के लिए चुना है । विषय-वैविध्य के आकांक्षी इसे वस्तुगत संकीर्णता कहकर आत्मतोष प्राप्त कर सकते हैं । सुल्तान अहमद ने उन भयावह जगहों पर अपनी लेखनी चलाई है, जिन्हें मुक्तिबोध पहले कविता में प्रतिष्ठित कर चुके हैं ।"(समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, सं. हरेराम समीप, पृ-419) । समीक्षक गार्गी शाह के अनुसार "सुल्तान की ग़ज़लों में दो चीजे हमारा ध्यान खींचती हैं- 'एक तो उनका समसामयिक सरोकार और दूसरा उनके तीखे तेवर ।' ग़ज़ल की शास्त्रीयता, स्वरूप और भाषा के विषय में जितनी विद्वता और अधिकार से सुल्तान बोलते हैं, उतनी ही संवेदनशीलता और सच्चाई से वे अपनी ग़ज़लों में आम आदमी के दुख को तराशते हैं, तो कभी राजनीति के घिनौने चेहरे को बेनकाब करते हैं ।" (हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा, सं. हरेराम समीप, पृ-335) । वरिष्ठ आलोचक डॉ. शिवकुमार मिश्र सुल्तान अहमद के बारे में कहते हैं- "हिन्दी में वे एक ऐसे कवि के रूप में पहचाने और सराहे गए, जिनकी रचना में हिन्दी-उर्दू दोनों की काव्य-परंपरा लगभग एक-दूसरे में जज़्ब होती हुई सार्थकता पाती है ।"(समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, खंड-1, सं. हरेराम समीप, पृ-407) । प्रसिद्ध ग़ज़लकार व आलोचक हरेराम समीप लिखते हैं-

''सुल्तान अहमद की ग़ज़लों के अध्ययन से निस्संदेह कहा जा सकता है कि इन ग़ज़लों में स्वानुभूत यथार्थ को सार्थक अभिव्यक्ति मिली है । वे हिन्दी ग़ज़ल में कबीर की परम्परा के कवि की तरह प्रस्तुत हुए हैं, जहाँ वे ऐसे परिदृश्य की सृष्टि करते हैं जिसमें मनुष्यता की गरिमा की रक्षा का संकल्प निहित है ।''(हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा, सं. हरेराम समीप, पृ-336) । सुल्तान अहमद की ग़ज़लगोई के हुनर को साबित करता हुआ एक शेर प्रस्तुत है-

रख दें अंगार पर जुंबां कैसे
दे दें अपना सही बयां कैसे

भगवानदास जैन गुजरात के एकजाने-माने ग़ज़लकार हैं । इन्होंने एक उम्र लगाई है हिन्दी ग़ज़ल की नोंक-पलक सँवारने में । जैन साहब के पाँच ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हैं जिनके नाम हैं- 'जिन्दा है आईना', 'कठघरे में हूँ', 'देख नजारे नई सदी के', 'जिन्दगी के बावजूद' तथा 'नई परवाज' । जैन साहब की ग़ज़ल-साधना के विषय में प्रसिद्ध ग़ज़लकार चन्द्रसेन विराट कहते हैं- ''श्री जैन जी की ग़ज़लों में भाषा का विशेष संतुलन मिलता है । यह बडी बात है, तथापि मुझे मिजाज एवं कहन का तेवर उर्दू की ग़ज़लवाला ही दृष्टिगत होता है । लोगों को यह प्रयत्न करके भी नसीब नहीं होता जो आपको सहज ही उपलब्ध है । यही ग़ज़ल का प्राप्य है कि वह प्रभविष्णु हो उठती है । देश के जनसाधारण पर कवि की दृष्टि है जो 'लोकतंत्र का बोझिल ठेला' ठेल रहा है ।''('कठघरे में हूँ' के फ्लैप पर) । विद्वान समीक्षक डॉ. अंबाशंकर नागर जैन साहब के बारे में लिखते हैं- ''भाई भगवानदास जैन एक सर्जक के रूप में सामाजिक दायित्व के प्रति सजग और सावधान हैं । वे बेबाक, बेलाग अपनी बात कहते हैं, इसलिए उनकी ग़ज़लें पाठक के दिलो-दिमाग को झकझोरती हैं । उनकी ग़ज़ल की उल्लेखनीय विशेषता कथ्य के स्तर पर सर्वहारा वर्ग के प्रति उनकी सहानुभूति और शिल्प के स्तर पर भाषा और बहर पर उनका काबू है ।''('गुजरात की समकालीन हिन्दी कविता') । पद्मश्री गोपालदास 'नीरज' जैन साहब के लिये कहते हैं ''आपकी ग़ज़लों में भरपूर शेरियत के साथ-साथ नया सोच और ग़ज़ल का लहजा भरपूर विद्यमान है । आपके कुछ शेर ऐसे हैं जो बरबस जबान पर बैठ जाते हैं और यही ग़ज़ल की सबसे बडी सार्थकता है । आप जिस प्रकार से निरंतर साधना-रत हैं वह निश्चित ही एक दिन फलीभूत होगी और आपके शेर लोगों के कंठहार बनेंगे ।''('देख नजारे नई सदी के' के कवर फ्लैप से) । वरिष्ठ कवि डॉ. किशोर काबरा जैन साहब के बारे में फरमाते हैं ''पश्चिमांचल के हिन्दी कवियों में केवल ग़ज़ल-काव्य विधा के सहारे कलम का पूरा उत्स प्रकट करने वाले प्रो. भगवानदास जैन में दुष्यंत की साफगोई, त्यागी की ऋजुता और भवानीशंकर की धार मौजूद है ।'' ('देख नजारे नई सदी के' के कवर फ्लैप से) । वरिष्ठ कवि डॉ. माणिक मृगेश जैन साहब के बारे में लिखते हैं- ''दो पंक्तियों में एक सम्पूर्ण विचारधारा को समेटना विद्वतापूर्ण कला है, फन है । इस फन में प्रो. भगवानदास जैन को महारत हासिल है । प्रो. जैन देश के उन अग्रणी ग़ज़लकारों में से हैं जिन्होंने अपना संपूर्ण जीवन तपाया है और तपन के बाद चौबीस कैरेट का कुंदन देने में सफल हुए हैं ।''('देख नजारे नई सदी के' के कवर फ्लैप से) । प्रो. भागवतप्रसाद मिश्र 'नियाज' के अनुसार

''उनके दिल में जो टीस है, दर्द है, छटपटाहट है उसे आप तक पहुँचाने के लिए ये ग़ज़लें क़ासिद का काम करती हैं ।''('देख नजारे नई सदी के' के कवर फ्लैप से) । जैन साहब की शाइरी का पता देता हुआ एक शेर-

जश्ने-चरागाँ देख के पंछी सिहर गए
कुछ तो बमों के शोर में बेमौत मर गए

डॉ. सतीन देसाई 'परवेज' गुजरात की धरती के एक ऐसे ग़ज़लकार हैं जो गुजराती, उर्दू और हिन्दी तीनों भाषाओं में खूब लिखते हैं । हिन्दी में आपके दो ग़ज़ल-संग्रह 'कबीरी तार' और 'तो, मैं, मैं न था वहाँ' शीर्षकों से प्रकाशित हैं । 'परवेज' साहब के बारे में समीक्षक डॉ. दिलीप मेहरा कहते हैं- ''सतीन देसाई की रचनाओं में मानवीय-मूल्यों का स्वर कूट-कूट कर भरा हुआ मिलता है । सतीन देसाई एक परिपक्व और बुलंद फिक्र शायर हैं । उनके पास एक ओर दरियाई दिल है तो दूसरी ओर अन्याय के लिए वे उग्र और कठोर भी हैं । सतीन का साहित्य करुणा और वात्सल्य से ओतप्रोत है ।''('कबीरी तार' की भूमिका से) । ग़ज़लकार 'अक्स' लखनवी साहब फरमाते हैं- ''डॉ. परवेज ने जुल्फ के पेचो-खम में उलझने की जगह, हयात नाम की माशूका के जुल्फे-मसाइल में उलझना ज्यादा बेहतर और माकूल समझा । कोई अछूती बात कहना या कही हुई बात को अछूतेपन से कहना ही शायर का कमाल है । और इस फन में डॉ. सतीन देसाई 'परवेज' खूब माहिर हैं ।''('कबीरी तार' की भूमिका से) । समीक्षक डॉ. जय वैरागी कहते हैं- ''डॉ. सतीन सामाजिक न्याय के सिद्धांत के मुखर प्रवक्ता है । और कवि जब मुखर होता है तो समस्त सामाजिक 'निदर्शना' उसकी रचनाओं में स्वतः प्रकट हो जाती है । कवि की मनोवृत्ति पूर्णरूपेण सूफ़ियाना है ।'' सतीनजी के बारे में ग़ज़लकार दीक्षित दनकौरी कहते हैं ''डॉ. सतीन देसाई की ग़ज़लों में शब्दावली की गरिष्ठता, उनकी तरबीयत और माहौल से सिद्ध होता है कि शायर रिवायत पसंद है और तजुर्बे से लबरेज है, लेकिन नए प्रयोग करने में भी दिलचस्पी रखता है । नये-नये रदीफ-काफियों का प्रयोग इनके यहाँ है जो पाठक को अलग अन्दाज से मजा देता है ।'' उनकी कारीगरी का एक नमूना देखिये-

कबीरा ने बुनी थी एक बच्चे को ही ओढाने
बराबर जिस्म के करूँ मैं कैसे चादर को

डॉ. अंजना संधीर गुजरात की एक सफल ग़ज़लकार के रूप में जानी जाती हैं । इन्होंने मंच और ग्रंथ दोनों में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया है । इनके तीन ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित हैं जिनके नाम हैं- 'बारिशों का मौसम', 'धूप-छाँव और आँगन' तथा 'मौजे-सहर' । अंजना जी के विषय में पद्मश्री गोपालदास 'नीरज' कहते हैं ''उन्होंने अपने लिए खुद रास्ता बनाया है, इसलिए उनकी ग़ज़लों में जो ताजगी है, जो नवीन बिम्ब विधान, जो सहजता, जो शब्द-संयोजन और जो भाषा प्रवाह देखने को मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । लगता है यह खुद नहीं लिखतीं, ग़ज़ल ही उन्हें खुद लिखवाती है । उनकी कलम में बहुत संभावनाएँ हैं ।'' अंजना संधीर की ग़ज़लगोई के मुतल्लिक साहित्यकार समीक्षक सुदर्शन मजीठिया कहते हैं ''अंजना संधीर एक सशक्त और दबंग महिला हैं । अंजना संधीर की रचनाओं में मर्म

को छूने की शक्ति है । वे ग़ज़लकार हैं । इश्क और प्रणय की आनंदमयी स्त्री उनकी रचनाओं में प्राण डालती है । एक सोया हुआ दर्द सहसा उनकी कविताओं में जान डालता है और अनायास ही पाठक की चेतना पर छा जाता है ।'' प्रसिद्ध अरूजी शायर आर पी शर्मा 'महर्षि' अंजनाजी के बारे में लिखते हैं- ''उनकी ग़ज़लों में उर्दू की शीरीनी है तो हिन्दी की मिठास भी तथा लोकगीतों की सरलता-सरसता भी वो परंपरागत भी है और आधुनिक भी । प्यार-मुहब्बत की बातें हैं तो माँ की ममता भी ।'' मशहूर शायर रहमत अमरोहवी लिखते हैं ''अंजना की ग़ज़लों में वक्त के हालात और वक्त की आवाज जगह-जगह नज़र आती है । उनकी ग़ज़लों में एक साफ-सच्ची औरत बोलती हुई नजर आती है । अगर अच्छी और सच्ची शायरी की मिसालें ढूँढ़नी हों तो उनके कलाम में जगह-जगह मिलेंगी ।'' ('धूप-छाँव और आँगन' की भूमिका से) । 'संगम' काव्य-संग्रह की समीक्षा में वरिष्ठ कवि रमेशचंद्र शर्मा कहते हैं- ''प्रेम के अतिरिक्त नारी के पारिवारिक संबंधों पर भी इनके शेर बडे मार्मिक बन पडे हैं । बहुत-शेर ऐसे बन पडे हैं कि जिनको भुलाना चाहें तब भी नहीं भुलाया जा सकता । इन गजलों में शिल्प टटकेपन के साथ उपस्थित है ।'' (भाषा-सेतु, अप्रैल-जून, 2020) अंजनाजी की शेरगोई की बानगी के रूप में एक शेर देखें-

तू जो अपना समझकर बुला लेगा मुझे
ठहर जाऊँगी तेरे घर में उजालों की तरह

ऋषिपाल धीमान 'ऋषि' ग़ज़ल का एक साधक है जिसके चार ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं- 'शबनमी अहसास', 'हवा के काँधे पे', 'जो छूना चाहूँ तो...' और 'तस्वीर लिख रहा हूँ' । अपने विषय में क्या लिखूँ बस कुछ अंश उन वक्तव्यों के दे रहा हूँ जो ग़ज़ल-मर्मज्ञों और समीक्षकों ने मेरी ग़ज़लों के संबंध में दिये हैं । पद्मश्री गोपालदास 'नीरज' कहते हैं ''ऋषिपाल की ग़ज़लें पढ़कर खूब संतोष और सुख मिला है । ग़ज़ल की आत्मा-उसकी बहर और उसके भाषाई मुहावरे की जो सही पहचान इनकी ग़ज़लों में देखने को मिलती है वह कम ग़ज़लकारों के पास है । वर्तमान परिवेश और नये सोच को नये बिम्बों में ऋषि ने जो शब्दायित किया है, वह ह्दिय पर अमिट छाप छोड़ता है । छोटी-बड़ी ग़ज़ल की सभी बहरों में इन्हें महारत हासिल है ।'' (समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, खंड-4, सं. हरेराम समीप, पृ. 267) । डॉ. कुंअर बेचैन लिखते हैं- ''ऋषिपाल धीमान की ग़ज़लों के विषय सामान्यतः सौंदर्य, प्रेम, अध्यात्म, जीवनानुभव तथा वर्तमान यथार्थ रहे हैं, जिनकी अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने भावानुकूल और मुहावरेदार भाषा का प्रयोग किया है । अच्छी ग़ज़ल में सांकेतिक और प्रतीकात्मक भाषा का वर्चस्व सरलता से देखा जा सकता है, सो धीमान की ग़ज़लों में जो एक अतिरिक्त गुण है वह यह है कि उनके द्वारा प्रयुक्त प्रतीक, अगर वे पुराने हैं तो वे नया अर्थ देते हैं और यदि वे नये हैं तो वे नया अर्थ दे ही रहे होते हैं ।'' (समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, खंड-4, सं. हरेराम समीप, पृ. 268) । प्रसिद्ध उस्ताद शायर राजेंद्रनाथ रहबर लिखते हैं- ''ऋषिपाल धीमान की ग़ज़ल में रंगीनी, नफ़ासत, दिलावेजी और दिलकशी उसी हद तक है जो ग़ज़ल के लिए तस्लीम की गई है । उन्होंने जुल्फो-रुखसार की रिवायती शायरी से हटकर ग़ज़ल में भिन्न-भिन्न विषयों की खुशबुएं बोने की भरपूर कोशिश की है और इस कोशिश में वे कामयाब

भी नजऱ आते हैं ।'' ('जो छूना चाहूँ तो' की भूमिका से) । सुप्रसिद्ध ग़ज़लकार और आलोचक प्रो. भगवानदास जैन के शब्दों में ''छोटी-बडी विविध बहरों का निर्दोष प्रयोग सटीक बिम्ब और प्रतीक, संतुलित आमफहम हिन्दी भाषा और दिलचस्प रदीफ-काफिए धीमानजी की ग़ज़ल-साधना की उल्लेखनीय शिल्पगत विशेषताएँ हैं । जहाँ तक कथ्य का प्रश्न है, कवि ने घर-परिवार, समाज, प्रकृति, धर्म, राजनीति आदि बहुविध क्षेत्रों से संबंधित विचारों और भावनाओं को अपनी ग़ज़लों में बखूबी सँजोया है''(हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा, सं. हरेराम समीप, पृ-327) । ग़ज़लकार और समीक्षक जय चक्रवर्ती कहते हैं- ''उनकी ग़ज़लें जिन्दगी की धूप-छाँव, रस-संग, मानवीय मूल्यों का क्षरण, आपसी रिश्तों की टूटन आदि का जीवंत आख्यान हैं । इन ग़ज़लों से गुजरते हुए आपको कई बार ऐसा लगेगा कि ये बात तो आप स्वयं कहना चाह रहे थे ।'' (समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, खंड-4, सं. हरेराम समीप, पृ. 270) । ग़ज़लकार कृष्ण सुकुमार लिखते हैं- ''ऋषिजी एक सधे हुए शाइर हैं जिनका कलम अपने परिवेश और जीवन अनुभवों से रस-रक्त और संवेदनाओं से प्राणतत्व लेकर कामयाब लफ्जों में ग़ज़ल को जिन्दा रखते हैं ।''(साहित्य-नंदिनी, मार्च-2021) । प्रसिद्ध ग़ज़लकार और समालोचक हरेराम समीप कहते हैं- ''ऋषिपाल धीमान एक संवेदनशील और जागरूक ग़ज़लकार हैं । उनके पास ग़ज़ल कहने का शऊर भी है और उसकी बारीकियों की गहरी समझ भी है । उनकी सोच और संवेदना समकालीन जीवन स्थितियों से निरंतर प्रभाव ग्रहण करती रहती है । वे अपनी ग़ज़लों में भाषाई जटिलता से सदैव परहेज करते हैं । यही भाषाई ईमानदारी और साफगोई उनकी ग़ज़लों की विशेषता बन गई है ।'' (हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा, सं. हरेराम समीप, पृ. 328) । काव्यमनीषी डॉ. किशोर काबरा कहते हैं- ''ग़ज़ल की अनिवार्य शर्तों को पूरा करते हुए हिंदी और उर्दू की लोकभोग्य शब्दावली और मुहावरेदानी का जिस कुशलता और कलात्मकता के साथ डॉ. ऋषिपाल धीमान 'ऋषि' प्रयोग करते हैं । वह प्रशंसनीय ही नहीं, अनुकरणीय भी है । वस्तुतः कई पुरस्कारों और उपाधियों से सम्मानित धीमानजी गुजरात की धरती से जुड़े हुए समर्थ 'ग़ज़ल-पुरुष' हैं ।'' ('तस्वीर लिख रहा हूँ' के कवरफ्लैप से) । बानगी के तौर पर एक शेर-

यूँ सबके सामने मेरी उड़ान कुछ भी नहीं
जो छूना चाहूँ तो फिर आसमान कुछ भी नहीं

मालिनी गौतम गोधरा की भूमि से जुडी एक संजीदा रचनाकार हैं । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'दर्द का कारवां' शीर्षक से प्रकाशित है । प्रसिद्ध साहित्यकार चन्द्रसेन विराट आपके बारे में कहते हैं- ''कवयित्री ने जीवन के हर पहलू पर गौर करते हुए बहुत अच्छे शेर निकाले हैं । कहीं भी असंप्रेषणीयता नहीं है और कहीं भी अमूर्तता नहीं है । बात सामान्य भी हो तथापि उसे ग़ज़ल के कायदे से रोचक बनाकर कहने की कोशिश की गयी है । बोलचाल की भाषा में ही ग़ज़लें बुनी गयी हैं । तत्सम शब्द न्यूनतम हैं और शब्द-चुनाव ने उनकी ग़ज़लों की संप्रेषणीयता बढायी है ।'' (समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, खंड-3, सं. हरेराम समीप, पृ. 428) । श्री राजेन्द्र परदेसी लिखते हैं- ''डॉ. मालिनी गौतम की ग़ज़लें समकालीन समाज और जिजीविषा का प्रतिनिधित्व करती हैं । उनका सृजन

समाजोन्मुखी है, यशोन्मुखी नहीं । उनकी सरल शब्दों में आत्माभिव्यक्ति इनके अक्षय आत्मविश्वास की ऊर्जा से अनुप्राणित होने के कारण सहज ही मन-प्राणों को प्रभावित करती है ।'' (समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, खंड-3, सं. हरेराम समीप, पृ. 429) । आपकी ग़ज़लों के विषय में डॉ. रमेश सोबती कहते हैं- ''इन ग़ज़लों से उनकी गहरी समझ, भावना की निश्छलता और कला-कौशल से जीवन-स्थितियों का पर्दाफाश होता है ।'' (समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, खंड-3, सं. हरेराम समीप, पृ. 431) । उदाहरण स्वरूप आपका एक शेर देखिए-

रौशनी से घर सजाना जिन दियों का काम था
वे हवा का साथ पाकर घर जलाने लग गए

डॉ. किशोर काबरा गुजरात के वरिष्ठ और बहुमुखी प्रतिभावाले साहित्यकार हैं, जिन्होंने साहित्य की लगभग हर विधा में लिखा है । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'चंदन हो गया हूँ' शीर्षक से प्रकाशित है । डॉ. कुँअर बेचैन के शब्दों में ''डॉ. काबरा का यह संग्रह भाव-संपदा, विचार-वैभव, कला-कौशल, भाषा-सौष्ठव, प्रतीक-विधान, बिम्ब-योजना तथा सरलता और सहजता की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण कृति है । किशोर जी का कोई शेर संवेदनाओं की तरलता में पलती हुई हृदय-सीपी का उज्जवल मोती है तो कोई शेर उनके सोच के केन्द्र से खींचा ऐसा वृत्त है जो कई बिन्दुओं को छूता चलता है ।'' ('चंदन हो गया हूँ' के कवर-फ्लैप से) । उदाहरण के रूप में एक शेर पेश है-

घिस गया इतना कि चंदन हो गया हूँ
झुक गया इतना कि वंदन हो गया हूँ

विजय तिवारी गुजरात के उन हिन्दी कवियों में से हैं जिनकी प्रमुख काव्य-विधा ग़ज़ल है । आपके तीन ग़ज़ल-संग्रह 'निर्झर', 'फल खाये शजर' और 'आका बदल गए हैं' प्रकाशित हुए हैं । बकौल डॉ. कुँअर बेचैन ''श्री विजय तिवारी को ग़ज़ल कहने का सलीका आता है । निश्चय ही वह ग़ज़ल की आत्मा से परिचित हैं । उनकी ग़ज़लें वैसे बहुत सरल तथा सहज हैं किन्तु सोचो तो सोचने पर मजबूर करती हैं । विजय की ग़ज़लें व्यवस्था पर जो चोट करती हैं वह केवल प्रहार के लिए नहीं , वरन् समाज को सुन्दर बनाने के लिए है ।'' ('फल खाये शजर' की भूमिका से) । उदाहरण के रूप में एक शेर पेश है-

आजाद हो गये हैं इस भ्रम में पल रहे हैं
हम तो गुलाम ही हैं आका बदल रहे हैं

भागवतप्रसाद 'नियाज' रिवायती मिजाज की ग़ज़लें कहने वाले बडे ही सम्माननीय ग़ज़लकार रहे हैं । आपने हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में खूब लिखा है । हिन्दी में आपके तीन ग़ज़ल-संग्रह- 'जज़्बात', 'तलाश', और 'आखिऱी दौर' प्रकाशित हुए हैं । आपकी ग़ज़लों का विषयमुख्य रूप से अध्यात्म रहा है । आपकी ग़ज़लों पर उर्दू भाषा का प्रभाव कुछ अधिक ही दिखाई देता है । बानगी के तौर पर एक शेर देखें-

क्यूँ मुझको बेकरार-सी लगती है जिऩ्दगी
उजडी हुई बहार-सी लगती है जिऩ्दगी

अश्विनीकुमार पाण्डेय दोहों और गीतों के साथ-साथ ग़ज़लें भी कहते हैं । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'एहसास के साये तले' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । अश्विनीजी की ग़ज़लें धरातल से जुडी ग़ज़लें हैं जिनमें देश की माटी की खुशबू आती है । डॉ. अंबाशंकर नागर के अनुसार ''पाण्डेयजी ने उर्दू ग़ज़ल के इश्के मजाजी इश्के हकीकी जैसे विषयों से आगे बढकर देशप्रेम को अपनी ग़ज़लों का विषय बनाया है ।'' प्रसिद्ध ग़ज़लकार भगवानदास जैन के शब्दों में ''नूतन भाव-भंगिमा, सटीक मुहावरों और सार्थक बिम्ब-प्रतीकों के कारण आपकी ग़ज़लें पर्याप्त प्रभावी बन पड़ी हैं ।'' (गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ. 233) । उदाहरण के रूप में एक शेर पेश है-

पत्थर को भगवान बनाने निकला हूँ
ऊसर को उद्यान बनाने निकला हूँ

दयाचंद जैन का एक ग़ज़ल-संग्रह 'दर्द का रिश्ता' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । प्रसिद्ध ग़ज़लकार भगवानदास जैन के शब्दों में ''दयाचंद जैन की ग़ज़लों में ह्रासोन्मुख मानव-मूल्यों एवं विषमतापूर्ण समाज-व्यवस्था के प्रति कवि-हृदय की दुश्चिंता अनेकत्र व्यक्त हुई है ।'' (गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ. 232) । उदाहरण के रूप में एक शेर पेश है-

अंधियारे उजलाए कौन ?
बुझते दीप जलाए कौन ?

रमेशचंद्र शर्मा गुजरात के वरिष्ठ रचनाकार हैं जो गीत, ग़ज़ल और हाईकू लिखते हैं । आपके दो ग़ज़ल-संग्रह- 'लेकिन कब तक' और 'कुशल हो गए' शीर्षकों से प्रकाशित हुए हैं । आपकी गजलों की भाषा बोलचाल की भाषा होती है जो ग़ज़ल के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मानी जाती है । छोटी बहर की ग़ज़लों में बड़ी बात कहने में आप सिद्धहस्त हैं । उदाहरण स्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

विपदा होती है सहने को
कुछ सुनने को, कुछ कहने को

मरियम गजाला का एक ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हुआ है- 'क्षितिज की दहलीज पर' । प्रसिद्ध ग़ज़लकार भगवानदास जैन के शब्दों में ''पारंपरिक तगज़्ज़ुल का रंग प्रमुख होते हुए भी आपके कहने का निराला अंदाज. आपकी ग़ज़लों को एक ताजग़ी प्रदान करता है ।''(गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ. 234) । उदाहरण स्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

कोई नागिन तो नहीं हूँ कि तुम्हें डस लूँगी
मेरे नजदीक से चलने में भी डरते क्यों हो

डॉ. भागिया 'खामोश' गुजरात के एक ऐसे रचनाकार हैं जो पूर्णरूपेण ग़ज़ल विधा को समर्पित हैं । आपके अब तक दो ग़ज़ल-संग्रह 'तल्खि-ए-खामोश' और 'दिल की ज़मीं पर' प्रकाशित हुए हैं । भगवानदास जैन के अनुसार ''जहाँ तक भागियाजी के शिल्प का प्रश्न है, इन्होंने इल्मे-अरूज के नियमों को भी काफी हद तक निभाने की कोशिश की है ।'' ('दिल की ज़मीं पर' के कवर-फ्लैप से) । आपकी ग़ज़लों पर उर्दू का प्रभाव बहुत अधिक है । उदाहरण स्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

कहता नहीं है कुछ भी कोई गुल तो क्या करें
तमद्दुन के कैद में रहे बुलबुल तो क्या करें

बसंत ठाकुर भी अहमदाबाद के एक ऐसे कवि हैं जो पूरी निष्ठा के साथ ग़ज़ल को समर्पित हैं । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'मेरे शहर के लोग' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । इनके बारे में डॉ. किशोर काबरा कहते हैं- ''कवि की सभी ग़ज़लों में जिन्दगी पिरोई हुई है । चूँकि बसंत संगीत का आदमी है अतः उर्दू की बहरों और मात्रिक छंदों की लय का निर्वाह पूरी निष्ठा से हुआ है । बिंबों में नवीनता की कमी हो सकती है, प्रतीक और मिथकों में थोडी कचाई के दर्शन हो सकते हैं पर ग़ज़ल की कहन का जो साहसिक प्रवाह है, उसके वेग में ये सब अवरोध अदृश्य हो जाते हैं ।'' उदाहरण स्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

अहसास के पलों को बंधन बनाये रखना
जीवन में तुम स्वयं को चंदन बनाये रखना

डॉ. शिवा कनाटे वडोदरा की भूमि से जुड़े एक निष्ठावान ग़ज़लकार हैं । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'नदी के तट की बालू पर' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । सहजता और सरलता आपकी ग़ज़लों की विशेषता है । उदाहरण के रूप में एक शेर पेश है-

ताउम्र रहे ऐसे हम जिन्दगी के साथ
इक अजनबी हो जैसे इक अजनबी के साथ

जितेन्द्रसिंह चौहान 'पुष्प' मूलतः गीतकार हैं परंतु आप दोहे और ग़ज़लें भी खूब कहते हैं । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'दिल कहता है' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है । आपकी ग़ज़लों में विषय-वैविध्य है । जहाँ प्रेम के चित्र हैं, वहीं समाज, देश, दुनिया की समस्याओं का निरूपण भी है । आपके संग्रह के बारे में कवि अश्विनीकुमार पांडेय कहते हैं- ''संग्रह का एक विशेष गुण भी है कि ग़ज़ल के नाम पर स्तरविहीन श्रृंगारिकता का कहीं भी उपयोग नहीं किया गया है ।'' उदाहरण स्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

लोग गर बदज़ुबां नहीं होते
फ़ासले दरमियां नहीं होते

आत्मप्रकाश दोहे, कुंडलियां, गीत, ग़ज़ल आदि अनेक विधाओं में लिखते हैं । आपके तीन ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं जिनके शीर्षक हैं 'गहराइयाँ', 'परछाइयाँ' और 'पुरवाइयाँ' । आपकी ग़ज़लों की भाषा एकदम सरल है । बानगी के तौर पर एक शेर प्रस्तुत है-

आदमी जब-जब ख़ुदा के घर गया
देखकर उसको ख़ुदा भी डर गया

सेवाराम गुप्ता 'प्रत्यूष' ने हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में गीत, गजल, दोहे आदि लिखे हैं । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'दर्द पल रहे हैं' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । उदाहरणस्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

दर्द, पीडा का कभी इजहार मत कर
जिन्दगी को बेवजह अख़बार मत कर

जैमिनी शास्त्री 'कुमार' गोधरा की भूमि पर हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में काव्य-साधनारत हैं । हिन्दी में आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'साँसों के दरमियाँ' शीर्षक से प्रकाशित है । आपकी ग़ज़लों में प्रेम है, इंसानी जज्बात हैं, आम आदमी की पीडा है, जीवन-दर्शन है । आपकी ग़ज़लों की भाषा आमफहम, बोलचाल की भाषा है अतः पाठक को शब्दकोष देखने की आवश्यकता महसूस नहीं होती । बानगी के रूप में एक शेर दृष्टव्य है-

साहिल को अपनी मौज पे लाया नहीं जाता
ये इल्म हर किसी को सिखाया नहीं जाता

दिलीप कुमार मेवाड़ा गांधीनगर की धरती से जुडे कवि हैं जो गीत, नज्म, रुबाई और ग़ज़ल लिखते हैं । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'गर्दिशे-दौराँ' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । आपकी ग़ज़लगोई के नमूने के तौर पर एक शेर प्रस्तुत है-

जो किताबों में नहीं वो पढाती है
ये जिन्दगी भी क्या-क्या सिखाती है

दिनेश डोंगरे 'नादान' वड़ोदरा की धरती से जुडे एक लोकप्रिय ग़ज़लकार हैं । आप हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में साधिकार लिखते हैं । हिन्दी में आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'सागर भी है, तूफां भी' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । आपकी शायरी की बानगी के रूप में एक शेर प्रस्तुत है-

कदमों में हो जो कुव्वत हर सू नया जहाँ है
चलने को रास्ता है, उड़ने को आसमां है

वसीम मलिक सूरत की जमीन से जुडे एक नामी शायर हैं । आप उर्दू और हिन्दी दोनों भाषाओं में लिखते हैं । आपके चार हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हैं- 'तपिश', 'उजालों का सफर', 'ख्वाहिश', और 'इंतिजार मत करना' । बकौल भगवानदास जैन ''सलीस जबान में उम्दा खयालात की पुरअसर पेशकश आपकी ग़ज़लों की महत्वपूर्ण विशेषता है ।''(गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ. 234) । उदाहरण स्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

चाँद पर अब्र का साया नहीं देखा जाता
तेरा उतरा हुआ चेहरा नहीं देखा जाता

लक्ष्मी पटेल 'शबनम' विसनगर की धरती से जुडी प्रसिद्ध कवयित्री हैं । आप हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में साधिकार लिखती हैं । 'कागजी रिश्ते' शीर्षक से आपका एक हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हुआ है । आपकी ग़ज़लों के विषय में वरिष्ठ ग़ज़लकार भगवानदास जैन कहते हैं- ''शबनम जी की ग़ज़लों में प्यार, तड़पन, मायूसी के साथ ही तूफान भी है और चिन्तन तथा दर्शन भी है ।'' (गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ.235) । बानगी के तौर पर एक शेर देखिए-

अंदाज जुदा सबसे हमारा है ग़ज़ल में
हमने गमे-दुनिया को सँवारा है ग़ज़ल में

प्रमोदशंकर मिश्र 'मिसरा' अहमदाबाद में कार्यरत एक सम्मानित कवि हैं । आप गीत और ग़ज़ल दोनों में लेखनी चलाते हैं । आपका एक ग़ज़ल-संग्रह 'चलो चलें पढ़ें ग़ज़ल' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । आपकी ग़ज़लों में लखनवी उर्दू मिश्रित हिन्दी बेहद मजा देती है । प्रसिद्ध ग़ज़लकार भगवानदास जैन आपकी ग़ज़लों के बारे में कहते हैं- ''आपकी ग़ज़लों में नये बिम्ब और प्रतीकों से सजे विविध प्रकृति-चित्र भी हैं और वैयक्तिक्र एवं सामाजिक अनुभूतियों से अनुप्राणित मर्मस्पर्शी चित्र भी ।'' (गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, पृ. 235) उदाहरण स्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

कौन सपनों को सजाता कौन गाता लोरियाँ
सिसकियों में सो गए कितने यतीमों के नगर

शाहजहाँ 'शाद' सूरत की भूमि से जुडे बेहद संजीदा शायर हैं । आप हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में रचनारत हैं । हिन्दी में आपके चार ग़ज़ल-संग्रह- 'वो', 'तुम', 'हम' और 'कागज़ी फूल' शीर्षकों से प्रकाशित हुए हैं । इनकी ग़ज़लों में प्रेम भी है, इंसानियत भी है और जीवन भी है । एकदम सहज भाषा में बडी गहरी बात कह जाते हैं शाद साहब । उदाहरण स्वरूप एक शेर प्रस्तुत है-

जख्मी होकर सोच रहा हूँ
मैंने किसको जख्म दिया था

चन्द्रपाल सिंह यादव गीत, ग़ज़ल दोनों विधाओं में रचना करते हैं । आपके संस्कृत भाषा में भी दो काव्य-संग्रह हैं । आपका एक हिन्दी ग़ज़ल-संग्रह 'वो जमाना और था' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है । आपकी ग़ज़लें स्व से पर की ओर गमन करती हैं और सीधे दिल पर दस्तक देती हैं । बानगी के तौर पर एक शेर प्रस्तुत है-

बड़ी साफ थी मन की गंगा
कोई आकर हाथ धो गया

अब्बास अली ताई, जौहर राणा, नवनीत ठक्कर, रशीद मीर, नयन देसाई, सुरेश शर्मा कांत आदि अनेक कवियों ने हिन्दी ग़ज़ल को अपने-अपने ढंग से पोषण दिया है । कई ऐसे रचनाकार हैं जिनकी मूल विधा ग़ज़ल नहीं है लेकिन ये अपनी ग़ज़लों से हिन्दी ग़ज़ल को समृद्ध करने में जुटे हैं । इनमें डॉ. द्वारकाप्रसाद साँचीहर, चन्द्रमोहन तिवारी, डॉ. प्रणव भारती, संतोष लंगर, ओमप्रकाश शर्मा 'नादान', बैकुंठनाथ, कैलाशनाथ तिवारी के नाम उल्लेखनीय हैं ।

कुछ ग़ज़लकार ऐसे भी हैं जिन्होंने गुजरात में रहकर बरसों ग़ज़लें कहीं लेकिन अब गुजरात से बाहर जा बसे हैं । उनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता । इनमें डा. दुर्गा सिन्हा, प्रमोदकुमार कुश 'तनहा' तथा रामगोपाल शुक्ल 'तपिश' के नाम प्रमुख हैं ।

इस समय कई युवा कवि हिन्दी ग़ज़ल को समझकर, सीखकर ईमानदारी से आगे बढ रहे हैं । इन जैसे निष्ठावान सृजकों के काँधों पर हिन्दी ग़ज़ल की गरिमा को कायम रखने का भार है । इनमें ऋतेश त्रिपाठी, मुकेश शर्मा, ले. क. संजय शर्मा और बैजनाथ शर्मा 'मिंटू' के नाम लिए जा सकते हैं ।

मैंने यथासंभव चेष्टा की है कि गुजरात के सभी हिन्दी ग़ज़लकारों का उल्लेख हो जाए फिर भी मेरी अल्पज्ञता के कारण कुछ नाम छूट गए होंगे जिसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। हिन्दी ग़ज़लकारों की सूची बहुत लम्बी है, सब पर विस्तार से लिखना एक आलेख में संभव नहीं है इसलिए कुछ के केवल नाम लिखे हैं।

गुजरात की हिन्दी ग़ज़ल और गुजरात के हिन्दी ग़ज़लकारों की बानगी दिखाने में यदि यह आलेख जऱा भी सक्षम रहा तो मैं समझूँगा कि मेरा प्रयास सफल रहा।

संदर्भ-सूची

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य : गुजरात, सं. आचार्य रघुनाथ भट्ट, हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद, 1995
2. गुजरात का समकालीन हिन्दी साहित्य, सं. अंबाशंकर नागर, रामकुमार गुप्त, किशोर काबरा, हिन्दी साहित्य परिषद, अहमदाबाद, 2003
3. हिन्दी ग़ज़ल की परंपरा, हरेराम 'समीप', किताबगंज प्रकाशन, गंगानगर, 2020
4. समकालीन हिन्दी ग़ज़लकार-एक अध्ययन, हरेराम नेमा 'समीप', खंड-1,2,3,4, भावना प्रकाशन, दिल्ली, 2017-2020
5. कटघरे में हूँ, भगवानदास जैन, अहमदाबाद, 1998
6. देख नजारे नई सदी के, भगवानदास जैन, देवी प्रकाशन, अहमदाबाद, 2004
7. नई परवाज, भगवानदास जैन, राहुल प्रकाशन, अहमदाबाद, 2014
8. तो, मैं, मैं न था वहाँ, सतीन देसाई 'परवेज', उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2017
9. कबीरी तार, सतीन देसाई 'परवेज', उत्कर्ष पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, कानपुर, 2017
10. शबनमी अहसास, ऋषिपाल धीमान 'ऋषि', ऐवाने-ख़्वाब, आगरा, 1996
11. हवा के काँधे पे, ऋषिपाल धीमान 'ऋषि', ध्रुव प्रकाशन, अहमदाबाद, 2000
12. जो छूना चाहूँ तो, ऋषिपाल धीमान 'ऋषि', लोकमित्र, दिल्ली, 2012
13. तस्वीर लिख रहा हूँ, ऋषिपाल धीमान 'ऋषि', बोधि प्रकाशन, जयपुर, 2019
14. आक़ा बदल रहे हैं, विजय तिवारी, अहमदाबाद, 2017
15. चंदन हो गया हूँ, किशोर काबरा, सेतु प्रकाशन, अहमदाबाद, 1999
16. नदी के तट की बालू पर, शिवा कनाटे, अयन प्रकाशन, नई दिल्ली, 1997
17. मेरे शहर के लोग, बसंत ठाकुर, अहमदाबाद, 2003
18. दिल कहता है, जितेंद्रसिंह चौहान पुष्प', अहमदाबाद, 2017

स्वतंत्रता संघर्ष एवं साहित्य

रोहित जैन (शोधार्थी)

भारत के स्वाधीनता संघर्ष का इतिहास बड़ा ही मार्मिक, गौरवमयी और प्रेरणादायी है; वस्तुत: यह अनगिनत कष्टों और कुर्बानियों का इतिहास है । अंग्रेजों के भारत पर राजनीतिक आधिपत्य स्थापित करने की प्रक्रिया के साथ-साथ भारतवर्ष के आधुनिक बनने की प्रक्रिया को हम संन्यासी आंदोलन, आदिवासी विद्रोह से प्रारंभ कर सन् 1757 के प्लासी युद्ध, बक्सर युद्ध, मराठा युद्ध तथा अंग्रेजी जनरल लॉर्ड डलहौजी की हड़प नीति तक देख व समझ सकते हैं । लॉर्ड डलहौजी ने इस नीति के द्वारा बहुत से देसी राज्यों को किसी न किसी बहाने से कंपनी के राज्य क्षेत्र में मिला लिया जिसमें नागपुर, बरार, झांसी, कर्नाटक, तंजौर और सातारा प्रमुख थे । इसी के द्वारा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र बिठूर के नाना साहब की पेंशन और अवध के नवाब के अधिकार छीन लिए गए । डलहौजी की विलय विस्तार की नीति ने भारतीय राज्यों को भी असंतुष्ट किया, इस प्रकार अपने अधिकारों से वंचित किए जाने पर देशी राजाओं ने एकजुट होकर विद्रोह किया । इसे ही हम सन् 1857 के विद्रोह के संदर्भ में समझते व देखते है । फलस्वरूप भारतवर्ष का आधिपत्य ईस्ट इंडिया कम्पनी से ब्रिटिश सरकार के सीधे नियंत्रण में आ गया । सन् 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष में राजनीतिक कारणों के साथ-साथ अन्य कारण भी महत्वपूर्ण थे; जिनमें आर्थिक शोषण की नीति, धार्मिक हस्तक्षेप और जातीय भेदभाव की नीति के साथ चर्बी वाले कारतूस प्रमुख कारण थे । इसीलिए अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक नीतियों में भी परिवर्तन किए । सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद भारतीय जनता को अंग्रेजी राज्य के औपनिवेशिक हितों के विरुद्ध जातीय-चेतना मुखर करने का अवसर मिला । इस तरह 1857 से 1885 तक ब्रिटिश सरकार के स्पष्ट स्वरूप के विषय में एक द्वंद की स्थिति रही । इस दौरान देश का विशाल जनसमूह; जो पराधीनता की मानसिकता और निराशावादी सोच से ग्रसित होता चला जा रहा था, ठीक उसी दौरान नवजागरण के माध्यम से साहित्य ने लोगों में जन-चेतना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया ।

भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में साहित्य ने काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है । उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू होते ही जब राष्ट्रवादी विचार उभरने लगे और विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य अपने आधुनिक युग में प्रवेश करने लगा, तब अधिक से अधिक साहित्यकार साहित्य को जन-चेतना और देशभक्तिपूर्ण उद्देश्यों के लिए प्रयोग में लाने लगे । दरअसल इनमें से अधिकांश साहित्यकारों का यह विश्वास था कि चूंकि वे एक गुलाम देश के नागरिक है, अत: यह उनका कर्तव्य है कि वे इस प्रकार के साहित्य का सृजन करें जो कि उनके समाज के सर्वतोन्मुखी पुनरुत्थान में अपना योगदान देते हुए राष्ट्रीय विमुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगा । हिंदी साहित्य आलोचना के आद्य आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते है- ''प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है ।''[1] आचार्य शुक्ल के इस 'देश' का तात्पर्य तत्कालीन भारतवर्ष और उसकी विभिन्न परिस्थितियों से लगाया जा सकता है । साथ ही 'जनता की चित्तवृत्ति' को हम तत्कालीन भारतीय समाज के बृहत्तर सुख-दुख के सन्दर्भ

में देख सकते हैं । इस प्रकार आचार्य शुक्ल की इस बात से स्पष्ट है कि साहित्य मनुष्य के बृहत्तर सुख-दुख को बहुत बारीक बुनावट के साथ रचता है । साहित्य राष्ट्रवासियों में आत्मगौरव, आत्मविश्वास जागरण हेतु त्याग और बलिदान की गौरवगाथा रचता है ।

स्वतंत्रता-संघर्ष के दौरान जन-चेतना की यह प्रक्रिया हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र के समय में व्यापक स्तर पर दिखाई पड़ती है । भारतेंदु युग के साहित्य में पराधीनता बोध तथा स्वतंत्रता की आवश्यकता को स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलने लगी थी । दैनिक जागरण में प्रकाशित एक लेख के अनुसार- ''समय बीतने के साथ जैसे ही स्वतंत्रता आंदोलन ने भारी संख्या में जनता को अपनी ओर आकृष्ट करना शुरू किया और स्वतंत्रता की मांग तीव्र होती गयी, साहित्य ने जनता के आदर्शों को बल प्रदान किया ।''[2] भारत में राष्ट्रीय जागरण की चेतना के उपक्रम में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, राधाकृष्ण दास, चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन', प्रताप नारायण मिश्र जैसे लेखकों ने भारतीयों के पराधीनता बोध को दूर करने और जन-चेतना जगाने के लिए भारतवर्ष के गौरवमयी अतीत की ओर दृष्टिपात किया । यथा-

'हमारो उत्तम भारत देश' (राधाचरण गोस्वामी)
जाबाली जैमिनि गरग पातंजलि सुकदेव ।
रहे भारतहि अंक में कबहि सबै भुवदेव ॥
याही भारत मध्य में रहे कृष्ण मुनि व्यास ।
जिनके भारतगान सों भारतबदन प्रकास ।।[3]

विभिन्न इतिहासकारों और साहित्यविदों का आरोप है कि स्वाधीनता की प्रथम लड़ाई जो सन् 1857 में लड़ी गयी वह प्रत्यक्ष रूप से असफल हुई परन्तु उसकी अन्तर्वस्तु बाद के राष्ट्रवादी क्रांतिकारियों एवं बुद्धिजीवियों के लिए मील का पत्थर सिद्ध हुई । इसी संदर्भ में विद्वानों का मत है कि भारतेन्दु युगीन साहित्य में स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव नहीं दिखायी देता । इस पक्ष में हितेन्द्र पटेल का कथन है कि- ''अगर सन् 1857 से भारतेन्दु युगीन रचनाकारों के सम्पर्क को देखा जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतेन्दु युगीन रचनाकार जिस नवजागरण को जन्म दे रहे थे, उसका कोई सम्पर्क सन् 1857 के संग्राम से नहीं था ।''[4] वहीं दूसरी तरफ़ डॉ. रामविलास शर्मा के मतानुसार ''प्रथम स्वाधीनता संग्राम हिन्दी प्रदेश के नवजागरण की पहली मंजिल है तो दूसरी मंजिल भारतेन्दु युग ।''[5] डॉ. शर्मा के मत से सहमत होते हुए यह कहना उचित ही है कि जातीय बोध, लोक भाषा, लोक संगीत के जिन तत्वों के आधार पर डॉ. शर्मा इस निष्कर्ष पर पहुंचे है वह सन् 1857 के संग्राम की प्रभाव छाया और तद्जन्य राष्ट्रीयता का परिणाम है । डॉ. रामविलास शर्मा भारतेंदु युग पर सन् 1857 के स्वतंत्रता संघर्ष का जो प्रभाव दिखाते है उसका प्रमाण यह है कि स्वतंत्रता संघर्ष के दस वर्षों बाद ही सन् 1867 में भारतेंदु जी ने 'कवि वचन सुधा' पत्रिका में 'लेवी प्राण लेवी' नामक लेख में ब्रिटिश सत्ता का व्यापक स्तर पर विरोध किया है । इस लेख से स्पष्ट होता है कि भारतेंदु युग का साहित्य बृहद स्तर पर तत्कालीन संघर्ष से प्रभावित था; साथ-साथ राष्ट्रीय चेतना का उदघोषक भी । भारतेंदु मंडल के राधाचरण गोस्वामी की कविता 'हमारो उत्तम भारत देश' राधाकृष्ण दास की कविता 'भारत बारहमासा'

और बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की कविता 'धन्य भूमि भारत सब रतननि की उपजावनि' इसी राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है । भारतेंदु जी ने निम्न पंक्तियों में अंग्रेजों द्वारा किए जा रहे शोषण का चित्र स्पष्ट रूप में अंकित किया है–

भीतर भीतर सब रस चूसै, हँसि हँसि कै तन मन धन मूसै ।
जाहिर बातन मैं अति तेज, क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेज ॥[6]

अंग्रेज कुशल शासन व्यवस्था कर रहे थे पर भीतर ही भीतर आर्थिक शोषण भी कर रहे थे । इसका उल्लेख भी भारतेंदु जी ने अपने नाटक 'भारत दुर्दशा' की इन पंक्तियों में किया है–

''अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी
पै धन विदेस चलि जात यह अति ख्वारी ।''[7]

राष्ट्रहित की यह चिन्ता प्रमुख कवि राधाचरण गोस्वामी में भी दिखाई पड़ती है । उन्होंने 'हमारो उन्नत भारत देश' में देश की दयनीय दशा पर क्षोभ व्यक्त किया था –

''मैं हाय हाय दे धाय पुकारौं रोई
भारत की डूबी नाव उबारौ कोई ।''[8]

इस हताश निराश दशा पर क्षोम व्यक्त करते हुए भारतेंदु मंडल ने प्रकारान्तर से देशवासियों को जगाने एवं उत्साहित करने का प्रयत्न किया है । 'भारत वर्षोन्नति कैसे हो सकती है' नामक निबन्ध में भारतेन्दु ने भारतीयों में 'का चुप साधि रह्यो बलवाना' का मनोविज्ञान साधा है । डॉ. रामविलास शर्मा भारतेंदु युग की इसी महत्ता को स्पष्ट करते हुए कहते है ''भारतेंदु युगीन साहित्य केवल राजनीतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे का भी साहित्य है ।''[9] इस प्रकार भारतेंदु युगीन साहित्य भारतीय अतीत का गौरव, वर्तमान की पीड़ाएँ और भविष्य के स्वप्न की अंर्तध्वनियों को अभिव्यक्त करता है ।

राष्ट्रीय–सांस्कृतिक पुनरुत्थान की जो चेतना द्विवेदी युग में दृष्टिगोचर होती है उसका बीजारोपण भारतेंदु युग में ही हो गया था । सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में तेजी आई । आगे सन् 1900 से 1920 के बीच गांधी के उदय के साथ स्वदेशी आंदोलन एवं असहयोग आंदोलन से पूरे देश में स्वाधीनता चेतना की एक लहर आई । तत्कालीन दौर में भारतेंदुकालीन द्वंद अब नहीं थे, ब्रिटिश सरकार के स्वार्थ जनता के समक्ष स्पष्ट हो चुके थे । अतः भारतीय जनमानस में राष्ट्रीयता, देशभक्ति और स्वाधीनता के जो बीज भारतेंदु युग में अंकुरित हुए थे, वे द्विवेदी युगीन साहित्य में पूर्ण पल्लवित होकर सामने आ गए ।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस युग की साहित्यिक चेतना को नई दृष्टि व दिशा देने में मुख्य भूमिका निभाई । उन्होंने अनेक तेजस्वी और संघर्षशील स्त्रियों की जीवनियाँ लिखी हैं, जिनमें ताराबाई, रुख्माबाई, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुमारी गोदावरी बाई मुख्य हैं । उन्होंने साहित्य के उद्देश्य के संदर्भ में कहा है कि– ''कविता का विषय मनोरंजन एवं उपदेशजनक होना चाहिए ।''[10] उनके इन्हीं आदर्शों को तत्कालीन युग के विभिन्न रचनाकारों

ने गति देते हुए पुनरुत्थानवादी साहित्य की रचना की । भारतेंदु युग की राष्ट्रीयता का स्वरूप बहुत निश्चित नहीं था उस समय स्वाधीनता संघर्ष भी इस बात को लेकर स्पष्ट नहीं था कि हमें अंग्रेजों से मुक्त होना है या अंग्रेजों की उपस्थिति में ही अपनी स्थितियां बेहतर करने पर बल देना है । द्विवेदी युग में यह स्वरूप तय हो गया और राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक व्याख्या हुई । इस संदर्भ में डॉ. नगेंद्र का उल्लेख आवश्यक हो जाता है, वे कहते है कि "बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता द्विवेदी युग की प्रधान भाव धारा थी । अतः तत्कालीन कविता का मुख्य स्वर भी राष्ट्रीयता ही है ।"[11] इस युग के प्रायः सभी कवियों ने राष्ट्रोत्थान और स्वदेशाभिमान की कविताओं का प्रणयन किया है । 'नाथूराम शर्मा शंकर' अपनी कविताओं में देश के लिए बलिदान की प्रेरणा देते हुए लिखते है-

देशभक्त वीरों, मरने से नेक नहीं डरना होगा ।
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा ॥[12]

(शंकर-सर्वस्त्र)

राष्ट्रकवि 'मैथिलीशरण गुप्त' की 'भारत भारती' की रचना भी इसी दौर में हुई जिसने हमारी राष्ट्रीयता को स्पष्ट चेहरा प्रदान किया । गुप्त जी की अन्य रचनाओं में भी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का स्वर प्रबल है । 'भारत-भारती' में निज देश के लिए प्रभावपूर्ण ढ़ंग से उद्‌बोधन करते हुए मैथलीशरण गुप्त कहते है-

वीरो ! उठो अब तो कुयश की कालिमा को मेट दो ।
निज देश को जीवन सहित तन मन और धन भेंट दो ॥
वैश्यो ! सुनो व्यापार सारा मिट चुका है देश का ।
सब धन विदेशी हर रहे है, पार है क्या क्लेश का ॥[13]

इसी संदर्भ में डॉ. बच्चन सिंह अपने 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास' नामक ग्रंथ में लिखते है, "हिंदी भाषा-भाषी क्षेत्र में इतने व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना जगाने का जो काम अकेले 'भारत-भारती' ने किया, उतना अन्य पुस्तकों ने मिलकर भी नहीं किया ।"[14]

राष्ट्रप्रेम की यह भावना तत्कालीन विदेशी शासन के विरुद्ध एक संग्राम का सूत्रपात करने का प्रयास था शायद यही कारण था कि तत्कालीन अंग्रेजी सरकार ने 'भारत-भारती' को जब्त कर लिया ।

'गया प्रसाद शुक्ल सनेही' की कविताओं में भी देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता का स्वर कुछ इस तरह हमें दिखाई देता है-

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है ।
वह नर नहीं नर पशु निरा है और मृतक समान है ॥[15]

इस प्रकार मातृभूमि की महिमा का गान भी देशभक्ति का ही अंग है, जिसकी और अनेक लेखकों ने आग्रहपूर्वक ध्यान दिया है । भारतीयों को उनकी परवशता से परिचित कराते हुए रामनरेश त्रिपाठी अपने खंड काव्य में लिखते है–

पराधीन रह कर अपना सुख शोक न कह सकता है ।
वह अपमान जगत में केवल पशु ही सह सकता है ।।[16]

यह काव्य पंक्तियां मध्यकालीन कवि गोस्वामी तुलसीदास के 'पराधीन सपनेहु सुख नाही' से प्रेरित दिखाई पड़ती है ।

बालमुकुंद गुप्त द्विवेदी युग के प्रमुख लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं । रामस्वरूप चतुर्वेदी इनके विषय में अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' में कहते है- ''वे केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोण के प्रवक्ता रहे । सदैव सूर्य के प्रकाश में रहने वाले ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिनिधि से वे सीधे-सीधे और खरी शैली में बात करते है ।''[17] गुप्त जी ने तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन को संबोधित करते हुए 'शिवशंभु का चिट्ठा' नामक निबंध लिखें । इन निबन्धों में लेखक ने लार्ड कर्जन के भारत-विरोधी कारनामों पर ओजपूर्ण, तीखी एवं व्यंग्यात्मक शैली में प्रहार किया । बालमुकुंद गुप्त के साथ-साथ द्विवेदी युग को सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान से चंद्रधर शर्मा गुलेरी सरदार पूर्ण सिंह जैसे लेखकों ने भी समृद्ध किया ।

इस प्रकार द्विवेदी कालीन साहित्य सृजन का प्रेरक तत्व राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण ही रहा । भारतेंदु युग में इस जागरण में साहित्य धारा को नये पथ की ओर मोड़ दिया था और साहित्य तथा समाज के अंतराल को कम किया था । फलतः कविता हो या गद्य-साहित्य उसके कलात्मक परिधान को हटा देने पर भीतर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक जागरण की चेतना ही प्रतिलक्षित होती है ।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के उत्तरार्ध में हिंदी कविता में एक नई प्रवृत्ति का उदय हो रहा था जो पूर्व की काव्य प्रवृत्तियों से ही नहीं, बल्कि द्विवेदी युग की वस्तुवादी-नैतिकतावादी दृष्टि से भिन्न थी । इसी उदित होती नयी प्रवृत्ति, जिसे स्वच्छंदतावाद कहा जाता है, ने छायावाद के लिए पृष्ठभूमि तैयार की ।

'छायावाद' भारतेंदु युग से चली आ रही आधुनिक हिंदी-काव्य-धारा के विकास का अनिवार्य सोपान है जो एक तरफ अपने अतीत के प्रति, परंपरा के प्रति आलोचनात्मक रवैया अख्तियार करता है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान की दुरावस्था से भी आंखें नहीं चुराता । छायावाद इन रास्तों से गुजरते हुए इनसे महत्तर उद्देश्य के प्रति समर्पित और प्रतिबद्ध काव्यांदोलन है ।

'छायावाद' स्वाधीनता आंदोलन से उत्पन्न चेतना की अभिव्यक्ति का काव्य है जिसकी समयावधि सन् 1918-36 तक लगभग सर्वमान्य है । भारतीय इतिहास में यह काल-खंड औपनिवेशिक सत्ता के सर्वाधिक बर्बर रुप से साक्षात्कार का है । दुनिया को सभ्य बनाने व स्वशासन का तरीका सिखाने के सांस्कृतिक तर्क से शासन कर रही ब्रिटिश सत्ता का अमानवीय और बर्बर चेहरा प्रथम विश्वयुद्ध ने नंगे रूप से दुनिया के सामने आ चुका था जो उनकी श्रेष्ठता की आत्म-मुग्धता पर एक धब्बा सिद्ध हुआ । फलतः यूरोप का संवेदनशील मानस अपनी श्रेष्ठता के दावे पर पुनर्विचार करने लगा । उसे भी मानव-जाति का भविष्य अंधकारमय दिखने लगा ।

दूसरी ओर भारतीय स्वाधीनता आंदोलन गांधी के नेतृत्व में राजनीतिक मुक्ति से आगे नए मनुष्य व नई सभ्यता निर्माण को लक्ष्य बनाकर सभ्यतागत आंदोलन के रूप में प्रौढ़

स्थिति में पहुंचा । अपने आर्थिक हितों की पूर्ति हेतु यूरोप द्वारा किए जाने वाले क्रूर, बर्बर आचरणों से चिंतनशील और संवेदनशील भारतीयों का यह भ्रम जाता रहा कि यूरोप के रास्ते ही मानव-सभ्यता का विकास संभव है । छायावादी रचनाकार मनुष्य और नई सभ्यता निर्माण की बेचैनी से अपनी शुरुआत करता है । इसके लिए वह वर्तमान को अपर्याप्त मानकर अतीत के पृष्ठों को खंगालता है और उसे नई स्थितियों के आलोक में व्याख्यायित करता है । रामायण की भारतीय परंपरा में पं. सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' अपनी कालजयी रचना 'राम की शक्ति पूजा' में राम के माध्यम से भारतीयों को प्रेरित करते है-

"शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन ।
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनन्दन ।"[18]

छायावाद में राष्ट्रीय जागरण सांस्कृतिक जागरण के रूप में आया । छायावादी कवियों ने अतीत का सहारा लेकर संपूर्ण देश में एक जातीय या राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात किया । छायावाद के संदर्भ में नामवर सिंह ने लिखा है कि- "भारतवासियों ने वर्तमान पराधीनता के अपमान को भूलने के लिए अतीत के स्वर्ण युग का सहारा लिया । वर्तमान की हार का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत से दिया । हीनता का भाव दूर हुआ । जो जाति वर्तमान में विभाजित थी, वह अतीत की पृष्ठभूमि पर एक हो उठी । इस तरह अतीत के पुनरुत्थान ने संपूर्ण देश में एक जातीय अथवा राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात किया ।"[19] इसी राष्ट्रीय चेतना के आलोक में महादेवी वर्मा अपने काव्य-संग्रह 'नीहार' में आज़ादी रूपी प्रियतम को संबोधित करते हुए पुकारती है–

जो तुम आ जाते एक बार
कितनी करूणा कितने संदेश
पथ में बिछ जाते बन पराग ।[20]

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद के यहां यह भावना व्यापक स्तर पर देखने को मिलती है । प्रसाद गहरे अर्थ में सांस्कृतिक-चेतना के कवि हैं । जातीय सांस्कृतिक इतिहास की सबसे प्रखर चेतना अपने काव्य बोध में लिए हुए । प्रसाद ने जातीय या राष्ट्रीय जागरण के प्रसार में महत्वपूर्ण सहयोग दिया । इस भावना से ओत-प्रोत उन्होंने कई गीत लिखे हैं जिनमें 'स्कंदगुप्त' का प्रसिद्ध गीत 'हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' महत्वपूर्ण है । इस गीत में आत्मगौरव का जो भाव मिलता है वह उस युग के अन्यत्र किसी गीत में नहीं मिलता । प्रसाद इस गीत में बताते है कि संस्कृति का जन्म सबसे पहले भारत में हुआ । संसृति में संस्कृति का प्रसार भारत से ही हुआ है । अनेक जातियों के उत्थान-पतन और आक्रमण के बावजूद भारत अपनी संस्कृति की रक्षा करता हुआ आगे बढ़ता आ रहा है । जिस तरह द्विवेदी युग में 'भारत-भारती' ने पूरे राष्ट्र में सांस्कृतिक ऊर्जा को जन्म दिया था, वैसे ही छायावाद की कविताओं में प्रसाद का यह गीत जनसामान्य में जोश और उमंग पैदा कर देता है–

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्जवला, स्वतंत्रता पुकारती ।[21]

छायावादी काव्य राष्ट्रीय जागरण की मूल चुनौतियाँ को गहराई से समझता है । जिस देश में सदियों की पराधीनता के कारण जातीय व सांस्कृतिक स्वाभिमान नष्ट हो चुका हो, वहाँ जागरण की पहली शर्त राष्ट्रीय स्वाभिमान की उत्पत्ति होती है । छायावादी कवि भारत के अतीत से रचनात्मक ऊर्जा ग्रहण करके वर्तमान संघर्षों से जूझना चाहते हैं । 'राम की शक्ति पूजा' में महाप्राण निराला लिखते है–

होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन,
कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन ।[22]

छायावादी कविता अपने समय से कुछ ऐसे स्तरों पर भी जुड़ी है जो साधारण कविताओं के लिए संभव नहीं होता । कविता अपने समय की घटनाओं का वर्णन करें, यह कविता की सामाजिक दायित्वशीलता का एकमात्र पक्ष है । छायावादी कविता इससे आगे बढ़कर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक समस्याओं के नए समाधान भी प्रस्तुत करती है । यह अपने समाज की निष्क्रिय तस्वीरें ही नहीं खींचती, बल्कि समाज के लिए वांछनीय परिवर्तनों के स्तर पर भी सक्रिय होती है । छायावाद की राष्ट्रीय चेतना अपने अंतिम स्तर पर केवल राष्ट्र तक सीमित नहीं रहती, बल्कि संपूर्ण मानवता के स्तर पर सक्रिय हो जाती है । यह भारतीय चिंतन-दृष्टि की वही धारणा है जिसमें राष्ट्रीय हितों का वैश्विक हितों को परस्पर विपरीत नहीं, बल्कि सुसंगत सत्यों के रूप में 'वसुदेव कुटुंबकम्' कहकर व्याख्यायित किया जाता है । इस चेतना से युक्त जयशंकर प्रसाद 'कामायनी' में लिखते है-

"औरों को हँसता देखो मनु-हँसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ ।"[23]

इस प्रकार छायावादी कवियों द्वारा व्यक्त की गई ये अभिव्यक्तियाँ राष्ट्रीयता की भावना को जगाने वाली हैं । साथ ही भारत के अतीत गौरव को अभिव्यक्त कर उसके सांस्कृतिक स्वरुप को भी अभिव्यक्त करती हैं । छायावाद की समृद्ध परंपरा के समानांतर चलने वाली धाराओं में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा में 'माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, सियारामशरण गुप्त' जैसे महत्वपूर्ण कवि शामिल हैं ।

आधुनिक हिंदी कविता की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि माखनलाल चतुर्वेदी अपनी प्रखर राष्ट्रीय चेतना के कारण पूरी हिंदी कविता के इतिहास में विशिष्ट स्थान रखते है । जिस युग में माखनलाल चतुर्वेदी ने काव्य-सृजन का सूत्रपात किया, वह युग राष्ट्रीय स्वाधीनता-आंदोलन का था । राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की उदात्त प्रेरणाओं को उनके कृतित्व में पूरे उन्मेष के साथ देखा जा सकता है । उनके काव्य में राष्ट्रीयता का भाव इतना अधिक है कि वे अपनी प्रेम, रहस्य-भावना एवं प्रकृति संबंधी कविताओं में भी राष्ट्रीयता का परित्याग नहीं कर सके है । मातृभूमि के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने का भाव उनकी कई कविताओं में मौजूद है । उदाहरण स्वरुप उनकी कविता 'पुष्प की अभिलाषा' की ये पंक्तियां दृष्टव्य है-

'मुझे तोड़ लेना वनमाली, उस पथ पर तुम देना फेंक ।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने, जिस पथ पर जाएं वीर अनेक ॥"[24]

इसी परंपरा में राष्ट्रीय चेतना की एक सजग कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं में भारत के सांस्कृतिक गौरव की प्रखर अभिव्यक्ति दिखाई देती है । उनकी कविताओं में राष्ट्रीय उत्थान के तीनों स्वर स्वाधीनता-आंदोलन, स्त्रियों की स्वाधीनता तथा दलित जातियों का उत्थान मौजूद है । प्रथम स्वाधीनता आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाने वाली वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई के विषय में रचित उनकी 'झांसी की रानी' कविता जनता में लोकप्रिय हुई-

सिंहासन हिल उठे राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में आई फिर से नयी जवानी थी ।
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी ॥[25]

वीर रस की कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान को 'राष्ट्रीय वसंत की प्रथम कोकिला' की संज्ञा दी जाती है । हिंदी साहित्य के विभिन्न कालखंडों में सृजित रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रथम स्वाधीनता आंदोलन का भारतीय हिंदी साहित्य पर गहरा प्रभाव रहा है; इस अर्थ में कहा जा सकता है कि प्रसिद्ध आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा ने नवजागरण की शुरुवात का समय भी प्रथम स्वाधीनता आंदोलन ही स्वीकार किया है । स्वतंत्रता-पूर्व हिंदी साहित्य में राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की समृद्ध परंपरा रही है, जिसके विभिन्न पहलुओं पर हमनें संक्षेप में कतिपय उदाहरणों के माध्यम से दृष्टिपात किया है । इस शोध पत्र के माध्यम से हिंदी साहित्य पर स्वाधीनता आंदोलन के प्रभावों के विवेचन का एक लघु प्रयास किया गया है ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

11. शुक्ल रामचंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, संस्करण-2009, पृष्ठ-6(काल विभाजन से)
2. https://m. Jagran.com/blogs
3. संपादक - यादव रामजी, भारतेंदु संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद, 3320, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण-2019, पृष्ठ-259
4. पटेल हितेंद्र, आजकल पत्रिका, संस्करण- मई 2007; पृष्ठ-10
5. शर्मा रामविलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, 1-बी, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, संस्करण-2008, पृष्ठ-19
6. संपादक - यादव रामजी, भारतेंदु संचयन, भारतीय पुस्तक परिषद्, 3320, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण-2019, पृष्ठ-126
7. वही, पृष्ठ-14
8. संपादक शर्मा एस. के., हिंदी साहित्य, उपकार प्रकाशन, 2/11, आगरा 282002, संस्करण-2012, पृष्ठ-34
9. शर्मा रामविलास, भारतेंदु युग, विनोद पुस्तक मंदिर, हॉस्पिटल रोड, आगरा, संस्करण-1956, भूमिका से

10. संपादक – यायावर भारत, साहित्य विचार– महावीर प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002; संस्करण–2005, पृष्ठ–15
11. संपादक – डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, ए–95, सेक्टर–5, नोएडा 201301, संस्करण–2010, पृष्ठ–477
12. संपादक – महाजन आनंद कुमार, हिंदी साहित्य, यूथ काम्पिटिशन टाइम्स, 12, चर्च लेन, प्रयागराज 211002, संस्करण–2020, पृष्ठ–89
13. गुप्त मैथलीशरण गुप्त, भारत भारती, लोकभारती प्रकाशन,1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, संस्करण–2014, पृष्ठ–146
14. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, 7/31, अंसारी रोड, नई दिल्ली 110002, संस्करण–2017, पृष्ठ–313
15. शर्मा रामविलास, भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन, 1–बी,दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण–1973, पृष्ठ–121
16. सिंह बच्चन, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, 7/31, अंसारी रोड, नई दिल्ली 110002, संस्करण–2017, पृष्ठ–321
17. चतुर्वेदी रामस्वरूप, हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास; लोकभारती प्रकाशन, 1–बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002, संस्करण–2017, पृष्ठ–104
18. निराला सूर्यकांत त्रिपाठी, अपरा, राजकमल प्रकाशन, 1–बी,दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण–2006, पृष्ठ–49
19. सिंह डॉ. नामवर, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, 1–बी, दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण–2010, पृष्ठ–73
20. संपादक – जैन निर्मला, महादेवी संचयिता, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002; संस्करण–2018, पृष्ठ–33
21. ओझा दशरथ, हिंदी नाटक उद्‌भव और विकास, राजपाल एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली 110006, संस्करण 2008, पृष्ठ 245
22. निराला सूर्यकांत त्रिपाठी, अपरा, राजकमल प्रकाशन, 1–बी,दरियागंज, नई दिल्ली 110002, संस्करण–2006, पृष्ठ–53
23. प्रसाद जयशंकर, कामायनी, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली 110002; संस्करण–2007, पृष्ठ–52
24. संपादक – वर्मा श्याम बहादुर, विश्व सूक्ति कोश (भाग–2) प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, ,नई दिल्ली 110002, संस्करण–2017, पृष्ठ–464
25. संपादक – वर्मा श्याम बहादुर, विश्व सूक्ति कोश (भाग–3) प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002, संस्करण–2017, पृष्ठ–1261

लेखकों के नाम और पते

1.	डॉ. विजय महादेव गाडे	अध्यक्ष, हिंदी विभाग, बाबासाहेब चितळे महाविद्यालय, भिलवडी, जि. सांगली-416 303 (महाराष्ट्र)
2.	डॉ. सुनील डहाळे	प्रोफेसर, हिंदी विभाग, विनायकराव पाटील महाविद्यालय, वैजापुर, जिला. औरंगाबाद–423 701 (महाराष्ट्र)
3.	डॉ. सचिन गपाट	सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग, मुंबई विश्वविद्यालय, मुंबई (महाराष्ट्र)
4.	डॉ. अभिषेक शर्मा	वरिष्ठ सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, रेवेंशा विद्यालय, कटक–753 003 (ओड़िशा)
5.	डॉ. मनीष शर्मा	प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, उच्च शिक्षा उत्कृष्टता संस्थान, भोपाल (म.प्र.)
6.	डॉ. जोगेन्द्र सिंह मीणा	एसोसिएट प्रोफेसर, केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा–282 005
7.	योगेन्द्र सिंह एवं प्रो. नवीनचंद्र लोहनी	शोधार्थी, हिंदी विभाग चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
8.	डॉ. भावना ठक्कर	असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, एन. एस. पटेल आर्ट्स कॉलेज, आणंद (गुजरात)
9.	डॉ. आशा रानी	हिंदी एवं भाषाविज्ञान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर
10.	डॉ. पूनम	असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, गुरुनानक इंस्टिट्यूट ऑफ़ हायर एजुकेशन, मुरथल, जिला–सोनीपत–131 001 (हरियाणा)
11.	राजेशकुमार राजन	शोधार्थी, चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
12.	डॉ. पूर्णिमा आर.	एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, सनातन धर्म कॉलेज, आलप्पूज़ा, केरल

13.	डॉ. भुवाल सिंह ठाकुर	असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी शासकीय महाविद्यालय–भखारा, जिला–धमतरी, छत्तीसगढ–493 770
14.	डॉ. प्रवीणकुमार चौगुले	श्रीमती कस्तुरबाई वाचलचंद महाविद्यालय, सांगली
15.	डॉ. उर्मिला पोरवाल	अध्यक्षा, हिंदी विभाग, शेषाद्रिपुरम महाविद्यालय, बैंगलोर, कर्नाटक
16.	डॉ. भरत भीमराव जाधव	मराठी विभाग, कला और वाणिज्य महाविद्यालय, सातारा (महाराष्ट्र)
17.	डॉ. पियूष द्विवेदी	काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी
18.	दिनेश कुमार गुप्ता	प्रवक्ता, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, गंगापुर सिटी, जिला–सवाई माधोपुर–322 201 (राजस्थान)
19.	डॉ. ऋषिपाल धीमान 'ऋषि'	श्रीनाथ बंग्लोज, चांदखेडा, अहमदाबाद–382 424
20.	रोहित जैन	शोधार्थी, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, केरल केंद्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड, केरल

रचनाकारों से निवेदन

'समन्वय पश्चिम' में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप केवल पश्चिम भारत से संबंधित रचनाएँ आमंत्रित हैं । कृपया लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिन्दी यूनीकोड में टंकित कर khs.ahmedabad@gmail.com पर भेजने का कष्ट करें । दूसरे अन्य फॉण्ट में लेख भेजने पर उसके साथ फॉन्ट भी भेजें । अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी ।

मानदेय हेतु रचनाकारों से उनके लेख के साथ बैंक एकाउन्ट नंबर, बैंक एवं उसकी शाखा का नाम तथा IFSC कोड उपलब्ध कराना अपेक्षित है ।

'समन्वय पश्चिम' सदस्यता फार्म

नाम ....

डाक का पता ....

....

....

सदस्यता शुल्क : व्यक्तिगत प्रति अंक रु. 40.00 वार्षिक रु. 150.00
संस्थागत वार्षिक शुल्क रु. 250.00
(डाक व्यय प्रति अंक रु. 35.00 तथा
वार्षिक रु. 100.00 अतिरिक्त होगा)
विदेशों में प्रति अंक $ 10.00 वार्षिक $ 40.00

डी.डी./मनीऑर्डर का विवरण ....

दूरभाष .... ई-मेल ....

निर्धारित सदस्यता शुल्क का डी.डी./मनीऑर्डर सचिव केंद्रीय हिंदी शिक्षण मंडल के नाम से देय है । अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें ।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, अहमदाबाद केंद्र, शास्त्री स्टेडियम, बाल भवन, बापूनगर,
अहमदाबाद-380 024 (गुजरात)
मोबाइल : 9774393498
ई-मेल : khs.ahmedabad@gmail.com